पुराण पहेली

रूपात्मक अध्यात्मविज्ञान की पराकाष्ठा

प्रेमयोगी वज्र

पुराण पहेली

रूपात्मक अध्यात्मविज्ञान की पराकाष्ठा

प्रेमयोगी वज्र

पुस्तक परिचय

पुराने समय में तो भौतिक विज्ञान आम लोगों की समझ से परे होता था, फिर कुंडलिनी योग जैसा सूक्ष्म व पारलौकिक विज्ञान उन्हें कैसे समझ आ सकता था। इसलिए कुंडलिनी योग का ज्ञान केवल सम्पन्न वर्ग के कुछ गिनेचुने लोगों को ही होता था। वे चाहते थे कि आम लोग भी उसे प्राप्त करते, क्योंकि आध्यात्मिक मुक्ति पर मानवमात्र का अधिकार है। पर वे उन्हें सीधे तौर पर कुंडलिनी योग को समझाने में सफल नहीं हुए। इसलिए उन्होंने कुंडलिनी योग को रूपात्मक व मिथकीय कथाओं के रूप में ढाला, ताकि लोग उन्हें रुचि लेकर पढ़ते, इससे धीरे-धीरे ही सही, कुंडलिनी योग की तरफ उनका झुकाव पैदा होता गया। उन कथाओं के संग्रह पुराण बन गए। उन पुराणों को पढ़ने से अनजाने में ही लोगों के अंदर कुंडलिनी का विकास होने लगा। इससे उन्हें आनन्द आने लगा, जिससे उन्हें पुराणों की लत लग गई। इतने प्राचीन ग्रँथों के प्रति तब से लेकर आज के आधुनिक युग तक जो लोगों का आकर्षण है, यह इसी कुंडलिनी-आनन्द के कारण प्रतीत होता है। पुराण पढ़ने व सुनने वाले लोगों के बीच में जिसका दिमाग तेज होता था, वह एकदम से कुंडलिनी योग को पकड़ कर अपनी कुंडलिनी को जागृत भी कर लेता था। इस तरह से पुराण प्राचीन काल से लेकर मानवता की अप्रतिम सेवा करते आ रहे हैं। इसी तरह, पुराने जमाने में रहस्यात्मक विद्याओं को सीधे तौर पर सार्वजनिक नहीँ किया जाता था। इसलिए उन्हें रूपक के रूप में समझाया गया है, इसीलिए ऐसी कई विद्याओं को गुह्य विद्या भी कहते हैं। इसलिए रूपक कथाओं के माध्यम से तंत्र को अप्रत्यक्ष रूप से लोगों के अवचेतन मन में डालने का प्रयास किया होगा, और आशा की होगी कि भविष्य में इसे डिकोड करके इसके हकदार लोग इससे लाभ उठाएंगे। एक प्रकार से गुप्त गुफा में खजाने को सुरक्षित कर लिया गया, और रूपक कथा के रूप में उस ज्ञान-गुफा का नक्शा भूलभूलैया वाली पहेली के रूप में छोड़ दिया। फिल्मों में दिखाए जाने वाले ऐसे मिथकीय खोजी अभियान इसी रहस्यात्मक तंत्र विज्ञान को अभिव्यक्त करने वाली मनोवैज्ञानिक चेष्ठा है। इसीलिए वैसी फिल्में बहुत लोकप्रिय होती हैं।

रूपकों से आध्यात्मिक विषयों को भौतिकता, सरलता, रोचकता, सामाजिकता और वैज्ञानिकता मिलती है। इसके बिना अध्यात्म बहुत नीरस होता। कई लोग अनेक प्रकार के कुतर्कों से रूपकता का विरोध करते हैं। इसे रूढ़िवादिता, कपोल कल्पनाशीलता आदि माना जाता है। बेशक आजके विज्ञानवादी युग में ऐसा लगता हो, पर प्राचीन काल में रूपकों ने मानवमात्र को बहुत लाभ पहुंचाया है। यदि शिव के स्थान पर निराकार ब्रह्म कहा जाए तो कितना उबाऊ लगेगा। मस्तिष्क और सहस्रार शब्द में वो सरसता कहाँ है, जो उनकी जगह पर हिमालय पर्वत और कैलाश पर्वत लिखने से प्राप्त होती है। इसी तरह

कुंडलिनी शब्द भी उतना रोचक नहीं लगता, जितना उसकी जगह पर माता पार्वती या सीता लगता है। फिर भी आजकल के तथाकथित आधुनिक व बुद्धिप्रधान समाज की ग्राह्यता के लिए आध्यात्मिक रूपकता को रहस्योद्घाटित करते हुए यथार्थ भी लिखना पड़ता है।

रूपक वैज्ञानिक सत्य को नहीं बदल सकते। रूपकों का अपना कोई गणित नहीं होता। रूपक तो केवल सत्य को समझाने के लिए बनाए गए होते हैं, जो वैज्ञानिक घटनाओं पर आधारित होते हैं। कहने का तात्पर्य है कि अध्यात्मवैज्ञानिक घटना से रूपक बने, न कि मनगढ़ंत रूपक से कोई अध्यात्मवैज्ञानिक घटना घटित हुई। इतने अच्छे रूपक बनाने वाले ऋषिमुनि कोई वनवासी नहीँ हो सकते, जैसी कि कई जगह भ्रांत धारणा है। वे दुनियादारी में सबसे ज्यादा कढ़े हुए और गढ़े हुए होते थे।

बहुत सुंदर रूपक कथाएँ हैं पुराणों में। रूपात्मक कथाओं में मन के विभिन्न हिस्सों को विभिन्न व्यक्तियों के रूप में दर्शाने की कला का बहुत महत्त्व होता है। सभी पुराण कुंडलिनी योग का मिथकीय व रूपात्मक वर्णन करते प्रतीत होते हैं। मुझे लगता है कि कथा सुनाते समय मूल कथा के साथ उसमें दिए गए रूपक के रहस्य को भी डिकोड करके सुनाना चाहिए। इससे श्रोताओं को अधिक लाभ मिलेगा। अगर नुक्सान की बात करें तो रूपक बनाने से यह मामुली सा नुकसान हुआ होगा कि लोगों को पता ही नहीं चला होगा कि क्या रूपक है और क्या असली। प्रस्तुत पुस्तक इसी संदर्भ में बनी है, जो पुराणों के रूपकों का वैज्ञानिक व युक्तियुक्त विश्लेषण करती है। बहुत न लिखते हुए इसी आशा के साथ विराम लगाता हूँ कि प्रस्तुत पुस्तिका अन्तरिक्षप्रेमी व अध्यात्मप्रेमी पाठकों की आकांक्षाओं पर खरा उतरेगी।

लेखक परिचय

प्रेमयोगी वज्र का जन्म वर्ष 1975 में भारत के हिमाचल प्रान्त की एक सुन्दर व कटोरानुमा घाटी में बसे एक छोटे से गाँव में हुआ था। वह स्वाभाविक रूप से लेखन, दर्शन, आध्यात्मिकता, योग, लोक-व्यवहार, व्यावहारिक विज्ञान और पर्यटन के शौक़ीन हैं। उन्होंने पशुपालन व पशु चिकित्सा के क्षेत्र में भी प्रशंसनीय काम किया है। वह पोलीहाऊस खेती, जैविक खेती, वैज्ञानिक और पानी की बचत युक्त सिंचाई, वर्षाजल संग्रहण, किचन गार्डनिंग, गाय पालन, वर्मीकम्पोस्टिंग, वैबसाईट डिवेलपमेंट, स्वयंप्रकाशन, संगीत (विशेषतः बांसुरी वादन) और गायन के भी शौक़ीन हैं। लगभग इन सभी विषयों पर उन्होंने दस के करीब पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनका वर्णन एमाजोन ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट demystifyingkundalini.com पर भी उपलब्ध है। वे थोड़े समय के लिए एक वैदिक पुजारी भी रहे थे, जब वे लोगों के घरों में अपने वैदिक पुरोहित दादा जी की सहायता से धार्मिक अनुष्ठान किया करते थे। उन्हें कुछ उन्नत आध्यात्मिक अनुभव (आत्मज्ञान और कुण्डलिनी जागरण) प्राप्त हुए हैं। उनके अनोखे अनुभवों सहित उनकी आत्मकथा विशेष रूप से “शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)” पुस्तक में साझा की गई है। यह पुस्तक उनके जीवन की सबसे प्रमुख और महत्त्वाकांक्षी पुस्तक है। इस पुस्तक में उनके जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण 25 सालों का जीवन दर्शन समाया हुआ है। इस पुस्तक के लिए उन्होंने बहुत मेहनत की है। एमाजोन डॉट इन पर एक गुणवत्तापूर्ण व निष्पक्षतापूर्ण समीक्षा में इस पुस्तक को पांच सितारा, सर्वश्रेष्ठ, सबके द्वारा अवश्य पढ़ी जाने योग्य व अति उत्तम (एक्सेलेंट) पुस्तक के रूप में समीक्षित किया गया है। गूगल प्ले बुक की समीक्षा में भी इस पुस्तक को फाईव स्टार मिले थे, और इस पुस्तक को अच्छा (कूल) व गुणवत्तापूर्ण आंका गया था। इस पुस्तक का अंग्रेजी में मिलान "Love story of a Yogi- what Patanjali says" पुस्तक है। प्रेमयोगी वज्र एक रहस्यमयी व्यक्ति है। वह एक बहुरूपिए की तरह है, जिसका अपना कोई निर्धारित रूप नहीं होता। उसका वास्तविक रूप उसके मन में लग रही समाधि के आकार-प्रकार पर निर्भर करता है, बाहर से वह चाहे कैसा भी दिखे। वह आत्मज्ञानी (एनलाईटनड) भी है, और उसकी कुण्डलिनी भी जागृत हो चुकी है। उसे आत्मज्ञान की अनुभूति प्राकृतिक रूप से / प्रेमयोग से हुई थी, और कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति कृत्रिम रूप से / कुण्डलिनी योग से हुई। प्राकृतिक समाधि के समय उसे सांकेतिक व समवाही तंत्रयोग की सहायता मिली, जबकि

कृत्रिम समाधि के समय पूर्ण व विषमवाही तंत्रयोग की सहायता उसे उसके अपने प्रयासों के अधिकाँश योगदान से प्राप्त हुई।

अधिक जानकारी के लिए, कृपया निम्नांकित स्थान पर देखें-

https://demystifyingkundalini.com/

वैधानिक टिप्पणी (लीगल डिस्क्लेमर)

इस अध्यात्मविज्ञान सम्बंधित पुस्तिका को किसी पूर्वनिर्मित साहित्यिक रचना की नक़ल करके नहीं बनाया गया है। फिर भी यदि यह किसी पूर्वनिर्मित रचना से समानता रखती है, तो यह केवल मात्र एक संयोग ही है। इसे किसी भी दूसरी धारणाओं को ठेस पहुंचाने के लिए नहीं बनाया गया है। पाठक इसको पढ़ने से उत्पन्न ऐसी-वैसी परिस्थिति के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे। हम वकील नहीं हैं। यह पुस्तक व इसमें लिखी गई जानकारियाँ केवल शिक्षा के प्रचार के नाते प्रदान की गई हैं, और आपके न्यायिक सलाहकार द्वारा प्रदत्त किसी भी वैधानिक सलाह का स्थान नहीं ले सकतीं। छपाई के समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि इस पुस्तक में दी गई सभी जानकारियाँ सही हों व पाठकों के लिए उपयोगी हों, फिर भी यह बहुत गहरा प्रयास नहीं है। इसलिए इससे किसी प्रकार की हानि होने पर पुस्तक-प्रस्तुतिकर्ता अपनी जिम्मेदारी व जवाबदेही को पूर्णतया अस्वीकार करते हैं। पाठकगण अपनी पसंद, काम व उनके परिणामों के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। उन्हें इससे सम्बंधित किसी प्रकार का संदेह होने पर अपने न्यायिक-सलाहकार से संपर्क करना चाहिए।

अध्याय-1

महिषासुर मर्दिनी

महिषासुर प्रागैतिहासिक युग में एक महान दैत्य था। वह पुरुष बफेलो / भैंसे के जैसे स्वभाव व उसीकी जैसी शक्ल का था। वह अपनी इच्छा के अनुसार कभी एक दिव्य और स्मार्ट / सुन्दर इंसान और कभी एक भैंसे के रूप में दिखाई देता था। भैंस-वंश की उसकी सेना और उसके अनुयायी देवताओं द्वारा भी पराजित होने के लिए नहीं बने थे। उन्होंने दिव्य और सूक्ष्म लोकों सहित सभी क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया था। वह महिषराज हर किसी को यातना दे रहा था। साधारण लोग देवताओं के दरवाजे पर सहायता के लिए गए, लेकिन वे उन लोगों की मदद करने में असमर्थ थे और उन राक्षसों से खुद भी बहुत बुरी तरह प्रभावित हुए थे, जिससे उन्हें उस मानव जाति के विकास के लिए काम करने की इजाजत नहीं मिल पा रही थी, जो सभी प्राणियों में सबसे अधिक बुद्धिमान होती है। आखिरकार सभी देवता इकट्ठे हो गए और सुपर गॉड / महा देवता ब्रह्मा के द्वार पर गए। वे उनके साथ एक और सुपर भगवान शिव के पास गए। उन्होंने भी खुद को उन लोगों व देवताओं की सहायता करने में असमर्थ पाया, अतः वे भी उनके साथ अंतिम और शीर्ष सुपर भगवान विष्णु के पास चले गए। विष्णु ने उन्हें एकता के महत्व के बारे में बताया। सभी देवताओं और सुपर देवताओं ने अपनी व्यक्तिगत शक्तियों को अभिव्यक्त किया। फिर उन सभी व्यक्तिगत शक्तियों को एक साथ एकजुट किया गया, जिससे एक बहुत ही शक्तिशाली, सुन्दर, मनुष्याकृत और दिव्य देवी के रूप में एक सुपर पावर उत्पन्न हुई, जिसे दुर्गा कहा जाता था। उसने राक्षस को कई बार चेतावनी दी लेकिन उसने उसे हल्के में लिया। आखिरकार उसने मानवता और दिव्यता के विकास के लिए रास्ता खोलने के लिए उसे मार डाला।

यह सनातन धार्मिक साहित्य की शास्त्रीय पौराणिक कहानी है। हम इसे मूल वैज्ञानिक रूप में ले सकते हैं। महिषासुर राक्षस का साम्राज्य प्रागैतिहासिक डायनासौर का साम्राज्य ही था, जब महिषमुख सरीसृप पृथ्वी के चारों ओर घूमते थे, और प्राकृतिक तत्वों / देवताओं द्वारा मानव विकास में बाधा डालते थे। कोई अकेला प्राकृतिक तत्व उनको रोकने में सक्षम नहीं था। तो देहरहित मानव आत्माओं ने उन प्राकृतिक तत्वों के मनुष्याकृत प्रमुखों / देवताओं से अपनी मानवीय अभिव्यक्ति के लिए सहायता माँगी। वे सभी प्राकृतिक तत्व / जल, वायु, अग्नि आदि आखिरकार एक साथ शामिल हो गए और वैज्ञानिक रूप से साबित प्रागैतिहासिककाल की कठोर उल्कापिंड-टक्कर के रूप में उन्होंने उन दैत्यों के विनाश के लिए सबसे अनुकूल स्थितियां बनाईं, जो अंततः डायनासोर को विलुप्त कर पाईं। उस उल्कापिंड की चमकती रोशनी को सबसे खूबसूरत / दिव्य व शक्तिशाली देवी माना गया, जो सभी अनुकूल जलवायु-स्थितियों के संघ की इतनी दुर्लभ घटना के माध्यम से अंतरिक्ष से धरती की ओर गिराया गया

था। वास्तव में ऐसी अति दुर्लभ घटना करोड़ों वर्षों में, सभी जलवायु नियंत्रक प्राकृतिक तत्वों / देवताओं की व्यक्तिगत शक्तियों के संघ से ही होती है। हो सकता है कि उससे पहले भी छोटे-२ उल्कापात हुए हों, जो उस दैत्य को देवी के द्वारा दी गई अंतिम चेतावनी के रूप में माने जा रहे हों।

यह साबित करता है कि प्राचीन पौराणिक कहानियां हमारे आस-पास की वास्तविक और वैज्ञानिक दुनिया के केवल personified / मनुष्याकृत वर्णन ही हैं। ऐसा केवल कार्यात्मक अद्वैत को पैदा करने के उद्देश्य से किया गया है, जो निरंतर अभ्यास के साथ कुंडलिनी जागृति को उत्पन्न करता है। इसलिए इन पुराणों को नियमित रूप से पढ़ा जाना चाहिए, समझ लिया जाना चाहिए और इनसे उत्पन्न अद्वैत-दृष्टिकोण को अपने वर्तमान के अपने व्यक्तिगत जीवन से जोड़ा जाना चाहिए।

अध्याय-2
होली त्यौहार व तंत्र का आपस में रिश्ता

“होली ”नाम ही तांत्रिक है।” ल ”अक्षर को तंत्र में कामप्रधान माना गया है। मूलाधार का बीजाक्षर” लं ”है, व उसी का बीजमंत्र “क्लीं ”है। दोनों में ही” ल ”अक्षर है। मूलाधार चक्र को भी कामप्रधान माना जाता है। प्रेमयोगी वज्र के साथ भी बीजाक्षर से सम्बंधित घटना हुई थी। वह जिस ऑनलाईन कुण्डलिनी ग्रुप-का सदस्य था, उसमें बहुत से लोगों के नाम “ल ”अक्षर वाले थे। कई के नाम में तो दो” ल ”भी थे। उदाहरण के लिए” ल्लो”, “लीं”, व “लि ”आदि। उन” ल ”अक्षर के नाम वाले लोगों के साथ ही उसका अधिकाँश वार्तालाप होता था। उससे उसका मूलाधार चक्र अनजाने में ही जागृत हो गया। उससे उसमें तांत्रिक योग की प्रवृत्ति जागृत हुई, जिससे शीघ्र ही उसकी कुण्डलिनी जागृत हो गई। साथ में, उनके चेहरे भी लाल रंग लिए हुए थे। लाल रंग भी कामोत्तेजक माना जाता है। उससे भी प्रेमयोगी वज्र को सहयोग मिला।

उस फोरम पर उसका नाम हृदयेश था। इसका अर्थ है, “हृदय का स्वामी”। एक परिपक्व व स्वस्थ हृदय ही मूलाधार को लम्बे समय तक क्रियाशील रख सकता है। बहुत मेहनती होने के कारण, उसका नाभि-चक्र भी क्रियाशील था। हृदय-चक्र व मूलाधार चक्र, दोनों को शक्ति की बहुत आवश्यकता होती है। नाभि चक्र दोनों के लिए शक्ति की आपूर्ति कर रहा था। इसलिए हम नाभि चक्र को अनाहत चक्र व मूलाधार चक्र को आपस में जोड़ने वाला पुल भी कह सकते हैं।

इसी तरह देवी भागवत पुराण में भी एक कथा आती है कि किसी जंगल में एक व्यक्ति के मुख से किसी भय के कारण अनायास ही बीजाक्षर वाले बोल निकले थे, क्योंकि वह मानसिक रूप से व वाणी से दिव्यांग भी था। उसी बीजाक्षर के बल से उसे देवी सिद्ध हो गई, और वह हर प्रकार से उन्नति करने लगा।

तंत्र के साथ होली के सम्बन्ध को उजागर करने वाला दूसरा कारक लाल रंग है। हम सभी जानते हैं कि होली का मुख्य रंग लाल रंग ही है। यह रंग होली वाला जोश भी पैदा करता है। आपको यह जानकार हैरानी होगी कि जो कुंकुम आम जनजीवन में सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है, वह हल्दी ही होता है। 95 भाग हल्दी-चूर्ण को 5 भाग चूने (पानी में घोलकर) के साथ मिलाकर जब छाया में सुखाया जाता है, तब वह सुर्ख लाल हो जाता है। चूने की मात्रा बहुत कम होने से इस तरह से निर्मित कुंकुम शरीर के लिए हानिकारक भी नहीं होता। परन्तु सिन्दूर बहुत भिन्न होता है। वह पारे व सीसे का यौगिक होता है, इसलिए स्वास्थ्य के लिए हानि भी पहुंचा सकता है, यदि ढंग से प्रयोग में न लाया जाए। उसका रंग संतरी होता है। हनुमान के ऊपर लगे हुए लाल रंग को आप

सिन्दूर समझें। इसी तरह, गुलाल भी कई रंगों के होते हैं, व प्राकृतिक होते हैं। लाल गुलाब लाली वाले पौधों से, नीले रंग का गुलाल इंडिगो से आदि-२। होली के रंग खुद ही बनाने चाहिए। बाजार में तो अधिकाँश तौर पर सिंथैटिक रंग मिलते हैं, जो शरीर के लिए हानिकारक होते हैं। उपरोक्त कारणों से ही तंत्र के मूलाधार चक्र का रंग भी लाल ही होता है।

होलिका दहन भी तंत्र के अनुसार ही है। हम जानते हैं कि यज्ञादि अनुष्ठान अधिकाँश तौर पर तांत्रिक होते हैं। यज्ञ में जल रही अग्नि के बीच में तांत्रिक अपनी कुण्डलिनी को अनुभव करता है। इससे उसकी कुण्डलिनी बहुत पुष्ट हो जाती है, क्योंकि वह अग्नि के तेज से जगमगा जाती है।

होली के दिन एक दूसरे पर सीधे तौर पर व पिचकारी से रंग उड़ेलना भी तंत्र के अनुसार ही है। हम सभी जानते हैं कि सभी को अपने किए हुए कर्मों का भोग करना ही पड़ता है। तांत्रिक योग से यह प्रक्रिया सरल हो जाती है। उससे फल देने वाले कर्म के संस्कार निरंतर के अभ्यास से इतने क्षीण हो जाते हैं कि या तो वे सीधे ही नष्ट हो जाते हैं, या मामूली सा फल देकर नष्ट हो जाते हैं। होली के रंगों से शरीर का विकृत होना एक प्रकार से पूर्व के किए हुए कुकर्मों से शरीर को दंड मिलना ही है। हो सकता है कि किसी के पिछले कर्मों के अनुसार उसके शरीर को गंभीर चोट लगनी हो। होली के रंग से जब उसका शरीर कुरूप हो जाता है, तो होनी उसे शरीर की क्षति समझ लेती है, जिससे उससे सम्बंधित कुकर्म क्षीण हो जाता है। तांत्रिक योगाभ्यास की अतिरिक्त सहायता से वह नष्ट ही हो जाता है। इसी तरह किसी को पानी में डुबो कर मार सकने वाला कुकर्म पानी की एक पिचकारी मात्र से शांत हो जाता है। होली के दिन चलने वाले हल्के-फुल्के मजाक व वाद-विवाद से भी इसी सिद्धांत के अनुसार ही पिछले कुकर्म शांत हो जाते है। अब ज़रा सोचें, बरसाने की लट्ठमार होली से तो पुराने कुकर्मों का भण्डार ही ढीला पड़ जाता होगा।

अब जो पुरानी कथा है कि होली के दिन प्रहलाद को मारने की मंशा रखने वाली उसकी बहन होलिका स्वयं ही दहन हो गई थी, उसमें वास्तव में हिरण्यकशिपु के कुकर्म को ही होलिका कहा गया है। कहा जाता है कि पिता के कुकर्म पुत्र को भोगने पड़ते हैं। वे कुकर्म (हिरण्यकशिपु की पुत्री व प्रहलाद की बहन के रूप में वर्णित) होली के तांत्रिक प्रभाव से नष्ट हो गए, अर्थात होलिका जल गई।

वास्तव में, होली के दिन चारों ओर कामदेव का तेज विद्यमान होता है, क्योंकि सभी लोग एकसाथ मिलकर काम को बढ़ा रहे होते हैं। उससे मूलाधार चक्र को बहुत बल मिलता है। यह तांत्रिक सिद्धांत है कि मूलाधार की क्रियाशीलता के समय किया गया

कोई भी कार्य अनेक गुना फलदायी होता है। तभी तो होली का दिन तांत्रिक सिद्धि के लिए सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अगर उस दिन तंत्रयोगी की कुण्डलिनी न भी जागृत हो पाए, तो भी कुण्डलिनी को बहुत अधिक बल मिलता है। वास्तव में, कुण्डलिनी की क्रियाशीलता को भी उतना ही अहम् माना जाता है, जितना की कुण्डलिनी-जागरण को।

कई लोग होली का प्रारम्भ कृष्ण-राधा के प्रेम से बताते हैं। इसमें तो होली की काम-प्रधानता स्वयं ही सिद्ध हो गई। तंत्र भी तो काम प्रधान ही है।

अध्याय-3

कुण्डलिनी से रचनात्मक संकल्पों की उत्पत्ति ही भगवान् नारायण (विष्णु) के नाभि कमल से ब्रम्हा (ब्रम्हदेव) की उत्पत्ति बताई गई है

हम सभी को अच्छी, सच्ची और वैज्ञानिक बातों का प्रचार-प्रसार करना चाहिए। यह हम सभी का फर्ज है। सनातनवाद कोई धर्म नहीं है। यह एक शुद्ध विज्ञान है। यह मानवतावादी विज्ञान है। यह कुण्डलिनी विज्ञान है। यह आध्यात्मिक मनोविज्ञान है। क्योंकि शरीर और संसार मन के ही अधीन हैं, इससे सिद्ध होता है कि सनातनवाद एक भौतिक विज्ञान भी है। इसकी अनेक बातें विज्ञान की कसौटी पर खरी उतरी हैं। सैंकड़ों सालों से विभिन्न कट्टर धर्मवादियों व अधर्मवादियों द्वारा इसे नष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है। आज तो वे इसे जड़ से उखाड़ने के लिए चारों और से एकजुट हो गए हैं। इस्लामिक राष्ट्र बनने का तेजी से बढ़ रहा ख़्वाब इसका एक जीता-जागता उदाहरण है। इसी तरह, विभिन्न धर्मों (इसाई धर्म समेत) द्वारा जबरदस्ती या छलपूर्वक धर्मांतरण इसका दूसरा उदाहरण है। भारत में ये दोनों प्रकार के सनातनविरोधी वैचारिक अभियान (एजेंडे) हाल के वर्षों में तेजी से बढ़े हैं। यदि समय रहते हुए हमने सनातनवाद को विज्ञान के साथ प्रस्तुत नहीं किया, तो हमारी आने वाली पीढियां इससे वंचित रह सकती हैं।

सनातनवाद का सभी कुछ कुण्डलिनी आधारित है। सारा सनातनवाद कुण्डलिनी के चारों और घूमता है। कुण्डलिनी ही इसकी धुरी में है। कुण्डलिनी की प्राप्ति के लिए ही पूरा सनातनवाद समर्पित है। इसी प्रकार का एक वैज्ञानिक तथ्य है, कुण्डलिनी और ब्रह्मा-विष्णु के बीच का वैज्ञानिक अंतर्संबंध। इसे हम इस अध्याय में वर्णित करेंगे।

भगवान् विष्णु/नारायण ही कुण्डलिनी के रूप में हैं

जैसे कि मैंने पूर्व में भी वर्णित किया है कि जैसे भगवान् विष्णु शेषनाग पर शयन करते हैं, उसी प्रकार कुण्डलिनी भी तंत्रिका तंत्र (शेषनाग जैसी आकृति वाले) में विराजमान रहती है। नारायण ही कुण्डलिनी हैं, कुण्डलिनी ही नारायण है। दोनों एक ही हैं। अब

चाहे उसे सुवर का, मछली का, कछुए का, देवता का, प्रेमी का, गुरु का आदि किसी का भी रूप दिया जाए। वैसे भी नारायण ने ऐसे अनेकों रूपों में अवतार लिया भी है।

रचनात्मक विचार व संकल्प ही भगवान् ब्रह्मा/ब्रह्मदेव के रूप में हैं

यह वेदों में साफ लिखा है कि सृष्टि के मन को ही ब्रह्मा कहते हैं। वह रचनात्मक समष्टि-मन/ब्रह्मांडीय मन, जिसने इस सृष्टि का निर्माण किया है, वही ब्रह्मा है।

कुण्डलिनी से रचनात्मक विचार व संकल्प उत्पन्न होते हैं

जोविचार क्रिया के रूप में प्रकट हो जाएं, वे संकल्प कहलाते हैं। शक्तिशाली विचार को ही संकल्प कहते हैं। एक अकेला व कार्यकारी विचार तभी संकल्प बन सकता है, जब मन में अन्य विचारों का शोरशराबा न हो। मतलब कि जब मन शांत हो। तब मन की शक्ति उस अकेले विचार को लगती है, जिससे वह पुष्ट होकर संकल्प बन जाता है, और रचनात्मक काम को पैदा करता है। मन की शान्ति कुण्डलिनी से ही प्राप्त होती है। यह देखा भी गया है कि बहुत से लोगों की कामयाबी के पीछे कुण्डलिनी ही होती है। किसी गुरु, प्रेमी आदि से प्रेरणा लेकर कामयाबी प्राप्त करने का भी यही अर्थ है कि गुरु आदि की छवि आदमी के मन में लगातार बसी रही। वह चिरस्थायी मानसिक छवि ही तो कुण्डलिनी है। इसका मतलब है कि प्रेरणा से कामयाबी भी कुण्डलिनी के माध्यम से ही मिलती है। ऐसा मैंने खुद अनुभव किया है। वैज्ञानिक तौर से भी सिद्ध हो गया है कि योग (कुण्डलिनी) रचनात्मकता को बढ़ाता है।

कुण्डलिनी की नाभि में ही विचार व संकल्प पैदा होते हैं

नाभि केंद्र को कहते हैं। कुण्डलिनी के ध्यान के साथ विविध नए-पुराने विचार प्रकट होते हैं। उनमें से फालतू विचार शांत हो जाते हैं। उससे लाभदायक विचार ताकतवर बनकर संकल्प बन जाते हैं। इसी प्रकार भगवान् नारायण की नाभि से भगवान् ब्रह्मा (संकल्प-रूप) उत्पन्न होते हुए बताए गए हैं। जब मैं रचनात्मक कामों में व्यस्त रहता था, तब मुझे अपनी कुण्डलिनी से बहुत सहयोग मिलता था। इस प्रकार सिद्ध हो जाता है कि पुराणों में जो भगवान् विष्णु की नाभि से ब्रह्मा की उत्पत्ति बताई गई है, वह कुण्डलिनी से उत्पन्न रचनात्मकता की ही व्याख्या की गई है। ऐसा दोनों मामलों में होता है, क्योंकि जो हमारे शरीर में घटित हो रहा है, वह सभी कुछ ब्रह्माण्ड में भी वैसा ही घटित हो रहा है। इसका जीता जागता उदाहरण है बुद्धिस्ट योगियों के द्वारा यह कहना कि उनका दिमाग और सोच-विचार उनकी नाभि में होते हैं।

अध्याय-4
कुंडलिनी के लिए ही तांत्रिक भैरव नाथ ने माता वैष्णो देवी का अपमान किया था

दोस्तों, सनातनियों के पवित्र तीर्थस्थल वैष्णो देवी के मूल में एक कथा आती है कि तांत्रिक भैरव नाथ कन्या वैष्णो के पीछे भागा था। वह उसके माध्यम से अपनी मुक्ति प्राप्त करना चाहता था (सम्भवतः तांत्रिक यौन-योग के माध्यम से)। ऐसा वह अपनी कुंडलिनी को जागृत करके करना चाहता था। कन्या वैष्णो उसकी अच्छी मंशा को नहीं समझ सकी और क्रोध में आकर काली बन गई और उसका वध करने लगी। तब भैरव को उसकी दिव्यता का पता चला और वह उससे क्षमा मांगने लगा। वैष्णो को भी उसकी अच्छी मंशा का पता चल गया। सम्भवतः उसे पछतावा भी हुआ कि उसने अनजाने में एक महाज्ञानी तांत्रिक को मारने का प्रयास किया। इसीलिए तो उसने उसे मुक्ति का वर दिया और यह भी कहा कि भैरव के दर्शन के बिना मेरे दर्शन का कोई फल नहीं मिलेगा। यह प्रसंग सांकेतिक या मैटाफोरिक भी प्रतीत होता है। माता वैष्णो ने भैरव को असलियत में नहीं मारा था। वास्तव में मोक्ष प्राप्त करने के लिए शून्य बनना पड़ता है। अपना सब कुछ खोना पड़ता है। भैरव को भी मुक्ति के लिए ज़ीरो बनना पड़ा। इसी ज़ीरो को ही असम्प्रज्ञात समाधि भी कहते हैं, जिससे आत्मज्ञान होता है। इसी को भैरव का मरना कहा गया है। चूँकि भैरव के मन में वैष्णो के रूप की समाधि के लगने से ही वह आध्यात्मिक रूप से विकसित होकर असम्प्रज्ञात समाधि और आत्मज्ञान के स्तर को पार करता हुआ अपनी मुक्ति के उच्चतम स्तर तक पहुंचा, इसीलिए कथा-प्रसंग में कहा गया कि वैष्णो ने भैरव को मारा।

दूसरे प्रकार से ऐसा भी हो सकता है कि देवी माता की लघु संगति से उसे तांत्रिक प्रेरणा प्राप्त हुई हो। उससे उसने अपनी असली तांत्रिक प्रेमिका की सहायता से कुंडलिनी जागरण की प्राप्ति की हो, जिससे उसका अकस्मात रूपांतरण हो गया हो। इसीको उसका देवी माता के द्वारा मारा जाना कहा गया हो।

तीसरे प्रकार से देवी माता के द्वारा भैरव बाबा का मारा जाना इस सिद्धांत का मैटाफोर भी हो सकता है कि भौतिक समृद्धि के लिए यौन तंत्र का इस्तेमाल करने से भौतिक तरक्की तो प्राप्त होती है, पर मुक्ति नहीं मिलती, अर्थात मरना पड़ता है। फिर भी अच्छी मंशा के बावजूद भी बाबा भैरव ने तंत्र के नियमों के विरुद्ध तो काम

किया ही था। तंत्र में कभी हमलावर रुख नहीं अपनाया जाता। एक नम्र व विरक्त साधु-संन्यासी या भोले-भाले बच्चे की तरह व्यवहार करना पड़ता है। स्वेच्छा से बने तांत्रिक साथी को देवी-देवता की तरह सम्मान देना पड़ता है, और यहाँ तक कि पूजना भी पड़ता है। दोनों को एक-दूसरे को बराबर मानना पड़ता है। तांत्रिक गुरु की मध्यस्थता भी जरूरी होती है।

विवाहपूर्व प्रेम संबंध वैष्णो-भैरव वाली उपरोक्त कथा का विकृत रूप प्रतीत होता है

विकृत रूप हमने इसलिए कहा क्योंकि अधिकांश मामलों में लड़के-लड़की के बीच का प्रेम संबंध कुंडलिनी जागरण के लिए नहीं होता। अर्थात वह प्रेमसंबंध तांत्रिक प्रकार का नहीं होता। वैसे तो तंत्र में किसी की बेटी या पत्नी से शारीरिक संबंध बनाना वर्जित है। इसलिए विवाहपूर्व या विवाहेतर प्रेमसंबंध को तांत्रिक बनाए रखने के लिए शारीरिक संबंध से परहेज रखना जरूरी है। इससे यह लाभ भी होता है कि आदमी को अपने असली तांत्रिक प्रेमी अथवा पति/पत्नी से ही पूरी तरह संतुष्ट होकर गहन तांत्रिक साधना करने की प्रेरणा मिलती है। वैसे तो तांत्रिक प्रेम का मुख्य कार्य शारीरिक आकर्षण को पैदा करना है, ताकि प्रेमी का अविचल चित्र निरंतर मन में कुंडलिनी के रूप में बना रह सके। यह आकर्षण साधारण बोलचाल, रहन-सहन, हाव-भाव, हँसी-मजाक व सैर-सपाटे आदि से भी पैदा हो सकता है। वास्तव में इनसे पैदा होने वाला शारीरिक आकर्षण प्रत्यक्ष शारीरिक संबंध से पैदा होने वाले शारीरिक आकर्षण से भी कहीं ज्यादा मजबूत और टिकाऊ होता है। साथ में, एक से अधिक साथी के साथ शारीरिक संबंध रखना सामुदायिक स्वास्थ्य व सामुदायिक संबंधों के लिए भी अच्छा नहीं है। इसलिए जहाँ तक संभव हो, इसे केवल एकल साथी तक ही सीमित रखा जाना चाहिए।

वैष्णो कन्या अपने पति परमेश्वर के लिए तपस्या कर रही थीं

वैष्णो में सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती, इन तीनों देवियों की शक्ति का सम्मिलन था। वह परमेश्वर को पति रूप में पाना चाहती थीं। वास्तव में सभी मनुष्य ईश्वर से आए हैं, और उसी को पाना चाहते हैं। इसका मैटाफोरिक अर्थ यह निकलता है कि तंत्रसम्पन्न स्त्री उत्तम पति (ईश्वर-सदृश) की तलाश में रहती है। यदि उसे ऐसा पति न मिल पाए तो वह अपने साधारण पति को भी ईश्वर बना देती है।

अध्याय-5
कुंडलिनी ही सनातन पुराणों की सर्वप्रमुख विषयवस्तु है: शिव व केतकी के फूल की कहानी

क्या है केतकी के फूल की कहानी

शिवपुराण के अनुसार एक बार भगवान ब्रह्मा और भगवान विष्णु के बीच में झगड़ा हो गया था। भगवान ब्रह्मा कहने लगे कि उन्होंने सारे संसार का निर्माण किया है, इसलिए वे ही सबसे बड़े हैं। दूसरी ओर, भगवान विष्णु कहने लगे कि वे ही सारे संसार का पालन और रक्षण करते हैं, इसलिए वे ही सबसे बड़े हैं। जब उनके झगड़े से चारों ओर उथल-पुथल मच गयी, तब उन दोनों के बीच में एक ज्योतिर्मय स्तंभ प्रकट हुआ। आकाशवाणी से आवाज हुई कि जो सबसे पहले इसके ओर-छोर का पता लगाएगा, वही सबसे बड़ा है। भगवान विष्णु ऊपर की तरफ चल पड़े, और भगवान ब्रह्मा नीचे की ओर। परंतु दोनों ही उसके छोर का पता नहीं लगा पाए और खाली हाथ वापिस लौट आए। विष्णु ने अपनी असफलता की सच्ची कहानी ब्रह्मा को बयान कर दी, परंतु ब्रह्मा भगवान विष्णु से झूठ बोलने लगे। ब्रह्मा ने कहा कि वे उसके छोर को छूकर वापिस आए थे। ब्रह्मा ने केतकी के सफेद फूल को साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया। तभी इस झूठ से नाराज होकर भगवान शिव वहाँ प्रकट हो गए। उन्होंने कहा कि वे ही सबसे बड़े हैं तथा उनके सिवाय कोई दूसरा इसके आदि-अंत को नहीं जान सका है। केतकी के झूठ से नाराज होकर शिव ने उसको शाप दिया कि वह कभी उनकी पूजा में शामिल नहीं किया जाएगा। साथ में, ब्रह्मा को भी शाप दिया कि कहीं भी उनका मंदिर नहीं होगा, और न ही उनकी पूजा की जाएगी।

शिव-केतकी की कहानी का तांत्रिक रहस्य

ब्रह्मा और केतकी के फूल किसके प्रतीक हैं

वास्तव में उपरोक्त कथा मैटाफोरिक है, और कुंडलिनी योग की सर्वश्रेष्ठता की ओर इशारा कर रही है। ब्रह्मा उन लोगों का प्रतीक है, जो अंधाधुंध निर्माणकार्य से प्रकृति को नुकसान पहुंचा रहे हैं। अहंकार का सहारा लेने वाले बिजनेसमैन, नेता और नकली

धर्मगुरु इसी प्रकार के लोग होते हैं। रजोगुणी यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान करवाने वाले लोग भी इनमें शामिल हैं। उनके अंदर अहंकार पैदा हो जाता है, और वे अपने आप को सबसे बड़ा समझने लगते हैं। उनके पास धन की कोई कमी नहीं होती, इसलिए वे समाज के प्रतिष्ठित व साफ-सुथरी छवि वाले लोगों को और पत्रकारों को खरीद लेते हैं। केतकी का सफेद फूल ऐसे ही लोगों का परिचायक है। वे ऐसे लोगों से अपना भरपूर गुणगान करवाते हैं, और असली भगवान को अनदेखा करके खुद भगवान बन बैठते हैं। इसीलिए ऐसी साफ सुथरी व सफेद छवि वाले कपटी लोग भगवान शिव को प्रसन्न नहीं कर पाते। उन्हें प्रसन्न करने के लिए तो बच्चे की तरह भोले बनना पड़ता है। तभी तो शिव को भोलेनाथ या भोले बाबा भी कहते हैं। तांत्रिक भी भोले ही होते हैं। ब्रह्मा जैसी छवि वाले उपरोक्त लोग भी लोगों से सच्चा सम्मान नहीं प्राप्त कर पाते। उनके प्रभाव के डर से ही लोग उन्हें झूठा सम्मान देते हैं। जैसे भगवान ब्रह्मा स्तंभ का निचला छोर ढूंढते हैं, वैसे ही उनकी तरह के लोगों का झुकाव भी नीचे अर्थात तमोगुण की तरफ ज्यादा होता है। तमोगुण मदिरा, माँस आदि के अनियंत्रित उपभोग के रूप में हो सकता है। वे ब्रह्मा की तरह ही रजोगुणी होते हैं। रजोगुण का झुकाव तमोगुण की तरफ ज्यादा होता है। वे बहुत नीचे के लोकों या चक्रों तक पहुंच जाते हैं, पर सबसे नीचे के लोक अर्थात मूलाधार चक्र तक नहीं पहुंच पाते। इसका सीधा सा अर्थ है कि वे मूलाधार चक्र पर कुंडलिनी को जगा नहीं पाते। यदि मूलाधार चक्र पर भी कुंडलिनी जागृत हो जाए, तो वह सभी चक्रों या लोकों को भेदते हुए सीधी सहस्रार में चली जाती है, और वहाँ भी जागृत हो जाती है। पर ऐसा तांत्रिक लोग ही कर सकते हैं, साधारण लोग नहीं।

भगवान नारायण सेवादारों व दानवीरों के प्रतीक हैं

समाज के कुछ लोग जनता की सेवा से सीधे जुड़े होते हैं। उनमें सेवादार और दानवीर मुख्य होते हैं। सात्विक धर्म-कर्म आदि करने वाले लोग भी इनमें शामिल हैं। अनेक प्रकार की मानसिक साधनाएं करने वाले लोग भी ऐसे ही होते हैं। हालाँकि वे भोले होते हैं, पर फिर भी वे ज्योतिर्मय स्तंभ का छोर नहीं ढूंढ पाते। वे स्तंभ पर ऊपर की ओर जाते हैं, क्योंकि वे सत्त्वगुणी होते हैं। उनके अंदर मन के दोष नहीं होते। अहंकार भी उनमें कम होता है। वे काफी ऊपर के लोकों या चक्रों तक चले जाते हैं, पर सर्वोच्च लोक या सहस्रार तक नहीं पहुंच पाते। इसका अर्थ है कि वे भी कुंडलिनी को जागृत नहीं कर पाते। फिर शिव ने कहा कि वे ही इसे जानते हैं। साथ में कहा कि इसलिए वे ही सबसे बड़े हैं। इसका सीधा सा अर्थ है कि शिवभक्त तांत्रिक ही अपनी कुंडलिनी को जागृत कर पाते हैं।

ज्योतिर्मय स्तंभ सुषुम्ना नाड़ी का और विभिन्न लोक विभिन्न चक्रों के प्रतीक हैं

वास्तव में सारा संसार हमारे अपने मनुष्य शरीर में बसा हुआ है, “यतपिण्डे तत्ब्रह्मांडे” के अनुसार। ऐसा ही “शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुंडलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)” पुस्तक में भी वैज्ञानिक रूप से सिद्ध किया गया है। जो कथा में विभिन्न ऊपरी और निचले लोक कहे गए हैं, वे हमारे शरीर की रीढ़ की हड्डी में स्थित चक्र ही हैं। जो प्रकाशमय स्तम्भ है, वह सुषुम्ना नाड़ी है। वह भी चमकदार संवेदना के रूप में होती है। वह मूलाधार चक्र से अर्थात सबसे निचले लोक से सहस्रार चक्र अर्थात सबसे ऊपर के लोक तक गुजरती है। बीच में अनेक प्रकार के लोक अर्थात चक्र आते हैं। उसका लघु रूप लिंग या वज्र है। वही उस स्तंभ का सबसे प्रमुख भाग होता है, क्योंकि वहीँ से प्रकाशमय संवेदना स्तंभ उत्पन्न होता है।

अध्याय-6
कुंडलिनी योगसाधना की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए ही शिवपुराण में शिव-केतकी की कथा के रूपक का वर्णन आता है

दोस्तों, आओ थोड़ा कुंडलिनी ध्यान कर लेते हैं। पिछले अध्याय में मैंने जो शिव-केतकी की कथा कही थी, वह पुराणों में लिखित रूपकों का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। पुराण ऐसे रूपकों से भरे हुए हैं। रूपकों की सहायता से प्रस्तुत विषय अच्छी तरह से समझ में आ जाता है, और अच्छी तरह से याद रहता है। अधिकांश आध्यात्मिक ज्ञान मन की सीमा से बाहर होता है, और प्रत्यक्ष अनुभव की वस्तु है। इसलिए उसे रूपकों में ढालकर मन के दायरे में लाया जाता है।

पूर्वोक्त प्रकाशमान स्तंभ के ओर-छोर की खोज करने के लिए ब्रह्मा ऊपर की ओर और भगवान विष्णु नीचे की ओर भागे थे

पूर्वोक्त कथा में हमने विष्णु को ऊपर की ओर तथा ब्रह्मा को नीचे की ओर जाते दिखाया था। पर वास्तविकता इसके विपरीत थी। वैसे इससे कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ता। रूपकों को हम किसी भी तरफ को ढाल सकते हैं। सत्य का अनुभव तो वही रहता है। रूपक सत्य को नहीं बदल सकते। रूपकों का अपना कोई गणित नहीं होता। रूपक तो केवल सत्य को समझाने के लिए बनाए गए होते हैं। रूपक की इस विपरीत स्थिति में हम सत्य के अनुभव को निम्नलिखित तरीक़े से ढाल सकते हैं। ब्रह्मा प्रकार के लोग क्योंकि अंधाधुंध निर्माण कार्य करवाते हैं, इसलिए वे अपने सकाम कर्मों के फलस्वरूप विभिन्न उच्च लोकों को प्राप्त करते हैं। वे सहस्रार रूपी परम लोक को प्राप्त नहीं करते, क्योंकि वे जगत के प्रति आसक्त होते हैं। इसलिए वे कुंडलिनी योगसाधना नहीं कर पाते। यदि करते हैं, तो वह शीघ्र फलदायी नहीं होती। बाकि तो पूर्वोक्त रूपक में सब ठीक है। इसी तरह, विष्णु प्रकार के लोग नम्रता के, गहन अन्वेषण के, और ज्ञान चिंतन के प्रतीक होते हैं। वे नीचे के लोकों में रहने वाले दीन दुखी लोगों की सेवा में जुट जाते हैं। उनमें भी जगत के पालन और रक्षण का अहंकार आ जाता है। फिर भी वे अपनी झूठी शेखी नहीं बघारते, और न ही अपने प्रभाव का ज्यादा ढिंढोरा पीटते हैं। इसलिए उन्हें नीचे के लोकों या चक्रों में जाने वाला बताया गया है। इसी कारण से उनकी भी

कुंडलिनी योग साधना आसानी से सफल नहीं होती। बाकि तो रूपक में सब ठीक ही है। असली तांत्रिक कुंडलिनी योगी तो भगवान शिव की तरह मस्तमौले होते हैं। उन्हें दुनियादारी का कोई फिक्र-फाका नहीं होता। वे अपनी कुंडलिनी के साथ मस्त और आनन्दमग्न होते हैं। वे तांत्रिक साधना से बढ़ाई गई अपनी एनर्जी को दुनियादारी में बर्बाद न करके उससे अपनी कुंडलिनी को जागृत करते हैं। वे ज्यादा पाने की चाहत में नहीं भागते। जो उन्हें मिल जाता है, उसी में संतुष्ट हो जाते हैं। भगवान शिव के पास भी एक बाघम्बर, एक मृगचर्म, एक त्रिशूल, एक सर्प, एक बैल और पार्वती माता के सिवाय कुछ नहीं होता। वे इन्हीं में खुश रहते हुए गहन व आनन्दमयी ध्यान साधना में डूबे रहते हैं।

केतकी का पुष्प ऐसे लोगों का प्रतीक है, जो भगवान के साथ रहकर भी उसे नहीं पहचानते

कथा में आता है कि केतकी का सफेद पुष्प भगवान शिव के मस्तक से नीचे गिरा था, पर वह भी उस ज्योति स्तंभ का आदि-अंत नहीं जानता था। केतकी की तरह साफ-सुथरी छवि वाले लोग भी उन पुजारियों की तरह हैं, जो लगातार मन्दिरों में रहकर भी भगवान को नहीं जानते। आम जनता उन पर विश्वास करती है, इसलिए ब्रह्मा प्रकार के लोग इस बात का नाजायज फायदा उठाते हैं। वे पैसे के दम पर उनसे अपना गुणगान करवाते हैं, और जतवाते हैं कि वे सबकुछ अर्थात भगवान को जानते हैं। बाकी तो रूपक में सब वैसा ही है।

अध्याय-7

कुंडलिनी ही यमुना में पौराणिक कालियनाग को मारने वाले भगवान श्रीकृष्ण के रूप में अभिव्यक्त होती है

मित्रों, योग एक वैज्ञानिक विधि है। आम लोग इसे आसानी से नहीं समझ सकते। अभ्यास तो इसका तब करेंगे न, जब इसे समझेंगे। इसीलिए आम जनमानस की सुविधा के लिए पुराण रचे गए हैं। पुराणों में योग को विभिन्न मिथक घटनाओं और कथाओं के रूप में समझाया गया है। हालांकि मिथक रूप होने पर भी ये कथाएं सैद्धांतिक रूप से सत्य होती हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि ये मिथक शास्त्रीय होते हैं, विशेष रूप से डिज़ाइन किए गए होते हैं, और गैर-शास्त्रीय या साधारण मिथकों के विपरीत होते हैं। कुछ तथाकथित आधुनिकतावादियों की सोच के विपरीत, ये अंधविश्वास की श्रेणी में नहीं आते। सामाजिक, व्यक्तिगत और व्यावहारिक मर्यादाओं के उल्लंघन से बचने के लिए कई बातें सीधे तौर पर नहीँ कही जा सकती हैं, इसलिए उन्हें वैज्ञानिक मिथक के रूप में कहना पड़ता है। योग को एकदम से समझना मुश्किल हो सकता है। लम्बे समय तक यौगिक या अद्वैतमयी जीवनशैली को अपना कर रखना पड़ता है। इसीलिए पुराणों में योग से संबंधित बातों को मनोरंजक मिथक कथाओं के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इससे ये कथाएं लंबे समय तक अपने प्रति आदमी की रुचि बना कर रखती हैं। इनसे आदमी अपनेआप ही अप्रत्यक्ष रूप से योगी बना रहता है, और अनुकूल परिस्थिति मिलने पर थोड़े से अतिरिक्त प्रयास से वह पूर्ण योगी भी बन सकता है। यदि सभी लोग एकसाथ पूर्णकालिक योगी बन गए, तब दुनियादारी के काम कैसे चलेंगे। इसीलिए योग को ऐसी वैज्ञानिक व सुहानी कथाओं के रूप में ढाला जाता है, जिन पर विश्वास बना रहे। इससे दुनियादारी के सारे दायित्वों को निभाते हुए भी आदमी हर समय यौगिक जीवनशैली में बंधा रहता है। ऐसी ही एक प्रसिद्ध कथा श्रीमद्भागवत महापुराण में आती है, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण व कालियनाग के बीच हुए युद्ध का वर्णन है। उस कथा के अनुसार भगवान विष्णु के वाहन गरुड़ के डर से रमणक द्वीप पर कालिय नाम का एक विशाल नाग रहता था, जिसके सैंकड़ों फन थे। उसे किसी संत ने श्राप दिया था कि कृष्ण भगवान उसको मारकर उसका उद्धार करेंगे। इसलिए वह वृन्दावन के समीप बह रही यमुना नदी में आ गया था। उसके जहर से यमुना का पानी जहरीला हो गया था, जिससे आसपास के लोगबाग और पशु-पक्षी मर रहे थे। कृष्ण भगवान अपने गोप मित्रों के साथ वहाँ गेंद खेल रहे थे। तभी उनकी गेंद यमुना के जल में चली गई। श्रीकृष्ण ने तुरंत यमुना में छलांग लगा दी। अगले ही पल वे कालियनाग से कुश्ती लड़ रहे थे। बहुत आपाधापी के बाद श्रीकृष्ण उसके बीच वाले और सबसे बड़े

सिर पर चढ़ गए। वहाँ उन्होंने अपना वजन बढ़ा लिया और उसके फनों को मसल दिया। उन्होंने उसके सिर और पूँछ को एकसाथ पकड़कर उसे यहाँ-वहाँ पटका। अंत में उन्होंने कालियनाग को हार मानने पर मजबूर कर दिया। तभी कालियनाग की पत्नियां वहाँ आईं और भगवान कृष्ण से उसके प्राणों की भिक्षा माँगने लगीं। श्रीकृष्ण ने उसे इस शर्त पर छोड़ा कि वह सपरिवार यमुना को छोड़कर रमणक द्वीप पर वापिस चला जाएगा और दुबारा यमुना के अंदर कभी नहीं घुसेगा।

कालियनाग सुषुम्ना नाड़ी या मेरुदंड का प्रतीक है, और भगवान श्रीकृष्ण कुंडलिनी के प्रतीक हैँ

वास्तव में आदमी की संरचना एक नाग से मिलती है। आदमी का सॉफ्टवेयर उसके केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र से बना होता है, जो आकृति में एक फन उठाए नाग की तरह दिखता है। उसमें मस्तिष्क और मेरुदंड आते हैं। आदमी का बाकी का शरीर तो इसी केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर बाहर-बाहर से मढ़ा गया है। इसी केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में सुषुम्ना नाड़ी प्रवाहित होती है। यहाँ यमुना नदी का पानी मेरुदंड के चारों ओर बहने वाले सेरेब्रोस्पाइनल फ्लूड का प्रतीक है। रमणक द्वीप में निवास करना दुनियादारी के भोग-विलास में उलझने का प्रतीक है। रमणक शब्द को रमणीक या रमणीय शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है मनोरंजक। गरूड़ का भय साधु संतों के भय का प्रतीक है। रमणीक जगह पर साधु संत नहीं जाते। यह देखा जाता है कि साधु संत लोगों को दुनियादारी के फालतू झमेलों से दूर रखते हैं। साधु का श्राप किसी सज्जन द्वारा ईश्वर का सही रास्ता दिखाना है। कालियनाग का श्रीकृष्ण के द्वारा मारे जाने के बारे में कहना उसको आसक्ति के बंधन से मुक्ति प्रदान करने का प्रतीक है। श्रीकृष्ण के द्वारा उसे वापिस रमणक द्वीप भेजने का अर्थ है कि वह दुनिया के भोले-भाले लोगों से दूर एकांत में चला जाए और वहाँ पर आसक्ति का विष फैलाता रहे। कालियनाग की पत्नियां दस इन्द्रियों की प्रतीक हैं। इनमें 5 कर्मेन्द्रियां और 5 ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। ये इन्द्रियाँ कालियनाग की पत्नियां इसलिए कही गई हैं, क्योंकि ये दुनियादारी में आसक्त आदमी के सान्निध्य में बहुत शक्तिशाली होकर उससे एकाकार हो जाती हैं। कालियनाग का विष आसक्तिपूर्ण जीवनशैली का प्रतीक है। यह दुनिया का सबसे शक्तिशाली विष है। इससे आदमी जन्म-मरण के चक्कर में पड़कर बार-बार मरता ही रहता है। कालियनाग के सैंकड़ों फनों से निकल रहे विष का अर्थ है कि मस्तिष्क में पैदा हो रही सैंकड़ों इच्छाओं व चिंताओं से यह आसक्ति बढ़ती ही रहती है। भगवान कृष्ण यहाँ कुंडलिनी के प्रतीक हैं। उनका कालियनाग के बीच वाले मस्तक पर चढ़ने का अर्थ है, कुंडलिनी का सहस्रार चक्र में ध्यान करना। श्रीकृष्ण के द्वारा गेंद खेलने का अभिप्राय कुण्डलिनी योगसाधना से है। गेंद यहाँ प्राणायाम की प्राणवायु की प्रतीक है। कृष्ण के सखा ग्वाल-बाल विभिन्न प्रकार के प्राणायामों व योगसाधना के प्रतीक हैं। जैसे गेंद आगे-पीछे जाती रहती है,

वैसे ही साँसें भी। गेंद का नदी में घुसने का अर्थ है, प्राणवायु का चक्रों में प्रविष्ट होना। श्रीकृष्ण का नदी में छलांग लगाने का अर्थ है कि कुंडलिनी भी प्राणवायु के साथ चक्रों में प्रविष्ट हो गई। यमुना पवित्र नदी है, जिसमें श्रीकृष्ण छलांग लगाते हैं। इसका अर्थ है कि प्राणवायु से पवित्र हुए चक्रों में ही कुंडलिनी प्रविष्ट होती है। श्रीकृष्ण के द्वारा कालियनाग के फनों को मसले जाने का अर्थ है कि कुंडलिनी ने मस्तिष्क की फालतू इच्छाओं और चिंताओं पर रोक लगा दी है, तथा अवचेतन मन में दबे पड़े वैचारिक कचरे की सफाई कर दी है। श्रीकृष्ण के द्वारा कालियनाग के सिर और पूँछ को एकसाथ पकड़े जाने का अर्थ है कि कुंडलिनी मूलाधार चक्र से सहस्रार चक्र तक पूरी सुषुम्ना नाड़ी में फैल गई है। मूलाधार से शक्ति लेकर कुंडलिनी सहस्रार में चमक रही है। ऐसा तब होता है जब तालु-जिह्वा के जोड़ या सहस्रार और मूलाधार का ध्यान एकसाथ किया जाता है। ऐसा करने से कालियनाग के पटके जाने का अर्थ है कि उससे दिमाग का फालतू शोर खत्म हो रहा है, जिससे आदमी शाश्वत आनन्द की ओर बढ़ रहा है। कालियनाग को जान से मारने का प्रयास करने का अर्थ है कि शरीर के तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित रूप में ही काम करने देना है। कालियनाग का दुबारा यमुना में न प्रविष्ट होने का अर्थ है कि कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी कभी आसक्तिपूर्ण व्यवहार नहीं करता।

अध्याय-8
कुण्डलिनी ही जैव विकास का मुख्य उद्देश्य है

कुण्डलिनी विकास के रूप में जीव विकास

योग के बारे में सुनने में आता है कि कुण्डलिनी (नाड़ी-ऊर्जा) ही विभिन्न जीवों के रूप में ऊपर चढ़ती रहती है। सबसे निम्न जीवों में व पेड़-पौधों में यह मूलाधार में सुषुप्त रहती है। इसे कुंडलिनी शक्ति या प्राण शक्ति भी कहते हैं। वास्तव में, उनमें भी यह शरीर को बनाए रखने के लिए जीव द्वारा अनुभव किए बिना ही पृष्ठभूमि में हमेशा काम करती रहती है। यह ऐसे ही है, जैसे एक आदमी जब सोया होता है, तब उसकी चेतना लुप्त होती है, पर वह शरीर को जीवित रखने वाले सभी काम तब भी कर रही होती है। यह पूरे शरीर में वितरित रहती है, लेकिन इसे मूलाधार चक्र में निवसित कहा जाता है, क्योंकि यह इसके विकास और पोषण का मुख्य स्थान है। यह ऐसा ही है, जैसे कि एक आदमी दुनिया में हर जगह भटक सकता है, लेकिन वह अपने विकास, पोषण और आराम(नींद) को मुख्य रूप से अपने घर पर ही प्राप्त करता है। साथ में, कुण्डलिनी मूलाधार चक्र से ही अपनी लम्बी यात्रा शुरु करती है। अचेतन मन और मूलाधार चक्र, दोनों को समान कहा जाता है, और दोनों को सबसे बुरी भावनाओं से जोड़ा जाता है। आगे जो कहा गया है कि कुंडलिनी की शुरुआत मूलाधार चक्र से ही होती है, इसका अर्थ है कि प्रकाश की ओर यात्रा अंधेरे से ही शुरू होती है। उससे थोड़े विकसित जीवों में यह मूलाधार में अत्यल्प जागृत अवस्था में आ जाती है। इन्हें उभयलिंगी या हेर्मैप्रोडिटिक कहा जा सकता है। **सम्भवतः इसी स्तर पर पूर्ण आत्मा सहस्रार से गिरकर मूलाधार के गड्ढे में फंस कर सो गई थी। इसीलिए तो उस जीव का यिन या स्त्री और यांग या पुरुष रूप में विभाजन हुआ, ताकि एक-दूसरे के प्रति आकर्षण से आत्मा मूलाधार से ऊपर चढ़ते हुए पुनः सहस्रार में प्रविष्ट हो सके।** मूलाधार के वर्चस्व वाले सबसे निम्न जीवों के पास अपशिष्ट शरीर उत्पादों के उन्मूलन के अलावा बाहरी ऊर्जावान कार्य करने के लिए कुछ भी नहीं है। यह गुदा द्वार के पास स्थित मूलाधार चक्र का कार्य है। इसलिए उनकी कुंडलिनी ऊर्जा को मूलाधार चक्र में केंद्रित कहा जाता है। उससे विकसित जीवों में यह स्वाधिष्ठान चक्र तक ऊपर चढ़ जाती है। यहां जीव का यौन विभाजन होता है और वह यौन आकर्षण के साथ यौन इच्छा महसूस करने लगता है। तभी तो देखा जाता है कि निम्न जीवों में प्रजनन की गति बहुत तेज होती है। उसमें उनकी अधिकांश ऊर्जा का व्यय हो जाता है। यह कुंडलिनी

या जीव विकास के लिए अद्‌भुत बल प्रदान करता है। यह बल आज के विकसित मानव में भी लगातार काम कर रहा है। मध्यम विकसित जीवों में यह नाभि चक्र में आ जाती है। तभी तो अधिकांश निम्न जीव रात-दिन खाने में ही लगे रहते हैं। उच्च कोटि के प्राणी में जैसे सम्भवतः गाय में व प्रेममयी मनुष्य में यह हृदय चक्र में आ जाती है। संभवतः तभी तो गाय वात्सल्य स्नेह से भरी हुई होती है। गाय में पाचन का अधिकांश काम सूक्ष्म जीव करते हैं, इसलिए ऊर्जा की काफी बचत हो जाती है। बबून, गोरिल्ला आदि जैसे प्राइमेट्स में, कुंडलिनी ऊर्जा आगे उनकी भुजाओं या फ़ॉर्लिम्ब्स तक चली जाती है, इसीलिए वे अधिकतम रूप से अपने फ़ॉर्लिम्ब फ़ंक्शन का उपयोग करते हैं। इसी तरह, कोयल जैसे सुंदर गायन करने वाले पक्षी में, गले के चक्र में कुंडलिनी ऊर्जा को केंद्रित कहा जा सकता है। डॉल्फिन जैसे विश्लेषणात्मक कौशल वाले बुद्धिमान जानवरों में, इसे आज्ञा चक्र तक आने वाला कहा जा सकता है। यह मानव में ही सहस्रार चक्र तक आ सकती है, वह भी उचित मस्तिष्क-अभ्यास के साथ, क्योंकि केवल वही इसे जागृत कर सकता है, और जागरण का स्थान भी केवल सहस्रार ही है। सबसे उच्च कोटि के मनुष्य में यह सहस्रार में पूर्ण रूप से जाग जाती है।

कुंडलिनी के सात चक्र सात लोकों क़े रूप में हैं

शास्त्रों में ऊपर के सात लोकों का वर्णन आता है। ये सात लोक सात चक्रों के रूप में हैं। सबसे निम्न लोक मूलाधार चक्र है, क्योंकि उस स्तर के जीवों में सबसे कम चेतना होती है। उसके ऊपर के लोकों या चक्रों में जाते हुए चेतना का स्तर बढ़ता रहता है। सहस्रार में यह स्तर सर्वाधिक होता है। कुंडलिनी जागरण अर्थात शिव और शिवा के मिलन के समय चेतना का स्तर पूर्ण हो जाता है, जिससे उसे शिवलोक या ब्रह्मलोक कहते हैं। वैसे तो मूलाधार के नीचे भी पाताल के सात लोक बताए गए हैं। उनमें भी चेतना क्रमशः नीचे की ओर गिरती रहती है। इन लोकों में अधिकांशतः राक्षसों का का निवास बताया गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इनकी चेतना का स्तर इतना अधिक गिर गया होता है कि ये देवताओं, साधुओं व उच्च चेतना वाले अन्य जीवों से द्रोह करते रहते हैं। धरती को मूलाधार चक्र के समकक्ष माना गया है। ऊपर के आसमान के लोक उच्च लोक हैं, जबकि धरती के नीचे पाताल लोक हैं।

अध्याय-9

कुण्डलिनी ही माता पार्वती है, जीवात्मा ही भगवान शिव है, और कुण्डलिनी जागरण ही शिवविवाह है

दोस्तो, पिछले अध्याय में इस सर्वविदित सिद्धांत की पुष्टि की गई थी कि दरअसल कुंडलिनी विकास को ही जीवविकास की संज्ञा दी गई है। कुंडलिनी मूलाधार में जन्म लेती है, विभिन्न स्थानों पर बढ़ती है, और अंत में सहस्रार में जागृत हो जाती है। इसे ही शिवविवाह कहते हैं। जैसे उच्च कोटि के गृह में विवाह के बाद प्रेमी युगल विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करता है, वैसे ही आत्मा-कुंडलिनी का जोड़ा सहस्रार में विवाहित होकर विभिन्न चक्रों पर भ्रमण करता रहता है। इसे ही शास्त्रों में ऋषियों का विभिन्न लोकों में भ्रमण बताया गया है। दरअसल वे लोक विभिन्न चक्रों के रूप में ही हैं। आज हम इस पर चर्चा करेंगे।

कुंडलिनी ही पार्वती है

अहंकार ही राजा दक्ष है। उसकी बेटी सती ही कुंडलिनी है। अहंकार से ही आदमी दुनियादारी में कामयाब होता है। उसी से एक स्थिर चित्र का निर्माण होता है, जो कुंडलिनी है। अहंकार रूपी दक्ष नहीं चाहता कि उसकी पुत्री कुंडलिनी भूतिया शिव के पीछे भागकर उसकी दुनियादारी को नुकसान पहुंचाए। अंत में वह हार जाता है और सती शिव को प्राप्त करने के लिए कुंडलिनी योग रूपी तप करती है। वह उसकी इच्छा के विरुद्ध जाकर शिव से विवाह कर लेती है मतलब कुंडलिनी जाग जाती है। अहंकार काफी कम हो जाता है पर मरता नहीं। वह कुंडलिनी को शिव से दूर करके अपने झमेले में फंसा लेता है। जब कुंडलिनी को यह भान होता है तब तक उसकी उमर पूरी हो चुकी होती है। गुस्से में शिव के द्वारा दक्ष का सिर काटकर बकरे का सिर लगाने का अर्थ है कि अहंकार शरीर के साथ भी नहीं मरता, अपितु कुछ क्षीण जरूर हो जाता है। अगले जन्म में कुंडलिनी रूपी सती पार्वती के रूप में पर्वत राज के घर पैदा होती है। वह शिव की प्राप्ति के लिए फिर तप करती है। कुंडलिनी अपना अभियान अगले जन्म में फिर से शुरु कर देती है। मैटाफोरिक कथा में इसका मतलब है कि उस कुंडलिनी को धारण करने वाला योगी अपने अगले जन्म में अपने अंतिम लक्ष्य की पूर्ति के लिए हिमालय में योगसाधना करने चला जाता है। वहाँ इंद्र अपनी गद्दी खो जाने के डर से कामदेव को शिव की तपस्या भंग करने के लिए भेजता है। शिव उसे अपनी दृष्टि

से जला देते हैं। यहाँ शिव, योगी की सुप्त अंतरात्मा हैं। कामदेव दुनिया की रंगरलियों का रूपक है। यदि योगी की कुंडलिनी उसकी आत्मा से मिलन को उत्सुक हो, तो दुनिया की रंगरलियां आत्मा का अहित नहीँ कर सकतीं, बल्कि खुद ही क्षीण हो जाती हैं। पार्वती के माता-पिता प्रारंभ में पार्वती को शिव से विवाह से रोकते हैं। दरअसल मन-बुद्धि ही पार्वती के माता पिता के प्रतीक हैं। कुंडलिनी की उत्पत्ति उन्हीं से होती है। वे कुंडलिनी से दुनियादारी की उपलब्धियों की ही अपेक्षा रखते हैं, उसे ईश्वर की प्राप्ति के लिए तप आदि प्रयास नहीं करने देना चाहते। शिव भी पार्वती को हतोत्साहित करने के लिए उसे घटिया भेष में मिलकर शिव की बुराइयां सुनाते हैं। दरअसल वह अज्ञान से ढकी प्रारंभिक योगी की आत्मा ही है जो भगवान के बारे में भ्रम पैदा करती रहती है। पर पार्वती तप में लगी रहती है। अंत में शिव प्रसन्न होकर उससे विवाह कर लेते हैं, मतलब कुंडलिनी जागरण हो जाता है। फिर पार्वती कैलाश को चली जाती है, मतलब कुंडलिनी सहस्रार में बस जाती है। उसके कार्तिकेय बेटा पैदा होता है। वह दिव्य सेना का अधिपति है। उसके बेटा गणेश भी जन्म लेता है, जो समस्याओं से बचाता है, और विघ्नों को हरता है। वास्तव में ये सभी काम जागृत कुंडलिनी के ही हैं। दिव्य सेना यहाँ शरीर की इन्द्रियों की प्रतीक है। शिवपुराण की मिथक कथा में शिव को भूत की तरह दिखाया गया है, जिसके प्रति पार्वती आकर्षित होती है। उसके माँ बाप उसे रोकते हैं। दरअसल अज्ञान से ढकी आत्मा ही शिव है, जो बाहर से अंधेरे भूत की तरह लगती है। पर असल में अंदर से वह प्रकाशरूप ही होती है। अहंकार और बुद्धि ही पार्वती रूपी कुण्डलिनी के माँ-बाप हैं। ये उसे शिव की ओर जाने से रोकते हैं।कालिदास के कुमारसम्भव के अनुसार पार्वती शिव को गुफा के वीराने से गृहस्थ जीवन की मुख्य धारा में लाना चाहती है। कुण्डलिनी भी इसी तरह से अज्ञाननिद्रा में डूबी आत्मा को जगाना चाहती है। साथ में लिखा है कि कामदेव के भस्म होने से सृष्टि व्यवस्था थम सी गई थी। फिर पार्वती ने शिव से विवाह किया और उनसे कामदेव को पुनर्जीवित करवाया। फिर सृष्टि की प्रक्रिया पुनः प्रारंभ हो गई। जब तक तीव्र कुंडलिनी योगसाधना चली होती है, तब तक योगी दुनियादारी से दूरी सी बना कर रखता है। कुण्डलिनी जागरण के बाद उसका मन पुनः दुनिया में रम जाने का करता है, यद्यपि ज्ञान के साथ। इसे ही कामदेव का पुनर्जन्म कहा गया है।देवीभागवत पुराण के अनुसार, पर्वत राज हिमालय और उसकी पत्नी मैना भगवती आदि पराशक्ति को प्रसन्न करती है। वही पार्वती के रूप में उनकी बेटी बन जाती है। वास्तव में अज्ञान से ढकी आत्मा ही पर्वत राज हिमालय है, और बुद्धि मैना है। जब दोनों अच्छे सांसारिक कर्मों से व मानवता से शक्ति को प्रसन्न करते हैं तो वह कुंडलिनी के रूप में उनके शरीर में स्थायी रूप से बस जाती है।

पार्वती अपने लास्य नृत्य से शिव को शांत करती हैं, जब वे विनाशकारी तांडव नृत्य करते हैं। असल में अज्ञान से भरी हुई जीवात्मा अशांत व भटकी हुई होती है। वह बहुत से गलत काम करती है। कुंडलिनी ही उसे प्रकाश प्रदान करके सन्मार्ग दिखाती है। शाक्त के अनुसार, शिव पार्वती के घर पर निवास करते हैं। यहाँ पार्वती को मुख्य और

शिव को गौण माना गया है। उनके आपसी विवाद से शिव नाराज होकर घर छोड़कर जाने लगते हैं। तब पार्वती दशमहाविद्याओं को उतपन्न करके उनसे शिव के भागने का हरेक द्वार बंद करवाती है, और शिव को जाने से रोकती है। दरअसल सहस्रार के सिवाय विभिन्न चक्र विशेषकर मूलाधार कुंडलिनी का घर है। वहाँ उसका प्रभुत्व रहता है। वहाँ जीवात्मा ज्यादा सहज नहीं रहता। किसी कारणवश कुंडलिनी के शिथिल पड़ने से वह वहाँ से भागने लगता है। फिर कुण्डलिनी पंचमकारों और उनसे उत्पन्न पाँच वीभत्स भावों का आश्रय लेती है। इससे वह बहुत मजबूत होकर जीवात्मा को जाने से रोकती है। क्योंकि जहाँ कुंडलिनी है, वहाँ जीवात्मा है। उसके भागने के लिए कहे गए विभिन्न मार्ग कुंडलिनी चक्र ही हैं। कई स्थानों पर कुंडलिनी चक्रों की संख्या दस भी बताई गई है।एक मिथक के अनुसार, पार्वती नहा रही होती है। उसने अपने बेटे गणेश को दरवाजे पर पहरेदार के बतौर रखा होता है। गणेश शिव को भी अंदर नहीँ जाने देते। शिव नाराज होकर उसका सिर धड़ से अलग कर देते हैं। इससे पार्वती शिव से बहुत नाराज होती है। फिर उसे प्रसन्न करने के लिए शिव गणेश को हाथी का सिर लगाते हैं। दरअसल, कुंडलिनी चाहती है कि शरीर में उसका सबसे अधिक प्रभुत्व रहे। गणेश इन्द्रियों का नायक है। वह दुनिया की फालतू चीजों को कुंडलिनी का प्रभुत्व नष्ट करने से रोकता है। वह बाहर से आए भगवानों को भी ऐसा करने से रोकता है। इससे बाहरी धार्मिक संगठन नाराज होकर उसे सजा देते हैं। पर उन्हें कुण्डलिनी की शक्ति के आगे झुककर उसे छोड़ना पड़ता है। यद्यपि वह दुनिया के द्वारा की गई उपेक्षा से काफी क्षीण हो जाता है। शाक्त पंथ में यह भी आता है कि शक्ति के बिना शिव एक शव है। यह सत्य ही है क्योंकि कुंडलिनी के संयोग के बिना जीवात्मा अचेतन और अंधकार से भरा हुआ होता है। जब सहस्रार में उसका कुंडलिनी से विवाह होता है, तभी वह शिव बनता है। उपरोक्त सभी तथ्यों से जाहिर है कि कुंडलिनी योग ही शिव व पार्वती से जुड़ी मिथक कथाओं के मूल में है।

अध्याय-10

कुंडलिनी जागरण के लिए ही सृष्टिरचना होती है; सनातन पुराणों में शिशु विकास को ही ब्रह्माण्ड विकास के रूप में दिखाया गया है

मित्रो, पुराणों में सृष्टि रचना विशेष ढंग से बताई गई है। कहीं आकाश के जल में अंडे का फूटना, कहीं पर आधाररहित जलराशि में कमल का प्रकट होना और उस पर एक देवता का अकस्मात प्रकट होना आदि। कहीं आता है कि सीधे ही प्रकृति से महत्तत्व, उससे अहंकार, उससे तन्मात्रा, उससे इंद्रियां और उससे सारी स्थूल सृष्टि पैदा हुई। जब मैं छोटा था, तब अपने दादाजी (जो एक प्रसिद्ध सनातन पुरोहित और एक घरेलू पुराण वक्ता थे) से पूछा करता था कि अचानक खुले आसमान में बिना आधारभूत संरचना के ये सारी चीजें कैसे प्रकट हो गईं। वे परंपरावादी और रहस्यवादी दार्शनिक के अंदाज में कहते थे, “ऐसे ही होता है। हो गया तो हो गया।” वे ज्यादा बारीकी में नहीं जाते थे। पर अब कुंडलिनी योग की मदद से मैं इस शास्त्रीय उक्ति को ही सभी रहस्यों का मूल समझ रहा हूँ, “यत्पिण्डे तत्ब्रम्हांडे”। इसका मतलब है कि जो कुछ इस शरीर में है, वही सब कुछ ब्रम्हांड में भी है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। इस उक्ति को पुस्तक”शरीरविज्ञान दर्शन” में वैज्ञानिक रूप से सिद्ध किया गया है। इसलिए प्राचीन दूरदर्शी ऋषियों ने शरीर का वर्णन करके ब्रम्हांड को समझाया है। वे गजब के शरीर वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक थे। दरअसल, एक आदमी कभी भी अपने मन या मस्तिष्क के अलावा कुछ नहीं जान सकता है, क्योंकि वह जो कुछ भी वर्णन करता है, वह उसके मस्तिष्क के अंदर है, बाहर नहीं।

सृष्टि रचना पुराणों में शरीर रचना से समझाई गई है

कई जगह आता है कि शेषशायी विष्णु की नाभि से कमल पैदा हुआ जिस पर ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उसी के मन ने सृष्टि को रचा। माँ को आप विष्णु मान सकते हो। उसका शरीर एक शेषनाग की तरह ही केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के रूप में है, जो मेरुदंड में स्थित है। वह नाग हमेशा ही सेरेब्रोस्पाइनल फ्लुइड रूपक समुद्र में डूबा रहता है। उस नाग में जो कुंडलिनी या माँ के मन की संवेदनाएं चलती हैं, वे ही भगवान विष्णु का स्वरूप है, क्योंकि शक्ति और शक्तिमान भगवान में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं। गर्भावस्था

के दौरान जो नाभि क्षेत्र में माँ का पेट बाहर को उभरा होता है, वही भगवान विष्णु की नाभि से कमल का प्रकट होना है। विकसित गर्भाशय को भी माँ के शरीर की नसें-नाड़ियाँ माँ के नाभि क्षेत्र के आसपास से ही प्रविष्ट होती हैं। खिले हुए कमल की पंखुड़ियों की तरह ही गर्भाशय में प्लेसेंटोमस और कोटीलीडनस उन नसों के रूप में स्थित कमल की डंडी से जुड़े होते हैं। वे संरचनाएं फिर इसी तरह शिशु की नाभि से कमल की डंडी जैसी नेवल कोर्ड से जुड़ी होती हैं। ये संरचनाएं शिशु को पोषण उपलब्ध कराती हैं। यह शिशु ही ब्रह्मा है, जो उस खिले कमल पर विकसित होता है। शिशु का साम्यगुण रूप ही वह मूल प्रकृति है, जिसमें गुणों का क्षोभ नहीं है। पहले मैं समझा करता था कि साम्यावस्था का मतलब है कि सभी गुण (प्रकृति का आधारभूत घटक) एक-दूसरे के बराबर हैं। आज भी बहुत से लोग ऐसा समझते हैं। पर ऐसा नहीं है।अगर ऐसा होता तो मूल रूप में सभी जीव एक जैसे होते, पर वे प्रलय या मृत्यु के बाद भी अपनी अलग पहचान बना कर रखते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आत्मा के प्रकाश को ढकने वाले तमोगुण की मात्रा सबमें अलग होती है। इससे अन्य गुणों की मात्रा भी खुद ही अलग होती है। यदि तमोगुण ज्यादा है, तो उसी अनुपात में सतोगुण कम हो जाता है, क्योंकि ये एक-दूसरे के विरोधी हैं। दरअसल उसमें सभी गुण साम्यावस्था में अर्थात समान अवस्था में होते हैं। सभी गुणों का समान अवस्था में होने का या उनमें क्षोभ या लहरों के न होने का मतलब है कि सत्त्वगुण (प्रकाश व ज्ञान का प्रतीक) भी घटने-बढ़ने के बजाय एकसमान रहता है, रजोगुण (गति, बदलाव व ऊर्जा का प्रतीक) भी एकसमान रहता है, और तमोगुण (अंधकार व अज्ञान का प्रतीक) भी। इससे वह किसी विशेष गुण की तरफ लालायित नहीं होता। इसीलिए शिशु सबकुछ अनुभव करते हुए भी उदासीन सा रहता है। वह निर्गुण नहीं होता। क्योंकि गुणों में क्षोभ तभी पैदा हो सकता है, यदि गुण पहले से विद्यमान हों। निर्गुण या गुणातीत तो केवल भगवान ही होता है। इसलिए उसमें कभी गुण-क्षोभ सम्भव नहीं हो सकता है। इसीलिए ईश्वर हमेशा ही परिवर्तनरहित हैं। ईश्वर निर्गुण इसीलिए होता है, क्योंकि उसमें आत्म-अज्ञान से उत्पन्न तमोगुण नहीं होता। सभी गुण तमोगुण के आश्रित होते हैं। इसी वजह से तो पंचमकारी या वामपंथी तांत्रिक दुनियादारी और अध्यात्म दोनों में अव्वल लगते हैं। फिर शिशु के थोड़ा बड़ा होने पर चित्त या मस्तिष्क में वृत्तियों या संवेदनाओं के बढ़ने से गुणों में, विशेषकर सतोगुण में क्षोभ पैदा होता है, और वह प्रकाश की ओर आकर्षित होने लगता है। इससे सतोगुण रूप महत्तत्व अर्थात बुद्धि उत्पन्न होती है। उसे लगने लगता है कि उसकी सत्ता के लिए उसका रोना और दूध पीना कितना जरूरी है। उससे शिशु को अपने विशेष और सबसे अलग होने का अहसास होता है, जिसे अहंकार कहते हैं। इसप्रकार अहंकार की उत्पत्ति हो जाती है। उससे तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। तन्मात्रा पंचमहाभूतों का सूक्ष्म रूप या अनुभव मात्र होती हैं, जिन्हें हम मस्तिष्क में अनुभव करते हैं। जैसे पृथ्वी की तन्मात्रा गंध, जल की रस, वायु की स्पर्श, अग्नि की रूप और आकाश की शब्द होती है। वह दूध के रस के स्वाद को पहचानने लगता है, खिलौने की गंध को पहचानता है, अपने किए मूत्र की गर्मी को स्पर्ष करता है, सुंदर-असुंदर

रूप में अंतर समझने लगता है, घुंघरू या खिलौने की आवाज की ओर आकर्षित होता है। फिर शिशु बाहर की तरफ नजर दौड़ाता है कि ये अनुभूतियाँ कहाँ से आईं। उससे इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है, क्योंकि वह चक्षु, कान, त्वचा, जीभ, नाक आदि इन्द्रियों की सहायता से ही बाहर को महसूस करता है। इसीके साथ मन रूप इन्द्रिय भी विकसित होती है, क्योंकि वह इसी से ऐसा सब सोचता है। इन्द्रियों से उपरोक्त पंचमहाभूतों की उत्पत्ति होती है, क्योंकि वह इन्द्रियों से ही उनको खोजता है और उन्हें अनुभव करता है। उसे पता चलता है कि दूध, खिलौना, घुंघरू आदि भौतिक पदार्थ भी दुनिया में हैं, जिन्हें वह इन्द्रियों से महसूस करता है। फिर आगे-2 जैसा-2 बच्चा सीखता रहता है, वैसी-2 सृष्टिरचना की उत्पत्ति आगे बढ़ती रहती है। इस तरह से एक आदमी के अंदर ही पूरी सृष्टि का विस्तार हो जाता है।

कुण्डलिनी जागरण ही सृष्टि विकास की सीमा है

सृष्टि रचना का विस्तार आदमी कुंडलिनी जागरण के लिए ही करता है। यह तथ्य इस बात से सिद्ध होता है कि कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी सृष्टि विस्तार से उपरत सा हो जाता है। उसका झुकाव प्रवृत्ति (दुनियादारी) से हटकर निवृत्ति (रिटायरमेंट) की तरफ बढ़ने लगता है। उसकी प्रवृत्ति भी निवृत्ति ही बन जाती है, क्योंकि फिर उसमें आसक्ति से उत्पन्न क्रेविंग या छटपटाहट नहीँ रहती। पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह स्थिति मन की होती है, बाहर से वह पूरी तरह से दुनियादारी के कामों में उलझा हो सकता है। कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी को लगता है कि उसने पाने योग्य सब कुछ पा लिया है, और करने योग्य सबकुछ कर लिया है।

शिव पुराण के अनुसार सृष्टि रचना शिव के वीर्य से हुई

शिवपुराण में आता है कि प्रकृति रूपी योनि में शिव के वीर्यस्थापन से एक अंडे की उत्पत्ति हुई। वह अंडा 1000 सालों तक जल में पड़ा रहा। फिर वह बीच में से फटा। उसका ऊपर का भाग सृष्टि का कपोल बना। उससे ऊपर के श्रेष्ठ लोक बने। नीचे वाले भाग से निम्न लोक बने।
दरअसल शिव यहाँ पिता है, और प्रकृति या पार्वती माता है। दोनों के वीर्य और रज के मिलन से गर्भाशय में अंडा बना। वह गर्भाशय के पोषक जल में लंबे समय तक पड़ा रहा और विकसित होता रहा। फिर वह फटा, अर्थात मनुष्याकृति में उससे अंगों का विभाजन होने लगा। उसमें ऊपर वाला भाग सिर या कपोल की तरह स्पष्ट नजर आया। उसमें सहस्रार चक्र, आज्ञा चक्र और विशुद्धि चक्र के रूप में ऊपर वाले लोक बने। नीचे के भाग में अन्य चक्रों के रूप में नीचे वाले लोक बने।

अध्याय-11
कुंडलिनी विज्ञान ही अधिकांश धार्मिक मान्यताओं की रीढ़ है

मित्रो, कुंडलिनी विज्ञान सभी धर्मों की रीढ़ है। सभी धार्मिक मान्यताएं इस पर आधारित है। आज मैं सनातन धर्म की कुछ परंपरागत मान्यताओं का उदाहरण देकर इस सिद्धान्त को स्पष्ट करूंगा। साथ में, कुंडलिनी योग के कुछ व्यावहारिक बिंदुओं पर भी प्रकाश डालने की कोशिश करूंगा। हालांकि ये मान्यताएं तुच्छ लगती हैं, पर ये कुंडलिनी योग का बहुत बड़ा व व्यावहारिक संदेश देती हैं।

दोनों पैरों की ठोकर से कुंडलिनी को केंद्रीकृत करना

इस मान्यता के अनुसार यदि किसी आदमी के पैर की ऐड़ी को पीछे से किसी अन्य आदमी के पैर से ठोकर लग जाए तो दूसरे पैर को भी उसी तरह ठोकर मारनी पड़ती है। उससे दोनों लोगों का शुभ होता है। दरअसल एक तरफ के पैर की ठोकर से कुंडलिनी शरीर के उस तरफ अधिक क्रियाशील हो जाती है, क्योंकि कुंडलिनी संवेदना का पीछा करती है। जब शरीर के दूसरी तरफ के पैर में भी वैसी ही संवेदना पैदा होती है, तब कुंडलिनी दूसरी तरफ जाने लगती है। इससे वह शरीर के केंद्र अर्थात सुषुम्ना नाड़ी में आ जाती है। इससे आदमी संतुलित हो जाता है, जिससे उसका हर प्रकार से शुभ होता है। दूसरे आदमी को भी इस प्रभाव का लाभ मिलता है, क्योंकि जैसा कर्म, वैसा फल। मैंने यह खुद होते देखा है।

एक या ऑड छींक अशुभ, पर दो या ईवन छींकें शुभ मानी जाती हैं

इसके पीछे भी यही कुंडलिनी सिद्धांत काम करता है। एक छींक की संवेदना से दिमाग का एक ही तरफ का हिस्सा क्रियाशील होता है। कल्पना करो कि बायाँ हिस्सा क्रियाशील हुआ। इसका मतलब है कि उस समय आदमी की सोच सीमित, लीनियर या लॉजिकल थी। क्योंकि दिमाग के दोनों हिस्से आपस में लगातार कंम्यूनिकेट करते रहते हैं, इसलिए यह पक्का है कि वह दाएँ हिस्से को सतर्क कर देगा। जब दूसरी छींक आती है, तो उससे दिमाग का दायाँ हिस्सा क्रियाशील हो जाता है। उससे आदमी की सोच असीमित या इलॉजिकल हो जाती है। इससे कुंडलिनी या अवेयरनेस दिमाग के दोनों हिस्सों में घूमकर दिमाग के बीच में केंद्रित हो जाती है। इसी केंद्रीय रेखा पर

सहस्रार और आज्ञा चक्र विद्यमान हैं। इससे पूर्णता, संतुलन और आनन्द का अनुभव होता है।

अध्याय-12
कुंडलिनी ही आध्यात्मिक मुक्ति के लिए पर्याप्त प्रतीत होती है

गीता के पांचवें अध्याय के 18वें व 19वें श्लोक में आध्यात्मिक मुक्ति का रहस्य छिपा हुआ है

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥५-१८॥
ऐसे ज्ञानी जन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में, गाय में, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल को समान देखते हैं॥18॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥५-१९॥
जिनका मन सम भाव में स्थित है, उनके द्वारा यहाँ संसार में ही लय(मुक्ति) को प्राप्त कर लिया गया है; क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है, इसलिए वे ब्रह्म में ही स्थित हैं॥19॥

उपरोक्त दोनों श्लोकों से स्पष्ट होता है कि आध्यात्मिक मुक्ति के लिए न तो कुंडलिनी जागरण की आवश्यकता है और न ही आत्मज्ञान की। मुक्ति तो केवल समदर्शिता या अद्वैत से ही मिलती है। तो फिर लोग अद्वैत को छोड़कर आध्यात्मिक जागृति की तरफ ही क्यों भागते हैं। यह इसलिए क्योंकि जागृति के बाद अद्वैतभाव को बना कर रखना थोड़ा आसान हो जाता है। पर ऐसा थोड़े समय, लगभग 3-4 सालों तक ही होता है। उसके बाद आदमी अपने आध्यात्मिक जागरण को काफी भूलने लग जाता है। यदि विभिन्न आध्यात्मिक तरीकों से उच्च कोटि के अद्वैत को निरंतर बना कर रखा जाए, तो वह जागरण के तुल्य ही है। विभिन्न कुंडलिनी साधनाओं से यदि कुंडलिनी को क्रियाशील रखा जाए तो अद्वैत भाव निरंतर बना रहता है, क्योंकि जहाँ कुंडलिनी होती है, वहाँ अद्वैत रहता ही है। **कुंडलिनी जागरण के समय पूर्ण अद्वैत भाव व आनन्द की अनुभूति भी यही सिद्ध करती है कि जहाँ कुंडलिनी है, वहाँ अद्वैत या समदर्शिता और आनन्द भी है।** इससे यह भी सिद्ध होता है कि बेशक गीता में कुंडलिनी का नाम न लिया गया हो, पर गीता एक कुंडलिनीपरक शास्त्र ही है।

अध्याय-13
कुंडलिनी ही रति है और कुंडलिनी के द्वारा कामवासना को शांत किया जाना ही रति-कामदेव का विवाह है

दोस्तों, मुझे प्रतिदिन रहस्यात्मक साहित्य पढ़ने की आदत है। इससे मेरा दायाँ मस्तिष्क क्रियाशील रहता है, क्योंकि रहस्यात्मक कथाओं में लॉजिक लगाना कठिन होता है। हमारा दायाँ मस्तिष्क भी एक सिरफिरे आदमी की तरह मस्त मलंग स्वभाव वाला होता है। सनातन पुराणों के कथा-कथानक भी एक पहेली की तरह होते हैं। यदि उन्हें बूझ गए, तो उससे बायाँ मस्तिष्क क्रियाशील हो जाता है, और यदि नहीँ तो दायाँ मस्तिष्क। मतलब कि वे हर परिस्थिति में फायदा ही करते हैं। ऐसे ही एक कथानक के रहस्य को मैं इस हफ्ते पहचान सका हूँ। मैं प्रतिदिन शिवपुराण का केवल एक पृष्ठ पढ़ता हूँ, मूल संस्कृत में और हिंदी में। मूल संस्कृत का मजा ही कुछ और है। इस हफ्ते मुझे एक महत्त्वपूर्ण तांत्रिक रहस्य हाथ लगा है। इसे मैं यहाँ साझा कर रहा हूँ।

ब्रह्मा द्वारा कामदेव को श्राप देना व रति को उत्पन्न करके उसका विवाह कामदेव से करना

जब ब्रह्मा ने कामदेव की उत्पत्ति की, तब कामदेव को अपने ऊपर गर्व हो गया। वह अपनी शक्ति का परीक्षण ब्रह्मा पर ही करने लगा। इससे ब्रह्मा कामविह्वल होकर अपनी ही पुत्री के श्रृंगार का गुणगान करते हुए उस पर आसक्त हो गए। दरअसल ब्रह्मा द्वारा रचित यह सुंदर सृष्टि ही उसकी वह पुत्री है। कामदेव यहाँ भोगेच्छा का प्रतीक भी है। फिर शिव ने उन्हें रोका। जब उन्हें कामदेव की हरकत का बोध हुआ तो उसे यह कह कर श्राप दे दिया कि यदि उसे अपनी शक्ति का परीक्षण ही करना था तो उनकी पुत्री के सामने ही क्यों किया। वह श्राप था कामदेव का शिवजी के द्वारा भस्म किए जाने का। भगवान शिव तंत्रयोग के सर्वोच्च शिरोमणि हैं, उनके आगे काम भस्मीभूत ही है। फिर ब्रह्मा ने अपने शरीर के पसीने से अपनी रति नाम की एक अन्य पुत्री को उत्पन्न किया। वह सृष्टि में सबसे सुंदर थी। उसका विवाह ब्रह्मा ने कामदेव के साथ कर दिया। कामदेव तो उसके सौंदर्य को देखकर अपनी मोहिनी विद्या को जैसे भूल ही गया।

कामदेव मनुष्य के मन की वासना है और रति कुंडलिनी है

शास्त्रों में भी आता है कि यहाँ तक कि अपनी बेटी और बहन से भी नितांत अकेले में नहीं मिलना चाहिए, क्योंकि यह काम बहुत प्रबल है। तो इसमें आश्चर्य नहीँ कि ब्रह्मा अपनी पुत्री पर आसक्त हो गए थे। उस काम को वश में करने के लिए उन्होंने कठिन योगाभ्यास किया। उनके पसीने की बूंदें इसी अथक कुंडलिनी-योगाभ्यास की प्रतीक हैं। उसी अथक कुंडलिनी योग से जो कुंडलिनी क्रियाशील या जागृत हुई, वही रति नाम से कही जा रही है। कुंडलिनी को रति नाम इसलिए दिया गया है, क्योंकि यह योग में निरंतर रत रहने से ही मिलती है। रत शब्द एक प्रमुख आध्यात्मिक शब्द है, जैसे ध्यान रत, भक्ति रत आदि। इसका अर्थ लीन भी है। कुंडलिनी किसी के प्यार में या ध्यान में लीन होकर ही मिलती है। रति क्रीड़ा नाम भी इसीसे बना है। क्योंकि कामक्रीड़ा से मन और उसका सबसे प्रिय अंश कुंडलिनी, दोनों प्रफुल्लित होते हैं, इसीलिए कुंडलिनी को रति नाम दिया गया है। यह रूपक के रूप में समझाया गया है, क्योंकि पुराने जमाने में रहस्यात्मक विद्याओं को सीधे तौर पर सार्वजनिक नहीँ किया जाता था। इसीलिए ऐसी कई विद्याओं को गुह्य विद्या भी कहते हैं। कामदेव-रति के कथानक से इस बात का भी पता चलता है कि सृष्टि रचयिता ईश्वर कुंडलिनी योगविद्या के बल से ही अपनी सुंदर रचना के मोहक आकर्षण से अछूता बना रहता है।

कुंडलिनी ने रति के रूप में देवताओं व ऋषियों की काम वासना को अपने नियंत्रण में रखा

जब देवताओं व ऋषियों को इस रहस्य का पता चला कि कुंडलिनी से कामवासना को नियंत्रण में रखा जा सकता है, तब उन्होंने नियमित योगाभ्यास करना शुरु कर दिया। इसीलिए उन्होंने रति के रूप में कुंडलिनी को सबसे सुंदर माना है, क्योंकि कामदेव केवल सुंदर भौतिक वस्तुओं की ओर ही जीव को आकृष्ट करवाता है। रति के आगे कामदेव हार गया। इसका मतलब है कि रति या कुंडलिनी सबसे सुंदर है। वह इतनी सुंदर है कि उसके बहकावे में आकर कई लोग अच्छी खासी गृहस्थी व चमक-दमक वाली दुनिया छोड़कर संन्यासी बन जाते हैं। उसने कामदेव का धंधा ही बंद कर दिया। कामदेव का रति से विवाह करने का अर्थ है कि जैसे एक शादीशुदा आदमी एक स्त्री से बंध कर अन्य स्त्रियों पर नजरें नहीँ डालता, उसी तरह वह भी रति नामक कुंडलिनी के द्वारा बाँध दिया गया। इस रहस्य का थोड़ा स्पष्टीकरण भी एक श्लोक के माध्यम से वहीँ पर किया गया है, जिसमें लिखा गया है कि कामदेव अपनी प्रियतमा रति को अपने हृदय में ऐसे छुपा कर रखता था, जैसे एक योगी अपनी ब्रह्मविद्या को अपने हृदय में छिपा कर रखता है। अब वास्तविक ब्रह्मविद्या कुंडलिनी ही तो है, क्योंकि वही ब्रह्म तक ले जाती है। योगी को सभी लोग भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में देखते हैं, कभी ख़ुशी में, कभी गम में, कभी अवसाद में, तो कभी प्रफुल्लित अवस्था में। पर वे लोग उसके मन की उस कुँडलिनी को पहचान ही नहीं पाते, जो उसकी इन सभी अवस्थाओं में एक

जैसी ही बनी रहती है। इसी तरह रति से विवाहित कामदेव के साथ हमेशा रति बनी रहती है। रति से काम के विवाह का यह मतलब भी है कि एकपत्नीव्रत के साथ सामाजिक पत्नी के साथ तांत्रिक योगाभ्यास करना। तन्त्रयोग साहित्य के अनुसार भी कई वर्षों तक केवल कर्मयोग व साधारण कुंडलिनी योग का अभ्यास करना पड़ता है। उस दौरान रति नामक कुंडलिनी का जन्म होता है, वह बढ़ती है, और यौनावस्था में पहुंच जाती है, मतलब बहुत मजबूत हो जाती है। फिर वह काम के साथ विवाह के योग्य हो जाती है। कुंडलिनी के काफी परिपक्व हो जाने पर ही साधारण कुंडलिनी योग को यौनयोग के साथ मिश्रित रूप में करने का विधान है। यही रति और काम का विवाह है। यदि जल्दबाजी में समयपूर्व ही काम के साथ रति का बालविवाह कर दिया जाए, तो लाभ की अपेक्षा हानि भी हो सकती है। ऐसा तंत्रशास्त्र में साफ तौर पर चेताया गया है। यदि काम-रति के दाम्पत्य युगल से युक्त व्यक्ति काम के आवेश में आ जाए, तो लोग उसे साधारण कामासक्त मान लेते हैं। वे काम के साथ खड़ी उस रति को नहीं देख पाते, जो हमेशा कल्याणकारी होती है। बहुत से तंत्रयोगी इसी कारणवश प्रताड़ित हो जाते हैं। वे भोलेपन में आकर काम-रति का प्रदर्शन करने लगते हैं, पर लोग केवल काम को ही देख पाते हैं, उसके साथ खड़ी रति नामक कुंडलिनी को नहीँ।

दरअसल काम के दायरे में सभी भोग लालसाएँ आ जाती हैं। इसलिए रति नामक कुंडलिनी सबसे विवाह करके उनसे जुड़ जाती है। काम के अर्थ में केवल यौन लालसा को इसलिए लिया जाता है, क्योंकि यह सभी भोग लालसाओं में सबसे प्रभावशाली और मुख्य है।

तंत्रयोगी रति को पैदा करने के लिए कामदेव की ही सहायता लेते हैं

इसे कहते हैं, दुश्मन को दुश्मन के ही तीर से मारना। कामदेव का तीर जगत्प्रसिद्ध है। तंत्रयोगी पंचमकारों की सहायता से अपनी कुंडलिनी को अतिरिक्त मजबूती प्रदान करते हैं। वे दरअसल कामशक्ति को कुंडलिनी शक्ति में रूपांतरित कर देते हैं।

काम-रति विवाह की वैज्ञानिक व्याख्या

काम के आवेश में मस्तिष्क की ओर रक्त संचार बढ़ जाता है। इसीलिए मन प्रफुल्लित हो जाता है। यदि कोई आदमी कुंडलिनी योगी है, तो जाहिर है कि उसके मस्तिष्क का अधिकांश हिस्सा कुंडलिनी ने अधिगृहीत किया हुआ है। ऐसे में यदि मस्तिष्क में रक्त संचार बढ़ेगा, तो इससे सबसे ज्यादा लाभ कुंडलिनी को ही मिलेगा। क्योंकि कुंडलिनी एक प्रकार से हाई डेफिनिशन रिसोल्यूशन का एक मानसिक चित्र ही है, इसलिए वह

बहुत ज्यादा प्राण ऊर्जा का उपभोग कर लेता है। इससे काम का वेग अनायास और जल्दी ही आनन्द के साथ शांत हो जाता है।

अध्याय-14
कुंडलिनी साधना के लिए सन्ध्या या संगम का महत्त्व

रति दक्ष की पुत्री और ब्रह्मा की पौत्री है

मित्रों, पिछले अध्याय में मैंने रति को ब्रह्मा की पुत्री कहा था। वास्तव में वह दक्ष की पुत्री है। बात एक ही है, क्योंकि दक्ष ब्रह्मा का मानस पुत्र है। दक्ष का मतलब होता है निपुण। जब आदमी अपने मन में दुनियादारी में निपुणता अर्थात कर्मयोग का संकल्प लेकर उसे अपनाता है, तो उसके मन में एक कुंडलिनी पैदा हो जाती है। यही दक्ष के पसीने से अर्थात कर्मयोग से रति अर्थात कुंडलिनी का जन्म है। यही मैंने पिछले अध्याय में भी लिखा है कि कुंडलिनी को पहले कर्मयोग से पैदा करके विकसित करना पड़ता है, तब जाकर ही इसका समर्पित तंत्रयोग के साथ सफलतापूर्वक गठजोड़ बनाया जा सकता है।

धर्म विवेक बुद्धि का प्रतीक है

कथा के अनुसार धर्म ने ब्रह्मा को संध्या के प्रति कामवासना से रोकना चाहा, पर वे नहीं रुके। तब धर्म ने शिव से ब्रह्मा को रोकने के लिए गुहार लगाई। धर्म या विवेक या बुद्धि भी ब्रह्मा का मानस पुत्र ही है। है तो यह भी विचार रूप ही, बेशक बुद्धि को मन से बड़ा कहा जाता हो। यह वास्तव में अच्छे और बुरे का ज्ञान है। पर कामवासनाओं से पीड़ित आदमी अक्सर इसकी बात नहीं सुनता। जब धर्म यह देखता है कि उससे बात नहीं बन रही, तब वह कुंडलिनी रूप शिव को याद करता है। वह उसी समय प्रकट होकर आदमी को गलत काम करने से रोकता है। तभी तो कहते हैं कि ईश्वर या कुंडलिनी बुद्धि से भी परे है। जहाँ बुद्धि या दिमाग भी हार जाता है, वहाँ कुंडलिनी को याद करके लाभ मिलता है। यदि प्रतिदिन के योगाभ्यास से हमेशा ही कुंडलिनी को याद रखा जाए, तब तो कहने ही क्या।

संध्या काल अद्वैत का प्रतीक है

संध्या स्त्री संध्या काल (डस्क और डान) का ही रूपक है, इसकी ओर इशारा वहीँ एक श्लोक से किया गया है, जिसमें लिखा गया है कि कामदेव रति के साथ ऐसे सुशोभित

हो रहा था, जैसे संध्या काल में बादल के साथ चमकती बिजली। संध्या शब्द संस्कृत के संधि शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है, जोड़। संध्या में सभी विपरीत भाव जुड़े होते हैं। इस तरह से संध्या ईश्वर या अद्वैत के समतुल्य है। संध्या के समय दिन-रात के संतुलित होने से आदमी भी संतुलित हो जाता है। दरअसल संध्याकाल में दिन और रात के अंश बराबर होते हैं। संध्याकाल में आदमी का बायाँ व दायाँ मस्तिष्क समान चलने लगते हैं। उसके यिन और यांग बराबर हो जाते हैं। उसके दोनों नथुनों से बराबर साँस चलने लगती है। पिछले अध्याय में जो मैंने प्राण और अपान को जोड़ने की योग तकनीक का वर्णन किया था, वह भी संध्या के तुल्य ही है। दरअसल जहाँ भी दो परस्पर विपरीत भाव आपस में जुड़ते हैं, वहाँ संध्या बन जाता है। उस शांत स्थिति में सभी काम विशेषकर आध्यात्मिक काम ज्यादा सफल होते हैं। संध्याकाल पूजापाठ से इतना ज्यादा जुड़ा है कि पूजा करने को संध्या करना ही कहा जाता है। इसी तरह ग्रहण काल भी एक संध्या काल है। उसमें किए काम कई गुना फल देते हैं। इसलिए कहते हैं कि ग्रहण काल में अच्छे व आध्यात्मिक काम ही करने चाहिए। पुराने समय में राजा लोग एकदम से राज्य छोड़कर तप के लिए वन चले जाया करते थे। वनवास का कुछ दिनों का शुरुआती समय भी उनके लिए महान संध्या काल की तरह होता था। उस समय वे कुंडलिनी साधना करके शीघ्रता से अपनी कुंडलिनी को जगा दिया करते थे। इसी तरह योगसाधना से बने प्रकाशमान चित्त में जो तांत्रिकों के द्वारा पंचमकारों से उत्पन्न अंधकार प्रविष्ट कराया जाता है, उससे भी उत्तम कोटि का बनावटी संध्या काल बनता है। उसमें वे बहुत सी सिद्धियां प्राप्त करते हैं, कुंडलिनी जागरण भी जिनमें एक है। इलाहाबाद के संगम में गंगा और यमुना नदियां मिलती हैं। ये दोनों नदियां परस्पर विपरीत गुणों वाली हैं। इससे बहुत अच्छा संध्या स्थान बनता है। इसिलए संगम को बहुत पवित्र माना जाता है। योगी लोग योग साधना के लिए गहन पहाड़ों व वनों में इसीलिए जाते हैं क्योंकि वहाँ उन्हें संगम का आभास होता है। कई धर्मों में कन्या को इसीलिए पूजा जाता है क्योंकि कन्या में स्त्री और पुरुष दोनों का संगम होता है।

सांयकालीन संध्या के समय भ्रमण से आनन्द तो मिलता है, पर कुंडलिनी विकास केवल योगी का ही होता है

आदमी के सौंदर्य में वृद्धि हो जाने के कारण वह संध्या काल में आसानी से काम का शिकार बन सकता है। इसकी मुख्य वजह यह है कि यौन प्रेमी के मन में अपने यौन साथी के रूप की कुंडलिनी बसी होती है। संध्या के समय वह प्रबल रूप में चमकने लगती है। उस समय यदि ऐसा व्यक्ति आचारहीन लोगों की संगति में हो, तो वह यौन कुंडलिनी से प्रेरित कामवासना के प्रभाव में आकर गलत कदम उठा सकता है। उससे उसके मन की कुंडलिनी को भी भारी क्षति पहुंच सकती है। परंतु यदि वह सदाचारी मित्रों व लोगों की संगति में हो, तो उनके प्रभाव में रहते हुए वह गलत कदम उठा ही

नहीं पाता। वह कुंडलिनी को वश में कर लेता है, कुंडलिनी के वश में नहीं होता। इससे उसकी कुंडलिनी उत्तरोत्तर वृद्धि करती हुई उसे कुंडलिनी जागरण या सीधे ही आत्मज्ञान तक ले जाती है। इसीलिए संध्या के समय में आध्यात्मिक माहौल में रहने के लिए कहा जाता है। वैसे भी लोग संध्या के समय मॉल पर टहलने निकलते हैं। इधर-उधर के फालतू विचार उमड़ने से आनन्द तो मिलता है, पर उससे सांसारिक द्वैत रूप भ्रम में ही वृद्धि होती है। योगी लोग ऐसे समय में आसानी से पहचाने जा सकते हैं। उनके चेहरे पर कुंडलिनी के प्रभाव से विशेष चमक और शान्ति झलकती है। संध्या के समय मस्तिष्क के दोनों गोलार्धों के बराबर व दक्षता से चलने से मानसिक शक्ति चरम पर होती है।

संध्या कालीन काम से यदि आम आदमी भ्रम में पड़ता है, तो तंत्रयोगी कुंडलिनी को मजबूत करता है

वास्तव में ब्रह्मा एक आम आदमी ही है। हरेक चीज की उत्पत्ति आदमी के मन में ही होती है। बाहर कुछ नहीं है। ये पर्वत,महासागर, चाँद, सितारे, सब मन की ही उपज हैं। इसी तरह संध्या का समय भी मन में ही बना। संध्या के समय कामभावना जागृत होने का मतलब है, संध्या के ऊपर आसक्त होना। संध्या ने बाद में लज्जा महसूस करते हुए तप करते हुए देहत्याग का विचार किया। इसका मतलब है कि वह अपने असली पवित्र काल के रूप को खोने जा रही थी। फिर ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं ने उसकी शादी आध्यात्मिक ऋषि वसिष्ठ से करवा दी। मतलब कि संध्या काल फिर से आध्यात्मिक काम के लिए निर्धारित हो गया। तांत्रिक क्रियाएं इसमें अपवाद हैं। बेशक वे बाहर से भौतिक व सकाम लगें, पर अंदर से वे आध्यात्मिक ही होती हैं। इसीलिए तांत्रिक क्रियाएं भी ज्यादातर संध्या काल में ही की जाती हैं। कामदेव को ब्रह्मा ने भस्म होकर नष्ट हो जाने का श्राप दिया, क्योंकि उसने संध्या काल में ऋषियों और देवताओं को परेशान किया था। तो यह आम आदमी के लिए डर वाली बात है, क्योंकि वे काम के सहारे ही तो जीते हैं। वैसे भी, पूरे दिनभर के कामकाज से आदमी सन्ध्या के समय थका हुआ सा रहता है। इसी तरह सुबह उठकर नींद से पैदा हुई सुस्ती जैसी रहती है। यही संध्या को मिला शिव का वरदान है कि उसे काम परेशान नहीं करेगा। मतलब कि उस समय उनकी भौतिक कामनाएं व यौन कामनाएं नष्ट जैसी हो जाती हैं। एकप्रकार से काम थका हुआ सा होता है, पूरा नष्ट नहीं हुआ होता है। काम का पूर्ण नाश तो तंत्रयोगी ही कर पाते हैं। इसलिए तंत्रयोगियों के लिए यह काल वरदान है, क्योंकि वे अन्ततः काम को नष्ट करके ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। वे अपनी तन्त्र विद्या से पहले काम को पैदा करते हैं, फिर उससे मजबूत बनी कुंडलिनी से उसी काम को नष्ट कर देते हैं। वे काम की शक्ति अपनी कुंडलिनी को देते हैं। आम आदमी काम से उत्पन्न शक्ति को कुंडलिनी में रूपांतरित करने की तकनीक नहीं जानते, इसलिए वह शक्ति

रंग-बिरंगे विचारों से भ्रम पैदा करती है। दूसरा अर्थ इससे यह निकलता है कि शिव वरदान के रूप में अपने आप को ही दे देते हैं। शिव मस्त मलंग और शून्य रूप हैं, उनके पास अपने सिवाय देने को है ही क्या। पर जब शिव मिल जाते हैं, तो सबकुछ खुद ही मिल जाता है। शिव कुंडलिनी रूप रति के रूप में हैं। इसलिए कुंडलिनी योग से काम खुद ही नष्ट हो जाता है।

कुंडलिनी काम से शक्ति लेकर अंत में काम को ही नष्ट कर देती है, फिर काम को पुनर्जीवित भी कर देती है

अब काम को ही देख लो। वह रति के प्रति इतना मोहित हो गया कि उसे अपने प्रति ब्रह्मा द्वारा दिए गए श्राप की सुध भी नहीं रही, और वह देवताओं के उकसावे में आकर रति से विवाह करने को राजी हो गया। यह उसके भस्म होने की शुरुआत थी, क्योंकि अंततः रति रूपी कुंडलिनी ने काम को नष्ट तो करना ही है। अब कुंडलिनी को ही शिव नाम दिया गया हो, तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि शिव और शक्ति तत्त्वतः एक ही हैं। शिव ने काम को भस्म किया, मतलब कुंडलिनी ने काम को भस्म किया। अब यदि कोई कहे कि यह कैसे हो सकता है कि रति भी कुंडलिनी है और शिव भी कुंडलिनी है। तो इसका स्पष्टीकरण यह है कि रति दरअसल मन का भाव है, पर शिव वास्तविकता है। वैसे तो दोनों ही मन के भाव हो सकते हैं, पर मैं इन दोनों की आपसी सापेक्षता के हिसाब से बात कर रहा हूँ। मतलब कि सापेक्ष रूप से शिव रति की अपेक्षा ज्यादा वास्तविक है। इसी तरह रति शिव की अपेक्षा ज्यादा भावप्रधान है। यदि शिव मंदिर में रखी मूर्ति के रूप में हैं, तो रति मन में लग रहे उनके ध्यान के रूप में। रति मतलब लगाव। अब शिवपुराण में शिव से ही लगाव होगा, किसी अन्य देवता से नहीं। शिवपुराण में हर जगह शिव का ही ध्यान करने की सलाह दी गई है। इसी तरह जब शिव-शक्ति का विवाह मतलब कुंडलिनी जागरण होता है, तब काम को पुनः जीवित हो जाने का वरदान मिला है। इसका मतलब है कि जागृति के बाद फिर से आदमी दुनिया में रम जाता है, हालाँकि ज्ञान व अनासक्ति के साथ। जागरण के बाद आदमी को कुछ पाने की चिंता तो होती नहीं, इसलिए वह खुलकर जीना शुरु करता है।

कामदेव के पुष्पबाण आदमी को प्यार-प्यार में ही घायल कर देते हैं

इस कथानक में यह वृत्तान्त रोचक है कि ब्रह्मदेव के मन से उत्पन्न कामदेव के पास पाँच फूलों के बाण या अस्त्र थे। ब्रह्मा या ब्रह्मदेव यहाँ सभी लोगों या जीवों के सामूहिक रूप का पर्याय है, और कामदेव सभी जीवों की सामूहिक कामवासनाओं का पर्याय है। तभी काम और ब्रह्मा के साथ देव शब्द लगा है। यदि एक आदमी की कामवासना की

बात होती, तो सिर्फ काम ही कहते। इस तरह से तत्त्वतः तो काम और कामदेव एक ही हैं। कामदेव के ये पाँच बाण हैं, हर्षन मतलब खुश करना, रोचन मतलब पसंद करवाना, मोहन मतलब मोहित करवाना या एक के ही चक्कर में पागल बनवाना, शोषण मतलब शक्ति को सोखना, और मारण मतलब मरवाना। अब यह हैरानी की बात है कि अंतिम तीनों जानलेवा हथियार भी फूलों के ही हैं। तभी तो इन हथियारों से घायल आदमी प्यार-प्यार में ही बहुत कुछ गवां देता है, और उसे इसका आभास तक नहीँ होता। इससे प्राचीन ऋषियों की व्यावहारिकता, दूरदर्शिता और सूक्ष्मदर्शिता का पता चलता है। इतने अच्छे रूपक बनाने वाले कोई वनवासी नहीँ हो सकते, जैसी कि आम भ्रांत धारणा है। वे दुनियादारी में सबसे ज्यादा कढ़े हुए और गढ़े हुए होते थे।

काम के साथ भावनाओं का अंबार भी चलता है, जिससे आदमी आनंदमयी मस्ती में डूबा रहता है

फिर लिखा है कि जैसे ही ब्रह्मा ने उत्तेजित होकर कामभाव से संध्या की तरफ देखा, वैसे ही उनके शरीर से उन्चास भाव पैदा हो गए। आम आदमी के साथ भी तो ऐसा ही होता है। कामोत्तेजित होने के बाद वह रंग-बिरंगे भाव दिखाने लगता है। वह यारों का यार, बापों का बाप, पुत्रों का पुत्र और पता नहीं क्या-क्या बनने लगता है। वह चारों ओर छा जाता है। ऐसे कौन से भाव हैं, जो उसके अंदर पैदा नहीं होते। मातृ भाव, भगिनी भाव, गुरु भाव, बुजुर्ग भाव, बाल भाव, नवयुवक भाव, पशु-पक्षी भाव, वृक्ष-लता भाव, पर्वत भाव आदि-आदि। ये भाव संध्या के समय ज्यादा उमड़ते हैं, क्योंकि उस समय मन में शांति छाई होती है। भावों में तो बुराई नहीं है, पर आसक्ति में बुराई है। जिस घर में संध्या योग होता है, वहाँ ये कामजनित भाव कुंडलिनी के साथ मिश्रित होकर आसक्ति और दुर्भावना को नष्ट कर देते हैं। केवल शुद्ध प्रेम बचा रहता है। कुंडलिनी और प्रेमभाव एकदूसरे को उत्तरोत्तर बढ़ाते रहते हैं। इसलिए प्रेम करने में बुराई नहीँ है, यदि उसे शुद्ध और आध्यात्मिक बनाया रखा जाए। बल्कि वह प्रेम तो सबसे बड़ा योग है। प्रेम में दीवाना होकर आदमी भावविभोर होकर आनन्दित हो जाता है। इसे आजकल हाईपर या हॉट या रंगीन होना कहते हैं। यही तो काम का आकर्षण है। इसको बहुत सुंदर शैली में व्यवहारिकता, आधुनिकता व वैज्ञानिकता के साथ समझाया गया है, पुस्तक शरीरविज्ञान दर्शन में। बहुत सुंदर रूपक कथाएँ हैं पुराणों में। मुझे लगता है कि कथा सुनाते समय मूल कथा के साथ उसमें दिए गए रूपक के रहस्य को भी डिकोड करके सुनाना चाहिए। इससे श्रोताओं को अधिक लाभ मिलेगा।

संध्या के द्वारा शिव से मांगे गए वरदान काम भाव से बचाव के लिए थे, शुद्ध प्रेमभाव से बचाव के लिए नहीं

ये मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि कई लोग काम के डर से संध्या के समय आपस में बातें भी नहीँ करते। सन्ध्या के द्वारा लज्जित होकर तप करने का अर्थ है, लंबे समय तक आध्यात्मिक लोगों द्वारा संध्या के समय आध्यात्मिक साधनाएं करना। इसकी जरूरत इसलिए पड़ी क्योंकि उन लोगों ने काम को अपनाया था, शुद्ध प्रेम को नहीं। शुद्ध प्रेम तो अपने आप में तप ही है। संध्या के द्वारा तीन वरदान मांगे गए, जो शिव के द्वारा पूरे किए गए। पहले वरदान, पैदा होते ही किसी जीव में कामवासना पैदा न होने का अर्थ है कि जिस घर मे संध्या वंदन होता है, उस घर मे पैदा हुए बच्चों में उच्च कोटि के आध्यात्मिक संस्कार होते हैं। उनमें जन्म से ही अपने आप ही कुंडलिनी बनी होती है। वह कुंडलिनी उन्हें कामवासना से बचा कर रखती है। या यूँ कहो कि उनकी कुंडलिनी कामभाव को प्रेमभाव में रूपांतरित करती रहती है। दरअसल संध्या के पैदा होते ही कामदेव के प्रभाव से उसपर ब्रह्मा और उनके पुत्र आसक्त हो गए थे। संध्या का समय बहुत छोटा होता है। इसका अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। यह दो प्रकार के विपरीत समयों के संयोग से बनता है। इसलिए इसके बड़े और जवान होने का प्रश्न ही नहीं होता, क्योंकि यह पैदा होते ही विलीन होने लगता है। दूसरा वरदान कि मेरे कुल में कोई भी कामासक्त न होए, इसका भी यही अर्थ है कि बेशक संध्या वंदन करने वाले लोगों के घरों के सदस्य किसी कारणवश कामभाव का प्रदर्शन करें, पर वे कामासक्त नहीँ होते, मतलब कामदेव के प्रभाव में आकर किसीके ऊपर लट्टू नहीँ हो जाते। तीसरा वरदान कि मेरे कुल की सभी स्त्रियां पतिव्रता होएं, इसका अर्थ है कि जो लोग संध्यावंदन करते हैं, उनकी कुंडलिनी बहुत विकसित और मजबूत होती है। इसी कुंडलिनी के कारण ही वे अपनी पत्नियों को पूर्ण संतुष्ट रख पाते हैं। यह तो वैज्ञानिक व तांत्रिक रूप से सत्य है कि यौन संतुष्टि और यौन क्रीड़ाओं पर पूरा नियंत्रण कुंडलिनी से ही प्राप्त होता है। एक वरदान शिव ने संध्या को यह भी दिया कि जो उसकी ओर काम भाव से देखेगा, वह नपुंसक हो जाएगा और उसकी शक्ति नष्ट हो जाएगी। इसका भी यही तात्पर्य है कि जो सन्ध्या के समय भोगों को आसक्ति से या उन्हें कुंडलिनी के बिना भोगेगा, वह मोहमाया के भ्रम में पड़कर अपनी आत्मा के अंधकार को बढ़ाएगा। कुंडलिनी के प्रति रति ही कामभाव या आसक्ति भाव को नियंत्रण में रखती है। सन्ध्या शब्द यहाँ ऐसे सभी समयों के लिए इंगित किया हुआ प्रतीत होता है, जिस समय आदमी सन्तुलित होता है, उसकी इड़ा और पिंगला नाड़ी बराबर चलती है, मन की कुंडलिनी मजबूत होती है, और मन में गहरी शांति छाई होती है।

प्रेम और काम एकदूसरे को बढ़ाते रहते हैं

हर जगह प्रेम करते रहने से काम भाव में वृद्धि होती है। वह काम भाव जीवनसाथी के साथ मिलकर परिपक्व होकर प्रेम को और अधिक बढ़ाता है। तंत्रयोगी उस कामजनित प्रेम को कुंडलिनी प्रेम में रूपांतरित करते रहते हैं। तंत्रयोगी का केवल एक ही जीवनसाथी या यौनसाथी इसलिए होता है, ताकि कामजनित प्रेम उसकी कुंडलिनी को

आसानी से हासिल होता रहे। अय्याश किस्म के आदमी का कामजनित प्रेम बहुत से यौनसाथियों में विभक्त हो जाता है, जिससे वह कुंडलिनी को नहीँ मिल पाता। इसीलिए कहते हैं कि एकपत्नीव्रत सबसे बड़ा व्रत है।इसके अलावा, यह यौन ऊर्जा है जिसकी कुंडलिनी के लिए जरूरत पड़ती है, न कि शारीरिक आकर्षण। बल्कि अतिरिक्त शारीरिक आकर्षण तो व्यक्ति को ऊर्जा के वास्तविक स्रोत से विचलित कर सकता है।

कुंडलिनी ही आदमी की असली सेवियर या रक्षक है

शिव के द्वारा संध्या के ऊपर कामासक्त ब्रह्मा को रोकने का अर्थ है कि आदमी को उस समय कुंडलिनी बचा लेती है। शिव यहाँ कुंडलिनी का प्रतीक है। वैसे भी कुंडलिनी आदमी को बुरे काम करने से रोकती ही है। यदि अनजाने या बहुत मजबूरी में कभी गलत काम हो भी जाए, तो कुंडलिनी उसका प्रायश्चित या पश्चाताप भी करवाती है। शिवपुराण में सभी के लिए शिव का ध्यान करना जरूरी बताया गया है। तो स्वाभाविक है कि ब्रह्मा भी शिव का ध्यान करते थे। इससे शिव उनकी कुंडलिनी बन गए, और कुंडलिनी रूप में वे ही ब्रह्मा को गलत काम से रोकने के लिए प्रकट हुए।

शिवपुराण एक तन्त्र पुराण ही है

शिवपुराण में सभी बातें और कथाएँ तन्त्र से सम्बंधित ही हैं। यह अलग बात है कि अधिकांश लोग उन्हें समझ नहीं पाते, क्योंकि वे रूपकों के रूप में हैं। ऐसा तन्त्र के दुरुपयोग को रोकने के लिए किया गया था। पुराण वेदों से निकलते हैं। इसका मतलब है कि तन्त्र का प्राचीनतम मूल स्रोत वेद ही हैं। यद्यपि प्रत्यक्ष नियमावली के साथ व्यावहारिक तन्त्र बौद्धों में ही दिखाई देता है। ऐसा नहीं है कि सनातनिओं में तन्त्र की व्यावहारिक प्रथा लुप्त हो गई हो। अभी भी सनातनिओं में यह प्रचलित है, पर इसे बहुत गुप्त रखा जाता है, जिससे आम लोगों को इसका पता ही नहीं चलता। बौद्धों में भी इसे छिपा कर रखा जाता था। पर आज के इस मरते ग्रह को देखकर कोई पुनर्जीवन देने वाली विद्या छिपाना मानवता के साथ धोखा होगा, ये बात उन्होंने समझ ली है।

अध्याय-15

कुंडलिनी एक सर्वोत्तम गुरु व बिंदु के रूप में है, जो सर्वलिंगमयी देह और कुम्भक प्राणायाम के साथ बहुत पुष्ट होती है

दोस्तों, मेरे पिछले अध्याय के कथन के सही होने का एक ओर प्रमाण मिल गया। शिवपुराण के अगले ही अध्याय में है कि अग्नि में भस्म होने के बाद संध्या नामक नारी सूर्यमंडल में प्रविष्ट हो गई। उसके वहाँ दो टुकड़े हो गए। ऊपर वाले टुकड़े से सुबह का संध्याकाल बना, और नीचे वाले भाग से शाम का सांध्यकाल बना। फिर लिखा है कि रात और सूर्योदय के बीच का दिन का समय प्रातः संध्या का होता है, और सूर्यास्त व रात्रि के बीच का समय सांयकालीन संध्या का होता है। मैंने पिछले अध्याय में यह भी लिखा था कि कुंडलिनी कामभाव से बचा कर रखती है। इस अध्याय में मैं यह बताऊँगा कि कुंडलिनी ऐसा कैसे करती है।

कुन्डलिनी सेक्सुअल एनर्जी को अपनी ओर आकर्षित करती है

कुन्डलिनी शरीर की एनर्जी को खींचती है। मैंने सेक्सुअल शब्द इसलिए जोड़ा क्योंकि यही एनर्जी शरीर में सर्वाधिक प्रभावशाली है। यह एक चुम्बक की तरह काम करती है। यदि आप किसी चक्र पर कुन्डलिनी का ध्यान करते हो, तो प्राण ऊर्जा खुद ही नाड़ी लूप में घूमने लग जाएगी, और कुन्डलिनी को मजबूत बनाएगी। कई लोग प्राण ऊर्जा को पहले घुमाते हैं, कई लोग कुन्डलिनी का ध्यान चक्र पर पहले करते हैं। दोनों का निष्कर्ष एक ही निकलता है।

वीर्य का तेज कुन्डलिनी को देने से कुन्डलिनी जीवंत हो जाती है

वीर्य का तेज मूलाधार चक्र में होता है। तेज का मतलब चमक व तीखापन होता है। यह बिल्कुल पारे की तरह होता है। तभी तो पारे का शिवलिंग बहुत शक्तिशाली होता है। एक पिछले अध्याय में मैंने बताया था कि कैसे एक **पारद शिवलिंग** के पास ध्यान करने से मेरी कुन्डलिनी चमक गई थी।

बिंदु व बिंदु चक्र क्या है

बिंदु उसी वीर्य की बूंद को कहते हैं। बिंदु का शाब्दिक अर्थ भी बूंद ही होता है। बिंदु चक्र सहस्रार व आज्ञा चक्र के बीच में होता है, माथे के बीच से थोड़ा ऊपर पीछे तक। इसे बिंदु चक्र इसलिए कहते हैं क्योंकि यह सबसे अधिक वीर्य शक्ति प्राप्त करता है। ब्राह्मण लोग यहाँ चोटी बांधते हैं।

ज्योतिर्लिंग की ज्योति शिव के बिंदु से ही है

सनातनिओं में बारह ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध हैं। ये शरीर के बारह चक्रों को इंगित करते हैं। वास्तव में 12 चक्र होते हैं। आठवां बिंदु चक्र होता है। नवां, दसवां, ग्यारवां व बारवां चक्र थोड़ी-थोड़ी ऊंचाई के अंतराल पर सिर के ऊपर होते हैं। ये ज्योतिर्लिंग चक्रों की तरह देश के भिन्न-भिन्न स्थानों पर बने हैं। **वास्तव में देश भी एक शरीर की तरह काम करता है।** इसका पूरा विस्तार पुस्तक शरीरविज्ञान दर्शन में है। इन स्थानों पर जो ज्योति है, वह बिंदु के तेज का प्रतीक है। वह बिंदु शिव के लिंग से उत्पन्न होता है। तभी इनका नाम ज्योतिर्लिंग है। बिंदु ने शिवलिंग को शिवचक्रों के साथ जोड़ दिया है। एक प्रकार से कह सकते हैं कि लिंग सभी चक्रों पर स्थापित हो गया है। इसे ही सर्वलिंगमय देह कहते हैं। एक **सर्वलिंग स्तोत्र** भी है। इसमें देश में स्थित अनगिनत प्रसिद्ध शिवलिंग स्थानों के नाम हैं। यह पूरे शरीर में बिंदु के तेज के व्याप्त होने के बारे में संकेत देता है।

बिंदु कुन्डलिनी-रूप ही है

बिंदु और मन आपस में जुड़े होते हैं। दोनों का स्वभाव चमकदार और शक्तिरूप है। तभी तो जब बिंदु क्रियाशील होता है, तब मन में सुंदर और चमकदार विचार आते हैं। इसी बिंदु-क्रियाशीलता के लिए ही प्राणी प्रजनन की ओर आकर्षित होते हैं। कुन्डलिनी भी उसी मन का प्रमुख हिस्सा है। इसलिए वह भी बिंदु से शक्ति प्राप्त करती है। वास्तव में **मन का सर्वोच्च शिखर कुंडलिनी जागरण ही है**। इसीलिए संक्षेप में कहा जाता है कि जीव कुंडलिनी जागरण के लिए ही सभी क्रियाकलाप, मुख्य रूप से कामदेव संबंधी क्रियाकलाप करता है। **कुंडलिनी एक मानसिक चित्र है, जो एकप्रकार से पूरे मन का प्रतिनिधि या सैम्पल पीस है।** एक मानसिक चित्र का मतलब यह नहीं कि वह एक स्थिर चित्र ही है। यदि शिव के रूप का मानसिक चित्र है, तो वह पार्वती के साथ भी घूम सकता है, तांडव नृत्य भी कर सकता है, श्मशान में साधना भी कर सकता है, और अन्य जो कुछ भी। इसे प्रतिनिधि इसलिए कहा जा रहा है, क्योंकि इसको वश में करने से पूरा मन वश में हो जाता है, और इसको पूरी तरह हासिल करने से पूरा मन या यूँ कहो कि सबकुछ हासिल हो जाता है। मन में ही सबकुछ है। इसको पूरी

तरह हासिल करने से सब कुछ हासिल हो जाता है। कुंडलिनी जागरण या इसे पूर्ण समाधि कह लो, यही कुंडलिनी या मन का पूरी तरह से हासिल होना है। इतनी सुंदर, व्यावहारिक, वैज्ञानिक और अनुभवात्मक परिभाषा आपको कुन्डलिनी की कहीं नहीं मिलेगी। चाहे आप किसी भी पुस्तक में या अन्य प्लेटफार्म पर ढूँढ लो। मुझे भी नहीं मिली थी। इसलिए मैं अंदाजा लगाकर ही कुन्डलिनी साधना करता रहा। जब कुन्डलिनी जागरण हुआ, तब पता चला। पतंजलि के ध्यान और समाधि के बारे में पता था, उसीको लेकर अभ्यास किया। पर कुन्डलिनी के बारे में कहीं नहीं मिला। इसको रहस्य बना कर रखा हुआ था, और इसके बारे में जितने मुंह, उतनी बातें। तब पता चला कि कुन्डलिनी जागरण और पूर्ण समाधि एक ही चीज है। **पतंजलि ने जो किसी देवता या गुरु के चित्र या किसी भी प्रिय वस्तु के चित्र का मन में ध्यान करने को कहा है, वह कुंडलिनी ही है।** पुराने जमाने में तो इसे रहस्य बना कर रखने की प्रथा थी, ताकि इसका दुरुपयोग न हो। आज तो मुक्त समाज है। इसी से इस समर्पित कुन्डलिनी वैबसाइट को बनाने की प्रेरणा मिली। इससे जाहिर होता है कि किस हद तक **भ्रम** विद्यमान है, जैसा पहले मुझे भी था।

चक्रों पर लिंग की अनुभूति

यह अनुभूति तब होती है जब आदमी ने काफी व भारी परिश्रम किया हो, और उसने पेट से योग वाली साँसें काफी ली हों। केवल पेट से साँसें लेने से ही सबकुछ नहीं हो जाता। उसके साथ यह भी ध्यान करना पड़ता है कि साँस भरते समय अंदर जाती हवा के साथ प्राण नीचे जा रहा है, और पेट के आगे की तरफ फूलने से पिछले नाभि चक्र पर जो गड्ढा बनता है, वह अपान को नीचे से ऊपर खींच रहा है। इससे मणिपुर चक्र पर प्राण और अपान आपस में टकराते हैं, और सिकुड़न के साथ संवेदना पैदा करते हैं। प्राण-अपान की टक्कर के बारे में मैंने पिछले एक अध्याय में बताया है। बाहर जाती हुई साँसों पर ध्यान नहीं देना चाहिए, क्योंकि इससे प्राण-अपान की टक्कर कमजोर पड़ती है। **वह संवेदना और सिकुड़न फिर पीठ से मस्तिष्क तक चढ़ती हुई सभी चक्रों को तरोताजा करती है।** वह फिर आगे से नीचे उतरकर आगे के चक्रों, विशेषकर नीचे वाले चक्रों को तरोताजा करती है। इससे ताजगी के अहसास के साथ एक गहरी साँस अंदर जाती है, और फिर साँसें शांत हो जाती हैं। खाली धौंकनी की तरह साँसें भरेंगे, तो इससे तो थकान ही बढ़ेगी। बेशक फायदा तो होगा, पर कम होगा। वैसे भी, परिस्थिति के अनुसार ही सांसें चलती हैं। **आदमी गलती करके खुद भी अच्छा सीखता रहता है।** कुछ न करने से अच्छा तो गलती करते रहो, पर गलती नुकसानदेह नहीं होनी चाहिये। पर कई बार जोर-जोर की साँसें बन्द ही न होने पर आदमी इमरजेंसी हॉस्पिटल सेक्शन में इस डर से चला जाता है कि कहीं उसके फेफड़े खराब होने से ऑक्सीजन का लेवल डाऊन तो नहीँ हो रहा। मेरे साथ भी एकबार ऐसे ही हुआ था। वास्तव में वह किसी तनाव से व धौंकनी की तरह साँस लेने से होता है।

ऐसा लगता है कि साँसों से संतुष्टि ही नहीं हो रही। कहीं भी कुन्डलिनी प्रकट होने पर, यदि उसके ध्यान के साथ एनर्जी लूप का भी ध्यान करो, तो जैसे ही कुन्डलिनी, लूप में घूमने लगती है, वैसे ही लूप में एनर्जी का संचार बढ़ जाता है। **एनर्जी कुन्डलिनी के साथ चलती है। वास्तव में, ज्यादातर मामलोँ में थकान के लिए ऑक्सीजन की कमी जिम्मेदार नहीं होती, बल्कि प्राण ऊर्जा का एक चक्र पर इकट्ठा होना होता है। इसे ही चक्र का ब्लॉक होना भी कहते हैं।** उस प्राण ऊर्जा को लूप चैनल में चलाने के लिए एक अच्छी सी गहरी सांस भी काफी होती है। एक औऱ नई बात बताऊँ। हम अंगड़ाई प्राण ऊर्जा को रिलोकेट करने और उसे गति देने के लिए ही लेते हैं। इसीलिए अंगड़ाई लेने से थकान दूर होने का अहसास होता है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि **हरेक तथ्य की गहराई में जाना चाहिए**। ऊपर से ही आधी-अधूरी बात समझने से लाभ की बजाय हानि भी हो सकती है। यही इस **कुन्डलिनी समर्पित पुस्तक** का मकसद है। चक्र-लिंग की अनुभूति के लिए एक शर्त यह भी है कि उसका प्रतिदिन का कुन्डलिनी योगाभ्यास अनवरत जारी रहना चाहिए। यह अनुभूति तब ज्यादा बढ़ जाती है, अगर इसके साथ आनन्दमयी रतिक्रीड़ा के साथ बिंदु संरक्षण भी हो। 4-5 दिनों के आराम के बाद ऐसा करने से इस सर्वलिंगमयी अनुभूति की संभावना ज्यादा होती है। यह चक्रों पर मुख्यतः नाभि चक्र, अनाहत चक्र व विशुद्धि चक्र पर तीखी व आनन्दमयी अनुभूति होती है। यह चक्र पर एक आनन्दमयी तेज सिकुड़न की तरह प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि जैसे चक्रों पर बिंदुपात हो रहा हो। वास्तव में चक्र कोई भौतिक संरचना नहीँ हैं। ये शरीर में वे स्थान हैं, जहां शक्ति घनीभूत हो जाती है, और एक आनन्दमयी संवेदना प्रकट करती है। आप चक्रों को शक्ति के जमावड़े अड्डे कह सकते हैं। वैसे भी, सारा खेल संवेदना का ही तो है। साधना से संवेदना को स्थानांतरित किया जा सकता है, और किसी भी चक्र पर संवेदना को पैदा किया जा सकता है। प्राण और अपान आपस में जितनी तेजी व शक्ति से भिड़ेंगे, उनका मिश्रण उतना ही ज्यादा मजबूत होगा। जितना ज्यादा उनका परस्पर मिलन होगा, उतना ज्यादा कुंडलिनी लाभ प्राप्त होगा। प्राण सत्त्वगुण का और अपान तमोगुण का प्रतीक है। ये दोनों गुण भी इसी तरह मिश्रित होना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, नशे से और नॉनवेज से आदमी के अंदर बहुत ज्यादा तमोगुण छा जाता है। ऐसे में उसको बाहर से उतना ही ज्यादा सतोगुण देना पड़ता है। उससे जब तमोगुण और सतोगुण का मिलन होता है, तो वह बहुत ज्यादा आनन्द और आध्यात्मिक उन्नति अनुभव करता है, और सतोगुण प्रदान करने वाले का हमेशा के लिए मुरीद बन जाता है। यह लाभ सतोगुण वाले आदमी को भी मिलता है, क्योंकि उसे तमोगुणी से तमोगुण मिलता है। अर्थात दोनों प्रकार के लोगों से परस्पर एकदूसरे का हित स्वयं ही होता है। **इसीलिए सनातन समाज में वर्णव्यवस्था थी।** वहाँ ब्राह्मण का गुण सतोगुण होता था, क्षत्रिय का रजोगुण, वैश्य का मिलाजुला और शूद्र का तमोगुण होता था। आज तो आदमी लगातार गुण बदलता रहता है। कभी सतोगुण, कभी रजोगुण और कभी तमोगुण आवश्यकतानुसार धारण कर लेता है। इसलिए हर किसी के वास्तविक गुण के बारे में संशय रहता है। इससे गुण मिलाप

अच्छे से नहीं हो पाता, जिससे आध्यात्मिक उन्नति कम होती है। एक बात दिमाग में आई है। मुझे लगता है कि **गुण मिलान जैसा कि सनातन विवाह से पहले किया जाता है,** यह वही बात है। यदि दोनों के गुण एक-दूसरे के साथ मिल जाते हैं, तो एक सुखद वैवाहिक जीवन का आगमन होता है, अन्यथा गुणों के टकराव के कारण वैवाहिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। यह सतोगुण रोमांचित रह के, शालीनता दिखा के, और भी सारे दैवीय गुणों का प्रदर्शन करके प्रदान किया जा सकता है। साथ में उदारता और समर्पण का मानसिक भाव भी होना चाहिए। अहंकार व संकुचित भाव नहीं होना चाहिए। इससे तो वह उल्टा ज्यादा नाराज हो जाएगा। उसे लगेगा कि यह अपना सतोगुण अपने तक ही सीमित रखना चाहता है, मेरे तमोगुण से नहीं मिलाना चाहता। इसके विपरीत, यदि उसके सामने तमोगुण वाले भाव जैसे अवसाद, अरुचि, घृणा आदि दिखाए जाएं, तो उसका तमोगुण और ज्यादा बढ़ जाएगा। इससे वह खुद भी गंभीर अवसाद में जा सकता है। इससे जाहिर होता है कि दुनिया प्यार से व मिलजुलकर ही अच्छी चलती है। सनातन पौराणिक **समुद्रमंथन** इसका अच्छा उदाहरण है।

अध्याय-16

योग के सर्वोच्च महत्त्व को दर्शाती शिवपुराण की शिव-सती व दक्ष-यज्ञ की कथा

शिवपुराण में एक प्रसिद्ध कथा आती है। प्रजापति दक्ष जो ब्रह्मा का पुत्र था, उसने शिवेच्छा और अपने पिता की संस्तुति से प्रेरित होकर अपनी पुत्री सती का विवाह भगवान शिव से कराया था। एकबार किसी तीर्थस्थान पर ऋषियों और राजाओं की बैठक हो रही थी। उस सभा में भगवान शंकर भी बैठे थे। तभी वहाँ ब्रह्मा भी आए। सभी लोग उनके सम्मान में खड़े हो गए और उन्हें नमन किया। परंतु भगवान शिव चुपचाप बैठे रहे। इससे दक्ष उनपर बड़ा गुस्सा हुआ, और उन्हें भला-बुरा कहने लगा। बात यहीं खत्म नहीं हुई। दक्ष के मन में क्रोध और बदले की आग बुझ ही नहीं रही थी। इसलिए उसने शिव को अपमानित करने के लिए एक बहुत बड़े यज्ञ का आयोजन किया। उसमें उसने अपने जामाता शिव को छोड़कर अपने सभी संबंधियों, सृष्टि के

सभी देवताओं और विशिष्ट लोगों को बुलाया। जब पार्वती ने अपनी बहनों को सज-धज कर कहीं जाते हुए देखा, तो अपनी सखी से उनसे पुछवाया कि वे कहाँ जा रही थीं। जब पार्वती को अपने पिता दक्ष के यज्ञ के बारे में पता चला तो वह अपने पति शिव के पास जाकर चलने के लिए कहने लगी। शिव ने बताया कि दक्ष उनसे शत्रुता रखते हैं, इसलिए उन्होंने उन्हें जानबूझकर नहीं बुलाया। सती ने फिर कहा कि शास्त्रों के अनुसार पिता, गुरु और मित्र के यहाँ जाने के लिए किसी निमंत्रण की आवश्यकता नहीं होती। तब शिव ने जवाब दिया कि उसकी बात ठीक है, पर दक्ष की बात और है, वह वहाँ उसका अपमान करेंगे और अपनों के द्वारा किया अपमान मृत्यु से बढ़कर होता है। पर सती नहीँ मानी और वहां चली गई। वहाँ अपने पति शिव का स्थान व भाग न देखकर वह बहुत क्रोधित हुई और अपने पिता दक्ष को फटकारने लगी। सती ने शिव को असली और सबसे बड़ा देवता बताया। दक्ष ने उससे कोई बात नहीं की और न ही औरों को करने दी। फिर जब सती चुप नहीं हुई, तब उसने सती को भूतों के साथ रहने वाले वेदविरुद्ध और गन्दे शिव की पत्नी कहा। फिर सती ने यह सोचकर कि वह शिव को क्या मुंह दिखाएगी और जब वे उसे दाक्षायणी या दक्ष-पुत्री कहेंगे तो वह क्या जवाब देगी, अपना शरीर योगविद्या से त्याग दिया और यज्ञ की अग्नि में प्रविष्ट कर गई। उसके दुख से 10000 शिवगणों ने गुस्से में अपने अस्त्र-शस्त्रों से अपने अंग भंग कर दिए और मृत्यु को प्राप्त हो गए। जब बाकि बचे गणों ने यज्ञ पर हमला किया तो ऋषियों द्वारा यज्ञ से पैदा किए ऋभु देवों से उनका युद्ध हुआ। उसी समय आकाशवाणी हुई जो दक्ष को फटकारने लगी। उसने सती को सबकी माँ, सूर्य-चन्द्र समेत सारी सृष्टि को पैदा करने वाली, शिव की परम प्यारी, शिव के आधे शरीर के रूप वाली, भुक्ति और मुक्ति देने वाली, सभी सुख प्रदान करने वाली, और परम आदरणीय बताया। उसने सती का आदर न करने पर दक्ष को बहुत फटकारा। ऋभुओं ने उस समय तो शिवगणों को भगा दिया पर बाद में शिव के भयानक दूसरे गणों ने आकर दक्ष यज्ञ का विध्वंस कर दिया था। वह सती अपने अगले जन्म में पार्वती नाम से फिर से शिव की पत्नी बनी।

कुंडलिनी शक्ति सती, कार्यकारी मन ब्रह्मा, और भूतिया जीवात्मा शिव के रूप में दर्शाया गया है

अब उपरोक्त कथा का गूढ़ रहस्य समझते हैं। दरअसल कुंडलिनी ही देवी सती है। शिव शून्य आकाश की तरह है। दोनों साथ रहकर ही अपनी सत्ता प्राप्त करते हैं। अलग रहकर तो न होने के सदृश ही हैं। मतलब कि दोनों साथ रहते हैं। सती से ही शिव को चमक प्राप्त होती है। शिव से सती को स्थिरता या सनातनता या अजरता-अमरता, और सर्वव्यापकता प्राप्त होती है। अब यहाँ कुछ दार्शनिक पेंच हैं, जिन्हें अक्सर नजरन्दाज किया जाता है। आदमी बड़े-2 धार्मिक कार्य करता है, पर कुंडलिनी योग को नजरंदाज करता है। ऐसे लोग प्रजापति दक्ष की तरह हैं, जिन्हें उसकी तरह नरक में जाना पड़ता

है। इस कथा में कुंडलिनी योग का महत्त्व छिपा हुआ है। भाईसाहब, अब कुंडलिनी क्या है, यही यक्ष प्रश्न हरेक अध्याय में खड़ा हो जाता है। मन में तो अनगिनत चित्र हैं। अब किसे कुंडलिनी माना जाए। तो इसका यही उत्तर बनता है कि तांत्रिक यौनयोग या पंचमकारों वाले योग के समय जो मन में सबसे मजबूती व सहजता से उभरे, वही चित्र कुंडलिनी है। क्योंकि कुंडलिनी तभी बनती है न जब मन का कोई चित्र मूलाधार स्थित यौन शक्ति से जुड़ता है। वही चित्र कुंडलिनी चित्र है, मन का कोई सामान्य चित्र नहीं। कुंडलिनी की दूसरी पहचान यह है कि उसके साथ आदमी के अंदर शून्यता, और व्यापकता भी हावी हो जाती है। यही शिव या आत्मा है, जिसे भूतों का साथी कहा गया है। भूत मृत्यु को भी कहते हैं। शून्यता और व्यापकता मृत्यु का प्रमुख गुण है। इसीसे शिव या आत्मा भूतों का साथी हुआ। कुंडलिनी की तीसरी पहचान है कि यह एक शुद्ध मानसिक चित्र होता है। मतलब कि वह भौतिक रूप में उपलब्ध नहीं होता। भौतिक रूप में मिलने से वह चित्र कुंडलिनी रहता ही नहीं, क्योंकि भौतिक वस्तुओं में हजारों दोष दिखाई देते हैं। दोषों वाली चीज मन में कहाँ चमकी रह पाएगी। इसीलिए किसी देवता के या गुरु के मानसिक चित्र को कुंडलिनी बनाया जाता है। विशेष आदर बुद्धि होने के कारण गुरु के भौतिक रूप में भी दोष नहीं दिखाई देता। कुंडलिनी की चौथी पहचान यह है कि मन में अद्वैतमयी भाव पैदा होने पर केवल अकेला कुंडलिनी चित्र मन में तेजी से चमकने लगता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अद्वैत भाव शून्य आकाश जैसा ही होता है। मतलब यह शिव भाव होता है। वहाँ सती तो हर हाल में पहुंचेगी ही, क्योंकि वह शिव के आधे शरीर के रूप में जो है। अगर फिर भी आपको कुंडलिनी का पता न चले, तो मैं कुछ नहीं कर सकता। हाहाहा। शिवपुराण में भी वही लिखा है जो मैं पिछले अध्यायों में बोल रहा था कि कुंडलिनी ही आध्यात्मिक मुक्ति के साथ भौतिक तरक्की व भोग-विलास भी प्रदान करती है। मन से ही सारा संसार है। जो यह कहा गया है कि उससे ही सारी सृष्टि की उत्पत्ति होती है, वह सब मन में ही तो होता है। सारी सृष्टि इस फुटबॉल के जितने आकार वाले सिर के अंदर पसरे मन में ही तो है, बाहर कुछ भी नहीं है। और भाई मन का सर्वप्रमुख प्रतिनिधि होने के कारण कुंडलिनी को मन भी कह सकते हैं। तो हुई न कुंडलिनी से ही सारी सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय। दक्ष यहाँ कर्म में लगे हुए गौण मन का प्रतीक है। वह जगत में प्रसिद्धि व पुण्य प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के यज्ञ कर्म करता है। वह अनेक प्रकार के देवताओं का पूजन करता है। उससे अद्वैत भाव से मन में कुंडलिनी का उद्भव होता है। वही उसकी सबसे प्रिय पुत्री सती है। शिव उससे शादी करने की इच्छा करते हैं, मतलब वे कुंडलिनी को जागरण के लिए प्रेरित करते हैं। यह भी आता है कि शिव-सती की जोड़ी सनातन है, वे केवल लीला के लिए ही अलग होते रहते हैं, और शादी करते रहते हैं। तभी तो सती अगले जन्म में पार्वती बनकर फिर से शिव की पत्नी बनी। इसका मतलब साफ है कि जीव ईश्वर से अलग होता है, और उसी में विलीन भी हो जाता है। दक्ष शिव की इच्छा का सम्मान करते हुए सती का विवाह शिव से कर देते हैं, मतलब कुंडलिनी जागरण हो जाता है, दक्ष अर्थात गौण मन जिसका पूरा आनंद उठाता है। ब्रह्मा भी सती का विवाह

शिव से कराने के लिए दक्ष को मनाते हैं। इसका मतलब है कि जो ब्रह्मा के रूप में मुख्य या मूल मन है, वह अपने अंदर सृष्टि को बढ़ा कर ज्यादा से ज्यादा बड़ा होना चाहता है। उसे पता है कि ईश्वर में मिलकर वह सबसे बड़ा हो जाएगा। इसलिए वह काम-काज में व्यस्त रहने वाले मन अर्थात दक्ष को कुंडलिनी जागरण के लिए प्रेरित करता है। ब्रह्मा यहाँ मूल मन का प्रतीक है। फिर दक्ष सती को यज्ञ में नहीं बुलाता। इसका मतलब है कि कुंडलिनी जागरण के बाद कार्यकारी मन कुंडलिनी योग नहीं करता और दुनिया के कामों में व्यस्त हो जाता है। मतलब साफ है कि यदि कुंडलिनी जागरण के बाद कुंडलिनी योग न किया, तब भी पतन सम्भव है। फिर जिसकी कुंडलिनी जागृत ही नहीं हुई, उसे तो क्यों नहीं करना चाहिए। दक्ष ने शिव को नहीं बुलाया, मतलब उसने अद्वैत भाव को धारण नहीं किया। सती दक्ष से मिलने अकेले गई, मतलब कुंडलिनी मन में बारबार आती है यह देखने कि उसका सम्मान है कि नहीं। शिव उसके साथ तभी आएंगे जब उसे सम्मान दिया जाएगा अर्थात कुंडलिनी से अद्वैत भाव को धारण करके शिव को भी सम्मान दिया जाएगा, मतलब कुंडलिनी योग से उसपर गौर किया जाएगा। हालांकि मन से तो शिव कुंडलिनी के साथ है ही। दक्ष ने कुंडलिनी का सम्मान नहीं किया, मतलब उसने कुंडलिनी योग नहीं किया। सती ने आत्मदाह किया, मतलब कुंडलिनी नष्ट हो गई। उसके साथ शिवगणों ने भी आत्महनन किया, मतलब दक्ष रूपी गौण मन से शिव के बहुत से गुण गायब हो गए। गणों को सुंदर विचार भी कह सकते हैं। वे कुंडलिनी के साथ रहते हैं, और शिव की सहायता से उत्पन्न होते हैं। बाकि बचे गणों ने यज्ञ पर हमला किया, मतलब भगवान के कोप से सांसारिक विघ्न आए। यज्ञ से उत्पन्न ऋभुओं ने गणों को भगाया, मतलब अच्छे कर्मों के पुण्यों से दक्ष का बचाव हुआ। बाद में शिव के महान गणों से ऋभु देव भी नहीं बचा सके, मतलब मृत्यु के समय दक्ष के अच्छे कर्म उसके काम नहीं आए, और कुंडलिनी न होने से शिव ने भी उसका साथ नहीं दिया। शिवगण ने दक्ष का सिर धड़ से अलग कर दिया, मतलब दक्ष को मुक्ति के बिना ही मरना पड़ा। फिर शिव ने उसे बकरे का सिर लगाया जिससे वह बैं-बैं या बम-बम की आवाज करता हुआ शिव की स्तुति करने लगा। मतलब कुंडलिनी के आंशिक प्रभाव से दक्ष का पुनर्जन्म एक शिवभक्त के रूप में हुआ जिससे शिव की भक्ति करता हुआ वह मुक्त हो गया। बकरे में अहंकार नहीं होता। वह भक्ति का प्रतीक है, क्योंकि वह अपने मालिक के लिए बैं-बैं की प्रेम की रट लगा रखता है। इसका मतलब है कि जो कुंडलिनी योग से कुंडलिनी को सम्मान नहीं देता, वह अगले जन्म में भक्त बनता है। भक्ति उसकी योग की कमी को पूरा करती है। जब बुढ़ापे, बाल्यावस्था व बीमारी की अवस्था में आदमी तांत्रिक कुंडलिनी योग नहीं कर सकता, उस समय भक्ति ही उसका सहारा होती है। भक्ति से वह अपने मन को लगातार इष्ट में लगा कर रखता है। मुझे प्रेम और सम्मान में कोई अंतर प्रतीत नहीं होता। प्रेम और सम्मान वास्तव में पर्यायवाची शब्दों की तरह है। प्रेम से ही असली सम्मान होता है। बिना प्रेम का सम्मान तो दिखावा या जबरदस्ती का सम्मान है। तभी पहाड़ी भाषा में एक कहावत है, “मूंड मेक रौ डाल नी कराऊँदि”। इसका मतलब है

कि किसी का सिर मोड़कर उससे प्रणाम नहीं कराई जा सकती। जहां ज्ञान खत्म होता है, वहाँ भक्ति शुरु होती है। भगवान वेदव्यास ने 17 पुराण रच दिए थे। सारी सृष्टि का और ईश्वर का ज्ञान उसमें भर दिया था। पर उन्हें संतुष्टि नहीं मिली। इसलिए उन्होंने भक्तिमय पुराण श्रीमद्भागवत की रचना की। फिर उनकी कुंडलिनी स्थिर हुई, जिससे उन्हें परम संतुष्टि मिली। पर सीधे भक्ति करना भी मुश्किल है। असली भक्ति ज्ञान के बाद ही होती है। जो लोग बचपन से ही प्रेमी स्वभाव के होते हैं, वे पिछले जन्म के कुंडलिनी योगी प्रतीत होते हैं। कुंडलिनी योग को आसन प्राणायाम वाले योग तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए। यह प्राकृतिक कारणों से स्वयं भी हो सकता है। कुंडलिनी के प्रति आदर बुद्धि रखने में तो कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये। वह एक मानसिक चित्र है, आध्यात्मिक चित्र है। उसमें भौतिकता का कोई नामोनिशान नहीँ। अशुद्धि तो भौतिक पदार्थों में ही सम्भव है। अशुद्धि भौतिक ही होती है। यह शारीरिक अपशिष्टों, घृणा, क्रोध,वासना आदि से बनी होती है। आकाश या शून्य में कोई भौतिक वस्तु है ही नहीं। इसीलिए कुंडलिनी चाहे किसी भी रंग-रूप में क्यों न हो, हर हालत में आदरणीय है। इसीलिए आध्यात्मिक व्यक्ति को ही ज्यादातर मामलों में गुरु बनाया जाता है, क्योंकि उनमें आकाश की तरह अशुद्धि या दोष नहीं होते। दोष स्वार्थ से पैदा होते हैं। आकाश को किसी चीज की जरूरत नहीं क्योंकि वह अविनाशी है, इसलिए उसमें दोष नहीं हैं। दूरदर्शन के चरित्र भी इसीलिए प्रिय व आदरणीय लगते हैं, क्योंकि वे भी आकाश की तरह ही शुद्ध हैं। मन में बने चित्र से ज्यादा कुछ नहीं हैं। उनके भौतिक रूप से हमें कोई मतलब नहीं होता। भौतिक रूप के साथ बहुत जिम्मेदारियां जुड़ी होती हैं। तभी तो कई लोग इन चरित्रों के इतने दीवाने हो जाते हैं कि उनके लिए पता नहीं क्या-क्या कर बैठते हैं। यदि वैसे लोग उन्हें कुंडलिनी बना कर साधना करे, तो सफलता क्यों न मिले।

अध्याय-17

कुंडलिनी विभिन्न देवताओं, शिव ब्रह्मरूप अखंड ऊर्जा, सहस्रार चक्र वटवृक्ष और मस्तिष्क कैलाश पर्वत के रूप में दर्शाए गए हैं

दोस्तो, मैं पिछले अध्याय में बता रहा था कि 'चक्र' नाम कैसे पड़ा है। दरअसल चक्र का शाब्दिक अर्थ भी पहिया ही होता है। उदाहरण के लिए रथचक्र, जलचक्र आदि। यह भी बताया कि चक्र को ऊर्जा का केंद्र क्यों कहा गया है। चक्र के बारे में ऐसा तो हर जगह लिखा होता है, पर यह साबित नहीं किया होता है कि ऐसा क्यों कहा गया है। इससे रहस्यात्मकता की बू आती है। मैंने इसे वैज्ञानिक व अनुभवात्मक रूप से सिद्ध किया कि ऐसा क्यों कहा जाता है। इसीलिए इस पुस्तक का नाम "कुंडलिनी रहस्योद्‌घाटन" है। यह भी मनोवैज्ञानिक रूप से सिद्ध किया कि प्राण ऊर्जा और मनस ऊर्जा के मिश्रण से कुंडलिनी कैसे बनती है। दरअसल प्राण ऊर्जा और मनस ऊर्जा के इसी मिश्रित रूप को ही कुंडलिनी कहते हैं। यह कुंडलिनी की सबसे छोटी परिभाषा है। इसे ही टाईम-स्पेस मिश्रण भी कहते हैं। प्राण ऊर्जा टाईम का प्रतिनिधित्व करती है, और मनस ऊर्जा स्पेस का प्रतिनिधित्व करती है। इस अध्याय में मैं बताऊंगा कि सहस्रार चक्र को शिव के निवास स्थान या कैलाश के वटवृक्ष के रूप में कैसे निरूपित किया गया है।

दक्षयज्ञ से नाराज शिव को मनाने के लिए देवताओं द्वारा कैलाश गमन

भगवान विष्णु दक्ष से नाराज शिव को मनाने के लिए देवताओं सहित कैलाश पर्वत पर गए। वह कैलाश पर्वत मनुष्यों के इलावा किन्नरों, अप्सराओं और योगसिद्ध महात्माओं से सेवित था। वह बहुत ऊंचा था। वह चारों ओर से मणिमय शिखरों से सुशोभित था। वह अनेक प्रकार की धातुओं से विचित्र जान पड़ता था। वह अनेक प्रकार के वृक्षों व लताओं से भरा था। वह अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों व झरनों से परिव्याप्त था। उसके शिखर पर सिद्धांगनाएँ अपने-अपने पतियों के साथ विहार करती थीं। वह अनेक प्रकार

की कन्दराओं, शिखरों तथा अनेक प्रकार के वृक्षों की जातियों से सुशोभित था। उसकी कांति चांदी के समान श्वेतवर्ण की थी। वह पर्वत बड़े-बड़े व्याघ्र आदि जंतुओं से युक्त, भयानकता से रहित, सम्पूर्ण शोभा से सम्पन्न, दिव्य तथा अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न करने वाला था। वह पर्वत पवित्र गंगा नदी से घिरा हुआ और अत्यंत निर्मल था। उस कैलाश पर्वत के निकट शिव के मित्र कुबेर की अलका नाम की दिव्य नगरी थी। उसी पर्वत के पास ही सौगंधिक नामक दिव्य वन था, जो दिव्य वृक्षों से शोभित था, और जहाँ पक्षियों आदि की अद्‌भुत ध्वनि हो रही थी। उस पर्वत के बाहर से नन्दा और अलकनन्दा नामक दिव्य व पावन सरिताएं बह रही थीं, जो दर्शन मात्र से ही पापों का नाश करती हैं। देव स्त्रियां प्रतिदिन अपने लोक से आकर उन नदियों का जल पीतीं हैं, और स्नान करके रति से आकृष्ट होकर पुरुषों के साथ विहार करती हैं। फिर उस अलकापुरी और सौगंधिक वन को पीछे छोड़कर, आगे की ओर जाते हुए उन देवताओं ने समीप में ही शंकर जी के वट वृक्ष को देखा। वह वटवृक्ष उस पर्वत के चारों ओर छाया फैलाए हुए था। उसकी शाखाएं तीन ओर फैली हुई थीं। उसका घेरा सौ योजन ऊंचा था। वह घौंसलों से रहित और ताप से वर्जित था। उसका दर्शन केवल पुण्यात्माओं को ही होता है। वह अत्यंत रमणीय, परम पावन, शिवजी का योग स्थल, दिव्य, योगियों के द्वारा सेवन या निवास योग्य, तथा अति उत्तम था। महायोगमयी व मुमुक्षु लोगों को शरण देने वाले उस वटवृक्ष के नीचे बैठे शिवजी को देवताओं ने देखा। शिवभक्ति में लीन, शांत तन-मन वाले, व महासिद्ध जो ब्रह्मा के पुत्र सनक आदि हैं, वे प्रसन्नता के साथ उन शिव की उपासना कर रहे थे। उनके मित्र कुबेर, जो गुह्यकों व राक्षसों के पति हैं, वे अपने परिवार व सेवकों के साथ उनकी विशेष रूप से सेवा कर रहे थे। वे परमेश्वर शिव तपस्वियों के मनपसंद सत्यरूप को धारण किए हुए थे। वे वात्सल्य भाव से विश्वभर के मित्र लग रहे थे, और भस्म आदि से सुसज्जित थे। वे कुशासन पर बैठे हुए थे, और नारद आदि के पूछने पर सभी श्रोता सज्जनों को ज्ञान का उपदेश दे रहे थे। वे अपना बायाँ चरण अपनी दाईं जांघ पर, और बायाँ हाथ बाएँ घुटने पर रखी कलाई में रुद्राक्ष की माला डाले हुए सत्य-सुंदर तर्क मुद्रा में विराजमान थे। वे सर्वोच्च ज्ञान की बात बताते हैं कि मोक्ष की प्राप्ति कर्म से नहीं, अपितु ज्ञान से होती है। इसलिए अद्वैत ज्ञान के साथ कर्म करना चाहिए, मतलब कि कर्मयोग करना चाहिए। जो लोग उनमें, ब्रह्मा और विष्णु में भेद करते हैं, वे नरक को जाते हैं। मतलब कि भगवान शिव भेददृष्टि को नकारते हैं।

कैलाश पर्वत व मस्तिष्क की परस्पर समकक्षता

कैलाश पर्वत मस्तिष्क है। वहाँ पर आम लोग-बाग, अप्सराएं और नाच-गाना करने वाले कलाकार तो भोगविलास करते ही हैं, ऋषि-मुनि भी वहीँ पर ध्यान का आनंद प्राप्त करते हैं। यह मानव शरीर में सबसे ऊंचाई पर स्थित है। मणिमय शिखरों का मतलब इसकी अखरोट के जैसी आकृति से बने अनेकों रिज या उभार हैं, जो मन के चमकीले विचारों व संकल्पों से चमकते रहते हैं। अनेक प्रकार की धातुओं का मतलब इसके

किस्म-किस्म की संरचनाओं व रँगों वाले भाग हैं, जैसे कि खोपड़ी की हड्डी, उसके नीचे व्हाईट मैटर, उसके नीचे ग्रे मैटर, तरलता-पूर्ण नरम आंखें, कान, नाक, दांत आदि। मस्तिष्क का अंदरूनी भाग भी किस्म-किस्म के आकारों व रंगों में बंटा है, जैसे कि पॉन्स, हिप्पोकैम्पस, पिनियल ग्लैंड आदि। अनेक प्रकार के वृक्षों व लताओं का मतलब विभिन्न प्रकार के बाल हैं, जैसे कि सिर के बाल, दाढ़ी के बाल, मूँछ के बाल, कान के बाल, नाक के बाल आदि। यहाँ तक कि मस्तिष्क के अंदर भी रेशेदार माँस होता है, जिसे नर्व फाइबर कहते हैं। इससे लगता है कि प्राचीन ऋषि-मुनि मानव शरीर की एनाटोमी का भी अच्छा ज्ञान रखते थे। इसका विशद वर्णन आयुर्वेद में है। अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों का मतलब बालों में पाए जाने वाले सूक्ष्म परजीवी ही हैं। अनेक प्रकार के झरनों का मतलब आँखों, कानों व मुंह आदि की ग्रन्थियों से निकलने वाला जैविक स्राव ही है। इसके शिखरों पर सिद्धांगनाओं के विहार करने का मतलब तंत्र योगिनियों के द्वारा तांत्रिक रोमांस करना ही है, जिससे वे महान आनन्द प्राप्त करती हैं। आनन्द का स्थान तो मस्तिष्क ही है। अनेक प्रकार की कन्दराएँ मस्तिष्क के आसपास अनेक प्रकार के छिद्र हैं, जैसे कि आँख, नाक, कान आदि। शिखरों व वृक्षों के बारे में तो ऊपर बता ही दिया है। उस पर्वत के चांदी की तरह होने का मतलब मस्तिष्क के चेतना से भरे चमकीले विचार ही हैं। व्याघ्र जैसे जंतुओं का मतलब जू, पिस्सू की तरह सूक्ष्म मांसाहारी परजीवी ही हैं, जो बालों की नमी में छिपे रह सकते हैं। 'भयानकता से रहित' मतलब उन जंतुओं से भय नहीँ लगता था। दिव्यता तो मस्तिष्क में है ही। सभी दिव्य भाव मस्तिष्क की क्रियाशीलता के साथ ही हैं। कुंडलिनी जागरण सबसे दिव्य है, इसीलिए उसमें मस्तिष्क की क्रियाशीलता चरम पर होती है। इसी तरह मस्तिष्क आश्चर्य का नमूना भी है। इसमें जीवन या चेतना की उत्पत्ति होती है। वैज्ञानिक आज तक इस पहेली को नहीं सुलझा सके हैं। गँगा नदी यहाँ सुषुम्ना नाड़ी का प्रतीक है। क्योंकि वह सहस्रार को सिंचित करती है, जिससे पूरा मस्तिष्क जुड़ा हुआ है, इसीलिए इसे पूरे पर्वत को घेरने वाली कहा है। यह पूरे मस्तिष्क को ऊर्जा से निर्मल कर देती है। शिव के मित्र कुबेर की नगरी अलकापुरी आज्ञा चक्र को कहा गया है। "अलका" शब्द संस्कृत के अलक्षित व हिंदी के अलख शब्दों से बना है। इस चक्र से अदृश्य कुंडलिनी के दर्शन होते हैं। इसीलिए इसे तीसरी आंख भी कहते हैं। दरअसल जब आज्ञाचक्र पर ध्यान लगाया जाता है, तो सहस्रार पर कुंडलिनी प्रकट हो जाती है। क्योंकि शिवपुराण में शिव ही कुंडलिनी के रूप में हैं, इसीलिए आज्ञाचक्र के अभिमानी देवता कुबेर को शिव का मित्र बताया गया है। अगर यहाँ अखण्ड ऊर्जा को ही शिव माना गया है, तब भी कुबेर शिव के मित्र सिद्ध होते हैं, क्योंकि कुंडलिनी से ही अखण्ड ऊर्जा प्राप्त होती है।आज्ञाचक्र बुद्धि का प्रतीक है। इसलिए स्वाभाविक है कि आज्ञाचक्र धनसंपदा से जुड़ा है, क्योंकि बुद्धि से ही संपदा अर्जित होती है। इसीलिए इसके देवता कुबेर सृष्टि में सबसे धनी हैं। उस पर्वत के पास ही सौगंधिक नामक वन है। क्योंकि इसका वर्णन अलकापुरी के एकदम बाद हो रहा है, इसका मतलब है कि वह वन उसके निकट ही है। वह तो नाक ही है। उसके अंदर ही सुगंधिका अनुभव होता है, इसलिए माना गया

है कि सुगंधि की उत्पत्ति उसीमें हो रही है। क्योंकि सुगंधि वृक्षों और पुष्पों से ही उत्पन्न होती है, इसलिए नाक को वन का रूप दिया गया है। उस वन को दिव्य इसलिए कहा है, क्योंकि वह आकार में इतना छोटा होकर भी दुनिया भर की सभी दिव्य सुगंधियों को उपलब्ध कराता है। साधारण वन तो ऐसा नहीं कर सकता। उसमें स्थित रोमों को ही दिव्य वृक्ष माना जा सकता है। इन्हें दिव्य इसलिए कहा जा रहा है, क्योंकि आकार में इतना छोटा और कम संख्या में होने पर भी वे दुनिया भर की दिव्य सुगंधियों को उपलब्ध कराने में मदद करते हैं। वे गंध-ग्राही कोशिकाओं को सुरक्षा देते हैं। हो सकता है कि पौराणिक युग में नासिका-रोम को ही सुगन्धि के लिए एकमात्र जिम्मेदार माना जाता हो। उस वन में पक्षियों आदि की अद्‌भुत ध्वनि हो रही थी। वह ध्वनि दरअसल श्वास-प्रश्वास की धीमी आवाज ही है। इसे मीठी आवाज तो नहीं कही जा सकती। इसीलिए इसे अद्‌भुत कहा है। उस पर्वत के बाहर नन्दा और अलकनन्दा नामक दो नदियां इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ ही हैं। मस्तिष्क के साथ रीढ़ की हड्डी जुड़ी होती है। रीढ़ की हड्डी को यदि नीचे के पर्वत कहेंगे, तो मस्तिष्क शीर्ष के पर्वत शिखर से बना है। उसमें सुषुम्ना बहती है। उसे गंगा कहा गया है। इड़ा नाड़ी रीढ़ की हड्डी के बाहर बाईं ओर बहती है। इसके माध्यम से आदमी दुनियादारी का भौतिक, सीमित, तार्किक या लॉजिकल व जजमेंटल या नुक्ताचीनी वाला आनन्द लेता है। इसीलिए इसका नाम नन्दा है। दूसरी नाड़ी जो पिंगला है, वह मेरुदंड रूपी पर्वत के दाईं ओर बहती है। इसके माध्यम से आदमी आध्यात्मिक जैसा, शून्य या स्पेस या आकाश जैसा, अंधेरे जैसा, तर्कहीन या इलॉजिकल जैसा, असीमित जैसा, ननजजमेंटल जैसा आनन्द लेता है। इसका नाम अलकनन्दा है। जैसा ऊपर बताया, अलक शब्द अलख या अलक्षित का सूचक है। क्योंकि आकाश अनन्त होने से अलक्षित ही है, इसीलिए इसका नाम अलकनन्दा है, मतलब अलक्षित का आनन्द। दोनों नदियों के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं। अकेली नदी की बात नहीं हो रही, बल्कि दोनों नदियों की एकसाथ बात हो रही है। इसका मतलब है कि बाएं और दाएं मस्तिष्क के एकसाथ क्रियाशील होने से अद्वैत उत्पन्न होता है, जो निष्पापता रूप ही है। द्वैत ही सबसे बड़ा पाप है, और अद्वैत ही सबसे बड़ी निष्पापता। देव-स्त्रियों से मतलब यहाँ अच्छे व संस्कारवान घर की कुलीन स्त्रियां हैं। क्योंकि वे संपन्न होती हैं, इसलिए वे दुनियादारी के झमेले में ज्यादा नहीं फँसती। इससे वे अद्वैत के आनन्द में डूबी रहती हैं। इसी अद्वैत के आनन्द को उनके द्वारा दोनों नदियों के जल को पीने के रूप में दर्शाया गया है। वे सुंदर व सुडौल शरीर वाली होती हैं। नहाते समय कुंडलिनी ऊर्जा पीठ से ऊपर चढ़ती है, जैसा मैंने एक पिछले अध्याय में बताया था। ऐसा ही उन देव स्त्रियों के साथ भी होता है। मूलाधार की ऊर्जा ऊपर चढ़ने से उनका मूलाधार ऊर्जाहीन सा हो जाता है। मूलाधार को ऊर्जा देने के लिए ही वे रति की ओर आकर्षित होती हैं, और पुरुषों के साथ विहार करती हैं। एक अन्य रूपक के अनुसार, देवस्त्रियाँ सुंदर व मानवीय विचारों की प्रतीक हैं। ऐसे विचार अद्वैत भाव के साथ होते हैं, मतलब इनके साथ इड़ा और पिंगला, दोनों नाड़ियाँ बहती हैं। जब ये दोनों नाड़ियाँ बहुत तेजी से बहती हैं, तभी दिव्य कामभाव जागृत होता है।

ऐसा मूलाधार को ऊर्जा देने के लिए ही होता है, क्योंकि अद्वैत से मूलाधार की ऊर्जा ऊपर चढ़ती रहती है। अद्वैत भाव से मस्तिष्क में अभौतिक कुंडलिनी चित्र का विकास होने लगता है। उसके लिए बहुत ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि इंद्रियों की पहुंच से बाहर होने के कारण, आम मानसिक चित्रों की तरह इसको मजबूत करने के लिए शारीरिक इंद्रियों का सहयोग नहीं मिलता। इसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए मूलाधार से ऊर्जा ऊपर चढ़ती है। उस स्थिति में की गई रति क्रीड़ा बहुत आनन्ददायक व आत्मा का विकास करने वाली होती है, मतलब कि इससे ऊर्जा सुषुम्ना में प्रविष्ट होकर सहस्रार में पहुंच जाती है। इस अतिरिक्त ऊर्जा से कुंडलिनी के साथ मस्तिष्क का भी अच्छा विकास होता है। इसीलिए कहते हैं कि मानव जाति के त्वरित विकास के लिए कुंडलिनी बहुत जरूरी है। उपरोक्त कुण्डलिनीपरक रतिक्रिया को तांत्रिक रतिक्रीड़ा भी कह सकते हैं। जब आदमी दुनियादारी से दूर हो, और ऊर्जा की कम खपत के कारण उसकी ऊर्जा की संचित मात्रा पर्याप्त हो, और वह पहले से ही सुषुम्ना में बह रही हो, वह तो साधु वाली स्थिति होती है। उसमें रतिक्रीड़ा के प्रति ज्यादा मन नहीं करता। देवलोक से वे स्त्रियां आती हैं, मतलब मस्तिष्क से वे मानवीय विचार बाहर आते हैं, और अद्वैत भाव के साथ दुनियादारी के काम निभाने लगते हैं। इसे ही देवस्त्रियों द्वारा नन्दा और अलकनन्दा नदियों में स्नान करना कहा गया है। देवता व देवियाँ वैसे भी अद्वैत भाव के प्रतीक होते हैं। साधारण लोगों में यह ऊर्जा का ऊर्ध्वगामी प्रभाव कम होता है। इसलिए उनकी कामुक भावना क्षणिक सुखदायी ही होती है, जिसे कामवासना कहते हैं। उनमें द्वैत भाव होने के कारण उनके मन में कुंडलिनी नहीं होती। इसलिए ऊर्जा की अतिरिक्त आवश्यकता न होने से मूलाधार की ऊर्जा ऊपर नहीँ चढ़ती। इसीलिए इसमें मूलाधार की ऊर्जा का रक्षण नहीं बल्कि क्षरण होता है। मस्तिष्क में ही दिव्यता होती है। सौगंधिक वन और अलकापुरी को लाँघ कर आगे बढ़ने पर वे सभी देवता एक वटवृक्ष के पास पहुंचते हैं, जिसकी शाखाएं पूरे पर्वत पर फैल कर छाया पहुंचाए हुए थीं। दरअसल कुंडलिनी को ही उन सभी देवताओं के रूप में दर्शाया गया है। मन में पूरी सृष्टि बसी हुई है। इसका मतलब है कि मन में सभी देवता बसे हुए हैं, क्योंकि देवता ही सृष्टि को चलाते हैं, और पूरी सृष्टि के रूप में भी हैं। एकमात्र कुंडलिनी चित्र या ध्यान चित्र के अंदर पूरा मन ऐसे ही समाया हुआ होता है, जैसे एक चीनी के दाने में चीनी की पूरी बोरी या गन्ने का पूरा खेत समाया होता है। किसी को अगर चीनी के दर्शन कराने हो, तो हम पूरी बोरी चीनी न उठाकर एक दाना चीनी का ले जाते हैं। इससे काम काफी आसान हो जाता है। जितनी ऊर्जा से चीनी की बोरी को एक फुट ऊंचा उठाया जा सकता है, उतनी ही ऊर्जा से एक चीनी के दाने को हजारों फुट ऊंचा उठाया जा सकता है। जो काम चीनी की बोरी से होगा, वही काम चीनी के एक दाने से भी हो जाएगा। इसी तरह यदि शिव से मिलाने के लिए सहस्रार तक मन को ले जाना हो, तो हम मन की पूरी दुनिया को न ले जाकर केवल कुंडलिनी को ले जाते हैं। इससे शिव-मन या शिव-जीव के मिलाप का काम बेहद आसान हो जाता है। जितनी ऊर्जा से पूरे मन को मूलाधार से स्वाधिष्ठान चक्र तक भी ऊंचा नहीं उठाया जा

सकता है, उतनी ही ऊर्जा से कुंडलिनी को सहस्रार तक ऊंचा उठाया जा सकता है। जो काम असंख्य चित्रों के ढेर को समेटे मन से होगा, वही काम उस ढेर में से छांटे गए एकमात्र कुंडलिनी चित्र से भी हो जाएगा। कुंडलिनी के स्थान पर बहुत सारे देवता इसलिए दिखाए गए हैं, ताकि इससे इस मनोवैज्ञानिक आख्यान को रोचकता व रहस्यात्मकता मिल सके। वटवृक्ष ही सहस्रार है, क्योंकि सहस्रार पूरे मस्तिष्क से नाड़ियों के माध्यम से जुड़ा है। उन नाड़ियों को सहस्रार चक्र रूपी वृक्ष की शाखाएं कह सकते हैं। उसकी शाखाएँ तीन ओर फैली हुई थीं, इसका मतलब है कि सहस्रार से बाएं मस्तिष्क, दाएँ मस्तिष्क और आगे व फिर नीचे फ्रंट चैनल, तीन दिशाओं में ऊर्जा प्रसारित होती है। पीछे व वहाँ के नीचे स्थित बैक चैनल से तो उसे ऊर्जा मिल रही है। यह चौथी दिशा में है, जिसे हम उस वृक्ष का तना या जड़ कह सकते हैं। ऊर्जा हमेशा जड़ से शाखाओं की तरफ ही बहती है। उसका ऊपरी विस्तार 100 योजन ऊँचा बताया गया है, जो लगभग एक हजार मील की दूरी है। यह बहुत ऊँचाई है, जो बाहरी अंतरिक्ष तक फैली है। दरअसल इसका मतलब है कि सहस्रार चक्र उस अखंड ऊर्जा से जुड़ा हुआ है, जो अनन्त आकाश में फैली हुई है। सहस्रार का शाब्दिक अर्थ भी एक हजार शाखाओं वाला है, सम्भवतः इसीलिए यह संख्या ली गई हो। वह घोंसलों से वर्जित है, मतलब वहाँ कोई सामान्य जीव नहीं पहुंच सकता। वह ताप से वर्जित है, मतलब अत्यंत शांत सहस्रार चक्र है। जिस द्वैत से ताप पैदा होता है, वह वहाँ था ही नहीं। वह अत्यंत रमणीय था। इसका मतलब है कि सभी स्थानों की रमणीयता सहस्रार के कारण ही होती है। रमणीय स्थानों पर ऊर्जा सहस्रार में घनीभूत हो जाती है, इसीलिए वे स्थान रमणीय लगते हैं। तभी तो आपने देखा होगा कि रमणीय स्थान पर घूमने के बाद शरीर में थकावट होने से कुछ समय काम करने को ज्यादा मन नहीं करता। यह इसलिए होता है क्योंकि शरीर की अधिकांश ऊर्जा सहस्रार को चली गई होती है। रमणीय स्थान पर घूमने के बाद आदमी तरोताजा व निर्मल सा हो जाता है। ऐसा लगता है कि पापों का पुराना बोझ हट गया है।इसीलिए दुनियादारी में पर्यटन का इतना ज्यादा क्रेज होता है। विभिन्न तीर्थ स्थल भी इसी रमणीयता के आध्यात्मिक गुण का फायदा उठाते हैं। ऐसा सब सहस्रार चक्र के कारण ही होता है। इसीलिए इसे परम पावन कहा है। उस वृक्ष का दर्शन केवल पुण्यात्माओं को ही होता है। इसमें कोई आश्चर्य वाली बात नहीं। अनुभव से भी यह साफ विदित होता है कि हिंसा आदि कर्मों से कुंडलिनी चेतना नीचे गिरती है, और मानवता रूपी पुण्य कर्मों से ऊपर चढ़ती है। वह दिव्य था। सारी दिव्यता सहस्रार चक्र में ही तो होती है। दिव्य शब्द दिवा या प्रकाश से बना है। प्रकाश का मूल सहस्रार और उससे जुड़ी अखंड ऊर्जा ही है। वह योगमयी था तथा योगियों व शिव का प्रिय निवास स्थान था। शिव भी तो योगी ही हैं। ब्रह्म या एनेर्जी कँटीन्यूवम से जुड़ाव या योग सहस्रार में ही सम्भव होता है। जाहिर है कि मोक्ष की इच्छा रखने वाले मुमुक्षु लोग वहीँ जाएंगे, क्योंकि सहस्रार में ही सीमित चेतना से छुटकारा सम्भव है। उस वृक्ष के मूल में शिव बैठे थे। ब्रह्म या अखंड ऊर्जा या एनर्जी कँटीन्यूवम को भी यहाँ शिव ही कहा है। वे तपस्वियों को प्रिय लगने वाले वेष में थे। मतलब कि वे अद्वैत रूप

अखण्ड ऊर्जा के रूप में थे, जो तपस्वियों को अच्छी लगती है। द्वैत में डूबे साधारण लोग कहाँ उसे पसंद करने लगे। ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार आदि ऋषि जो हमेशा ब्रह्मध्यान में लीन रहते हैं, उन्हें शिव की उपासना करते हुए इसलिए बताया गया है, क्योंकि शिव सृष्टि के सबसे बड़े तन्त्रयोगी भी हैं। आज्ञा चक्र व मूलाधार पर ध्यान केंद्रित करने से मस्तिष्क की ऊर्जा केन्द्रीभूत होकर सहस्रार में आ जाती है। इसे ही कुबेर द्वारा अपने गुह्यक सेवकों और परिवारजनों के साथ शिव की सेवा करना बताया गया है। गुह्यक यहाँ मूलाधार का प्रतीक हैं, क्योंकि मूलाधार और आज्ञाचक्र आपस में जुड़े होते हैं। गुह्यक भी मूलाधार की तरह ही डार्क तमोगुणी जैसे होते हैं। कुबेर के परिवारजन मस्तिष्क में चारों ओर बिखरी हुई मानसिक ऊर्जा के प्रतीक हैं। परिवारजन परिवार के मुखिया के ही वश में होते हैं। वात्सल्य भाव तो शिव में होगा ही। अनन्त चेतना के स्वामी शिव को हमारे जैसे सीमित चेतना वाले प्राणी बच्चे ही लगेंगे। वे भस्म लगाए हुए थे। भस्म वैराग्य, सार और निष्ठा का प्रतीक है। सारे विश्व का निचोड़ भस्म में निहित है। अखण्ड ऊर्जा में रमण करने वाले शिव को जगत नामक सीमित ऊर्जा कहाँ रास आएगी। अनेक लोग शिव से ही तंत्रयोग की प्रेरणा लेते हैं और कुंडलिनी जागरण प्राप्त करते हैं। इसे ही शिव के द्वारा ज्ञानोपदेश के रूप में दर्शाया गया है।

अध्याय-18

कुंडलिनी शक्ति और शिव के मिलन से ही कार्तिकेय नामक ज्ञान पैदा हुआ, जिसने तारकासुर नामक अज्ञानान्धकार का संहार किया

मित्रो, शिव पुराण के अनुसार, भगवान शिव सती के विरह में व्याकुल होकर पर्वतराज हिमाचल (हिमालय का भाग) के उस शिखर पर तप करने बैठ गए, जहाँ गँगा नदी का अवतरण होता है। गंगा के कारण वह स्थान बहुत पवित्र होता है। वे अपने मन को सती से हटाकर योगसाधना से परमात्मा में लगाने लगे। जब पर्वतराज हिमाचल को अपने यहाँ उनके आने का पता चला तो वे अपने परिवार और गणों के साथ शिव से मिलने चले गए, और उनकी सेवा में उपस्थित हो गए। शिव ने उनसे कहा कि वे वहाँ एकांत में तपस्या करना चाहते हैं, इसलिए कोई उनसे मिलने न आए। पर्वतराज ने अपने राज्य में यह ऐलान कर दिया कि जो भी शिव से मिलने का प्रयास करेगा, उसे कठोर राजदण्ड दिया जाएगा। परंतु पार्वती उनकी सेवा करना चाहती थी, इसलिए वह अपने पिता हिमालय से शिव के पास जाने की जिद करने लगी। थकहार के हिमालय पार्वती को लेकर शिव के पास फिर पहुंच गए, और पार्वती की सेवा स्वीकार करने के लिए प्रार्थना करने लगे। शिव ने कहा कि वे ध्यान योग में रमे रहते हैं, वैसे में स्त्री का क्या काम। स्त्री तो स्वभाव से ही चंचल होती है, और बड़े से बड़े योगियों का ध्यान भंग कर देती हैं। फिर उन्होंने कहा कि वे हमेशा प्रकृति से परे अपने परमानन्द व शून्य स्वरूप में स्थित रहते हैं। इस पर पार्वती ने उनसे कहा कि वे प्रकृति से परे रह ही नहीं सकते। प्रकृति के बिना तो वे बोल भी नहीं सकते, फिर क्यों बड़ी-बड़ी बातें कर रहे हैं। अगर वे प्रकृति से परे हैं और उन्हें सबकुछ पहले से ही प्राप्त है, तब क्यों इस हिमालय शिखर पर तपस्या कर रहे हैं। जो प्रकृति से परे है, उसका प्रकृति कुछ नहीं बिगाड़ सकती, फिर क्यों उससे भयभीत हो रहे हैं। शिव को यह तर्क अच्छा लगा, और उन्होंने पार्वती को सखियों के साथ प्रतिदिन अपनी सेवा करने की अनुमति दे दी। शिव पार्वती के हावभाव से अनासक्त रहते थे। उनके मन में कभी कामभाव पैदा नहीं हुआ। हालाँकि उन्हें अपने ध्यान में पार्वती ही नजर आती थी। उन्हें लगने लगा कि उनकी पूर्व पत्नी सती ही पार्वती के रूप में उपस्थित हुई है। देवताओं व ऋषियों ने यह अच्छा अवसर जानकर कामदेव को शिव के मन में कामभाव पैदा करने के लिए भेजा। वे ऊर्ध्वरेता (ऐसा व्यक्ति जिसका वीर्य ऊपर की तरफ बहता हो) शंकर को च्युतरेता (ऐसा व्यक्ति जिसका वीर्य नीचे की ओर गिर कर बर्बाद हो जाता हो) बनाना चाहते थे। देवता व ऋषि

दैत्य तारकासुर से परेशान थे। उसका वध शिव पार्वती के पुत्र के हाथों से होना था। इसीलिए वे शिव व पार्वती का विवाह कराना चाहते थे। शिव पहले तो पार्वती पर कामासक्त हो गए, और कामुकता के साथ उसके रूप-श्रृंगार का वर्णन करने लगे। फिर जैसे ही वे पार्वती के वस्त्रों के अंदर हाथ डालने लगे, और स्त्रीस्वभाव के कारण पार्वती शर्माती हुई दूर हटकर मुस्कुराने लगी, वैसे ही उन्हें अपनी ईश्वररूपता का विचार आया, और वे अपनी करनी पर पछताते हुए पीछे हट गए। फिर उनकी नजर पास में खड़े कामदेव पर गई। शिव की तीसरी आंख के क्रोधपूर्ण तेज से कामदेव खुद ही भस्म हो गया। शिव चाहते थे कि जब पार्वती का गर्व या अहंकार समाप्त हो जाएगा, वे तभी उसके साथ प्रेमसंबंध बनाएंगे। वैसा ही हुआ। जैसे ही पार्वती का अहंकार नष्ट हुआ, वैसे ही शिव ने उन्हें अपना लिया और उनके आपसी प्रेमसंबंध से कार्तिकेय का जन्म हुआ, जिसने बड़े होकर राक्षस तारकासुर का वध किया। तारकासुर ने देवताओं को बंधक बनाया हुआ था। वह देवताओं से अपनी मर्जी से काम करवाता था। दरअसल उसने ब्रह्मा से यह वरदान मांगा हुआ था कि वह शिव के पुत्र के सिवाय और किसी के हाथों से न मरे। उसे पता था कि शिव तो प्रकृति से परे साक्षात परमात्मा हैं, वे भला किसलिए विवाह करेंगे।

शिव-पार्वती विवाह की उपरोक्त रूपात्मक कहानी का रहस्योद्‌घाटन

ईश्वर भी जीव से मिलने के लिए बेताब रहता है। अकेले रहकर वह ऊब जैसा जाता है। यदि ऐसा न होता तो जीवविकास न होता। जीव से मिलने के लिए वह जीव के शरीर के सहस्रार में बैठकर तप करने लगता है। वह न कुछ खाता है, न कुछ पीता है। बस चुपचाप अपने स्वरूप में ध्यानमग्न रहता है। यही शिव का वहाँ तपस्या करना है। जीव का शरीर ही हिमालय पर्वत है, और जीव का मन अर्थात कुंडलिनी ही सती या पार्वती है। वे अपनी तपस्या व योगसाधना के प्रभाव से ही अपनी प्रेमिका सती के इतना नजदीक रहकर भी उसके लिए व्याकुल नहीं होते। सुषुम्ना यहाँ गंगा नदी है, जो सहस्रार को ऊर्जा की भारी मात्रा देकर उसे ऊर्जावान अर्थात पवित्र करती रहती है। जीवात्मा यहाँ पर्वतराज हिमालय या हिमाचल भी है। ऐसे तो जीवात्मा का मिलन परमात्मा से बीच-बीच में होता रहता है, पर पूरा मिलन नहीं होता। इसीको इस रूप में लिखा है कि शिव ने अपने वहाँ किसी के आकर मिलने को मना कर दिया। मिलने का अर्थ यहां पूर्ण मिलन ही है। दो के बीच पूर्ण मिलन तभी संभव हो सकता है, जब दोनों एक जैसे स्वभाव के हों। यदि शिव आम आदमी से पूर्णमिलन करेंगे, तो स्वाभाविक है कि उनकी तपस्या भंग हो जाएगी, क्योंकि आम आदमी तो तपस्या नहीं करते, और अनेकों दोषों से भरे होते हैं। इसीलिए जीवात्मा अपने मन और अपनी इन्द्रियों को बाहर ही बाहर दुनियादारी में ही उलझा कर रखता है, उसे शिव से मिलने सहस्रार की तरफ नहीं जाने देता। ये

मन, इन्द्रियाँ और प्राण ही राजा हिमाचल के नगरनिवासी हैं। यदि ये कभी गलती से सहस्रार की तरफ चले भी जाएं, तो उन्हें अंधेरा ही हाथ लगता है। यह अंधेरा ही पर्वतराज हिमाचल द्वारा उन्हें दिया जाने वाला कठोर दंड है। पर मन में जो कुंडलिनी चित्र होता है, वह बारम्बार शिव से मिलने के लिए सहस्रार जाना चाहता है। यही पार्वती है। मन का सर्वाधिक शक्तिशाली चित्र कुंडलिनी चित्र ही होता है। वही सहस्रार तक आसानी से जाता रह सकता है। इसीको पार्वती की जिद और हिमालय के द्वारा उसको शिव के पास ले जाने के रूप में बताया गया है। इसीका यह मतलब भी निकलता है कि पार्वती शिव को कहती है कि यदि वह प्रकृति से परे है, तो वह सहस्रार में बैठ कर किसकी आस लगा कर तपस्या कर रहा है। मतलब कि प्रकृति ने ही शिव को इस शरीर के सहस्रार चक्र में बैठने के लिए मजबूर किया है, ताकि उसका मिलन पार्वती रूपी कुंडलिनी से हो सके। केवल कुंडलिनी चित्र को ही सहस्रार में भेजकर आनन्द आता है, अन्य चित्रों को भेजकर नहीं। इसको इस रूपात्मक कथा में यह कहकर बताया गया है कि शिव ने पार्वती के द्वारा की जाने वाले अपनी प्रतिदिन की सेवा को स्वीकार कर लिया। पार्वती प्रतिदिन सखियों के साथ शिव की सेवा करने उस पवित्र शिखर पर जाती और प्रतिदिन घर को लौट आती। इसका मतलब है कि प्रतिदिन के कुंडलिनी योगाभ्यास के दौरान कुंडलिनी थोड़ी देर के लिए ही सहस्रार में रुकती, शेष समय अन्य चक्रों पर रहती। मूलाधार चक्र ही कुंडलिनी शक्ति का अपना घर है। पीठ में ऊपर चढ़ने वाली मुख्य प्राण ऊर्जा और साँसों की गति जो हमेशा कुंडलिनी के साथ रहती हैं, वे पार्वती की सखियां कही गई हैं। हर क्रिया की बराबर की प्रतिक्रिया होती है। कुंडलिनी के सहस्रार में होने से अद्वैत का अनुभव हो रहा है, मतलब कुंडलिनी शिव का ध्यान कर रही है। उसके बदले में शिव भी कुंडलिनी का उतना ही ध्यान कर रहे हैं। शिव को पार्वती में अपनी अर्धांगिनी सती नजर आती है। दरअसल जीव या कुंडलिनी शिव से ही अलग हुई है। कभी वह शिव से एकरूप होकर रहती थी। ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा कामदेव को शिव-पार्वती का मिलन कराने के लिए भेजने का अर्थ है, कुदरती तौर पर उच्च कोटि के योगसाधक का कामुकता या यौनतन्त्र की ओर आकर्षित होना। आप आए दिन देखते होंगे कि कैसे बड़े-बड़े आध्यात्मिक व्यक्तियों पर यौन शोषण के आरोप लगते रहते हैं। यहाँ तक विश्वामित्र जैसे प्रख्यात ब्रह्मऋषि भी इस यौनकामुकता से बच नहीं पाए थे, और भ्रष्ट हो गए थे। दरअसल यह कामुकता कुंडलिनी को इसी तरह से अंतिम मुक्तिगामी वेग (एस्केप विलोसिटी) को प्रदान करने के लिए पैदा होती है, जैसे एक अंतरिक्षयान को धरती के गुरुत्व बल से बाहर निकालने के लिए इसके रॉकेट इंजन से शक्ति पैदा होती है, ताकि वह भौतिकता से मुक्त होकर शिव से एकाकार हो सके। पर बहुत से योगी इस कामुकता को ढंग से संभाल नहीं पाते, और लाभ की बजाय अपनी हानि कर बैठते हैं। उस यौनकामुकता का सहारा लेकर कुंडलिनी शिव के बहुत नजदीक तो चली गई, पर उनसे एकाकार नहीं हो सकी। इसका मतलब है कि कुंडलिनी जागरण नहीं हो सका। आज्ञा चक्र पर ध्यान से कुंडलिनी मानसपटल पर बनी रहती है, जिससे कामुकता वाला काम भी कामुकता से रहित और

पवित्र हो जाता है। इसे ही शिव की तीसरी आंख से कामदेव का जल कर भस्म होना कहा गया है। तीसरी आंख आज्ञाचक्र पर ही स्थित होती है। मैं तो आज्ञा चक्र को ही तीसरी आंख मानता हूँ। तीसरी आँख या आज्ञा चक्र पर स्थित इसी कुंडलिनी शक्ति के प्रभाव से ही यौनयोग भौतिक कामुकता से अछूता रहता है, जबकि समान प्रकार की भौतिक गतिविधियों के बावजूद अश्लील पोर्न भड़काऊ कामुकता से भरा होता है। देवताओं की प्रार्थना पर शिव ने पार्वती से तभी विवाह किया जब पहले पार्वती ने अपना अहंकार नष्ट कर लिया। यह मैं पिछले अध्याय में भी बता रहा था कि जब योगसाधना से उत्पन्न सत्त्वगुण पर भी अहंकार समाप्त हो जाता है, तभी कुंडलिनी जागरण की संभावना बनती है। कुंडलिनी मन या जीव का प्रतीक है। जीव का अहंकार खत्म हो गया, मतलब कुंडलिनी-रूपी पार्वती का अहंकार खत्म हो गया। जीव के शरीर में सभी देवता बसे हैं। जीवात्मा के रूप में वे भी शरीर में बंधे हुए हैं। उदाहरण के लिए ब्रह्मांड में उन्मुक्त विचरण करने वाले सूर्य देवता छोटी-2 दो आंखों में, सर्वव्यापी वायुदेव छोटी सी नाक में, अनन्त आकाश में फैला जल देवता सीमित रक्त आदि में। इसी तरह ऋषि भी जीव को ज्ञान का उपदेश करके बंधे हुए हैं। ये देवता और ऋषि भी तभी पूर्ण रूप से मुक्त माने जाएंगे, जब जीव मुक्त होगा, मतलब कुंडलिनी जागरण के रूप में शिव-पार्वती का विवाह होगा। जीवमुक्ति के लिए यही देवताओं व ऋषियों की प्रार्थना है, जिसे शिव अन्ततः स्वीकार कर लेते हैं। तारकासुर राक्षस यहाँ अज्ञान के लिए दिया गया नाम है। तारक का अर्थ आंख की पुतली होता है, जो अज्ञान की तरह ही अंधियारे रँग वाली होती है। यह जीव के मन सहित उसके पूरे शरीर को बंधन में डालता है। तारक का मतलब आंख या रौशनी या ज्ञान भी है। इसको नष्ट करने वाला राक्षस ही तारकासुर हुआ। अज्ञान रूपी तारकासुर आदमी को अंधा कर देता है। उपरोक्तानुसार जीव के बंधन में पड़ने से देवता और ऋषि खुद ही बंधन में पड़ जाते हैं। उसका संहार केवल कुंडलिनी जागरण से पैदा होने वाला ज्ञान ही कर पाता है, जिसे इस कथा में शिव-पार्वती के पुत्र कार्तिकेय के रूप में वर्णित किया गया है।

अध्याय-19
कुंडलिनी ध्यान के लिए तप को ही शिव या इष्ट ध्यान के लिए तप कहा जाता है, मोटे तौर पर

कुंडलिनी एक लज्जा से भरी स्त्री की तरह अपने प्रियतम शिव से मिलने से शर्माती है, और असंख्य युगों और जन्मों तक अविवाहित रहकर ही उसकी अव्यवस्थित खोज में पागलों की तरह भटकती रहती है

दोस्तो, मैं पिछले अध्याय में शिवपुराण का हवाला देकर बता रहा था कि पार्वती शिव से मिलते हुए शरमा कर पीछे भी हट रही थी, पर साथ में आनन्द से मुस्कुरा भी रही थी। दरअसल कुंडलिनी या जीव के साथ भी ऐसा ही होता है। कुंडलिनी जैसे ही शिव से एक होने लगती है, वैसे ही वह घबराकर और शरमा कर पीछे हट जाती है। हालांकि उसे आनन्द भी बहुत आता है, और बाद में वह पछताती भी है कि वह क्यों पीछे हटी। यही क्षणिक कुंडलिनी जागरण है, जैसा शिवकृपा से व गुरुकृपा से संभवतः मुझे भी हुआ था। अब तो मुझे वह अनुभव याद भी नहीं। इतना सा लगता है कि वह हुआ था कुछ और मैं पूरी तरह से खुल जैसा गया था उस समय। बहुत संभव है कि इसी कुंडलिनी कथा को ही इस शिवकथा के रूप में लिखा हो। न भी लिखा हो, तब भी कोई बात नहीं, क्योंकि जैसा स्थूल जगत में होता है, वैसा ही सूक्ष्म जगत में भी होता है। कोई फर्क नहीं। यतपिण्डे तत्ब्रह्मांडे। शिव ने जब कामदेव को भस्म कर दिया, तब वे खुद भी अंतर्धान हो गए। इससे पार्वती विरह से अत्यंत व्याकुल हो गई। हर समय वह शिव की याद में खोई रहती थी। उसे कहीं पर भी आनन्द नहीं मिल पा रहा था। उसका जीवन नीरस सा हो गया था। उसकी यह दशा देखकर पर्वतराज हिमाचल भी दुखी हो गए। उन्होंने अपनी बेटी पार्वती को अपनी गोद में बिठाकर उसे प्यार से सांत्वना दी। एकदिन नारद मुनि पार्वती से मिलने आए और पार्वती को समझाया कि उसने अपना अहंकार नष्ट नहीं किया था, इसीलिए शिव अंतर्धान हुए। फिर उससे और कहा कि शिव उसकी भलाई के लिए उसका अहंकार खत्म करना चाहते हैं, इसीलिए उससे दूर हुए हैं। नारद ने पार्वती को अहंकार खत्म करने के लिए तपस्या करने को कहा। जब पार्वती ने तपस्या के लिए नारद से मंत्र मांगा, तो नारद ने उसे शिव पंचाक्षर मन्त्र दिया। यह "ॐ नमः शिवाय" ही है।

उपरोक्त रूपात्मक कथा का रहस्योद्घाटन

ऐसा घटनाक्रम बहुत से प्रेम प्रसंगों में दृष्टिगोचर होता है। एकबार जब मानसिक यौनसंबंध बन जाता है, उसके बाद एकदूसरे के प्रति बेहिसाब आकर्षण पैदा हो जाता है। पुरुष लगातार अपनी प्रेमिका की परीक्षा लेता है। वह उसे अपने प्रेम में दीवाना देखना चाहता है। वह उसे अपने प्रति पूरी तरह से निष्ठावान और समर्पित देखना चाहता है। कई संयमित मन वाले पुरुष तो यहाँ तक चाहते हैं कि स्त्री उसे स्वयं प्रोपोज़ करे औऱ यहाँ तक कि वह अपनी डोली लेकर भी खुद ही उसके घर आए। यह जोक नहीं, एक मनोवैज्ञानिक वास्तविकता है। यह कुंडलिनी से प्रेरित ही है। वे ऐसा न होने पर स्त्री को त्यागने से भी परहेज नहीं करते। शिव के जैसे उच्च आध्यात्मिक पुरुष तो स्त्री के अत्यंत निकट आ जाने पर भी अपने को संयमित करके अपने को गलत काम से बचा लेते हैं। वे स्त्री से बात भी नहीं करते और जीवन में अपना अलग रास्ता पकड़ लेते हैं। यह शिव के अंतर्धान होने की तरह ही है। इससे स्त्री, प्रेमी पुरुष की याद में बिन पानी मछली की तरह तड़पती है। पार्वती के साथ भी वैसा ही हुआ था। पुरुष भी उसकी याद को अपने मन में बसा कर अपने काम में लग जाता है। यह शिव के ध्यान की अवस्था में चले जाने की तरह ही है। अधिकांशतः पुरुष तो पहले से ही शिव की तरह अहंकार से रहित होता है। ज्यादातर मामलों में, रूप, गुण और संपत्ति का अहंकार तो स्त्री को ही ज्यादा होता है। इसी वजह से पुरुष उससे दूर चला जाता है, क्योंकि आग और पानी का मेल कहाँ। मैं यहाँ लैंगिक पक्षपात नहीं कर रहा हूँ, बल्कि प्रकृति की अद्भुत सच्चाई बयान कर रहा हूँ। अपवाद तो हर जगह हैं, कहीं ज्यादा तो कहीं कम। कालांतर में जब दुनियादारी के थपेड़े खाकर स्त्री का अहंकार नष्ट होता है, तब फिर उस प्रेमी पुरुष से उसकी मुलाकात होती है। हालाँकि अधिकांश स्त्रियों ने अपनी अलग गृहस्थी बसा ली होती है। पार्वती के जैसी तो बिरली ही होती है जो ताउम्र शिव की प्रतीक्षा करती रहती हो। फिर भी स्त्री, अपने सच्चे प्रेमी पुरुष से भावनात्मक लाभ तो प्राप्त करती ही है, बहिन, मित्र आदि किसी भी सम्बन्ध से। उन दोनों की मिश्रित मानसिक शक्ति स्वयँ ही उनकी संतानों को प्राप्त हो जाती है। यही शिव पार्वती का लौकिक मिलन, और मानसिक शक्ति के रूप में भगवान कार्तिकेय का जन्म है।

हिमालय का गंगावतरण वाला स्थान ही सहस्रार है

पार्वती उसी गंगावतरण वाले स्थान पर तप करती है, जहाँ उसने शिव के साथ प्रेमालाप किया था। वह स्थान सहस्रार चक्र ही है। "प्रेम की गंगा" छंद भी लोकप्रसिद्ध है। दरअसल प्रणय प्रेम से पीठ में सुषुम्ना से होकर चढ़ने वाली ऊर्जा ही वह प्रेम की गंगा है। कुंडलिनी सहस्रार चक्र पर आरूढ़ हो गई, और अद्वैत के आनन्द का अनुभव करने लगी। इसको ऐसे लिखा गया है कि पार्वती सहस्रार में तप करने लगी। तप का मतलब सहस्रार में कुंडलिनी का ध्यान ही है। यही शिव का ध्यान भी है, क्योंकि सहस्रार में

कुंडलिनी से मिलने शिव देरसवेर जरूर आते हैं, मतलब कुंडलिनी जागरण जरूर होता है। तप ध्यान के लिए ही किया जाता है। इसलिए तप को ध्यान योग या कुंडलिनी योग भी कह सकते हैं। यदि तप से ध्यान न लगे, तो वह तप नहीं, मात्र दिखावा है। हालाँकि तप कुंडलिनी के ध्यान के लिए होता है, पर इसे मोटे तौर पर शिव के ध्यान के लिए बताया जाता है, क्योंकि कुंडलिनी से अंततः शिव की ही तो प्राप्ति होती है। यह इस के इस मुख्य बिंदु को फिर से प्रमाणित करता है कि कुंडलिनी ध्यान या कुंडलिनी योग ही सबकुछ है। अपनी बेटी को मनाने और तप से रोकने के लिए उसके पिता हिमाचल और माता मेनका अपने पुत्रों और प्रसिद्ध पर्वतों के साथ वहाँ पहुंचते हैं। वे उसके कष्ट से दुखी हो जाते हैं। वे उसे कहते हैं कि कामदेव को भस्म करने वाले वैरागी शिव उसे नहीं मिलने आने वाले। वैसे भी भगवान को किसी की परवाह नहीं। वह अपने आप में पूर्ण है। वह अपनेआप में ही मस्त रहता है। ऐसे परम मस्तमौला को मना कर अपने वश में करना आसान काम नहीं है। पर पार्वती जैसे हठी भक्त लोग उसे मना लेते हैं। पार्वती को भक्ति की शक्ति का पूरा पता था, इसलिए वह नहीं मानती और तप करती रहती है। दरअसल मस्तिष्क ही हिमाचल राजा है। उससे ऐसे रसायन निकलते हैं, जो तपस्या से हटाते हैं। यही हिमाचल के द्वारा पार्वती को समझाना है। यह कुंडलिनी से ध्यान हटाकर जीव को बाहरी दुनियादारी में उलझाकर रखना चाहता है। विभिन्न पर्वत शिखर मस्तिष्क की अखरोट जैसी आकृति के उभार हैं, जो शरीर के विभिन्न भागों को नियंत्रित करते हैं। ये सभी पर्वतराज हिमाचल के अंदर ही हैं। मस्तिष्क को अपनी सत्ता के खोने का डर बना रहता है। उसके तप की आग की तपिश से सारा ब्रह्मांड जलने लगता है। इससे परेशान होकर ब्रह्मा को साथ लेकर सभी देवता और पर्वत उसे मनाने और तप से रोकने के लिए उसके पास जाते हैं। दरअसल यह शरीर ही संपूर्ण ब्रह्मांड है। इसमें सभी देवताओं का वास है। तप के क्लेश से यह शरीर तो दुष्प्रभावित होगा ही। यह स्वाभाविक ही है। ब्रह्मा सुमेरु पर्वत पर रहते हैं। सुमेरु पर्वत मस्तिष्क को ही कहते हैं। जैसे ब्रह्मा से ही सृष्टि का विकास होता है, वैसे ही मस्तिष्क से शरीर का विकास होता है, अपनी कल्पनाशीलता से। वैसे तो मस्तिष्क में सभी देवताओं का निवास है, पर मस्तिष्क के सर्वप्रमुख अभिमानी देवता को ही ब्रह्मा कहते हैं। सभी देवता मस्तिष्क के साथ पूरे शरीर में व्याप्त रहते हैं, पर ब्रह्मा मस्तिष्क में ही रहता है। इसीलिए ब्रह्मा का निवास सुमेरु में बताया गया है। इसलिए तप से ये ही शरीरस्थ देवता और इस शरीर रूपी ब्रह्मांड में रहने वाले असंख्य कोशिका रूपी जीव ही भूखे-प्यासे रहकर व्याकुल होते हैं। वास्तव में कुंडलिनी के साथ शरीर के प्राण भी सहस्रार को चले जाते हैं। इससे शरीर शक्तिहीन सा होकर अपंग जैसा या लाचार जैसा या पराश्रित जैसा हो जाता है। इससे स्वाभाविक ही है कि शरीर तो भौतिक रूप से पिछड़ेगा ही। बाहर के स्थूल ब्रह्मांड में कुछ नहीं होता। अगर बाहर के स्थूल जीवों और देवताओं को कष्ट हुआ करता, तो आज तक कोई भी नहीँ बचा होता, क्योंकि ध्यान योग के रूप में प्रतिदिन लाखों लोग तप करते हैं। कई योगी तो वनों-पर्वतों में भी घोर तप करते हैं।

अध्याय-20
कुंडलिनी-शिव विवाह ही साधारण लौकिक विवाह का उद्गम स्थान है

मित्रो, आप सभी को छठ पर्व की शुभकामनाएं। मैं हाल ही के एक लेख में बता रहा था कि सनातन त्यौहारों वाली आध्यात्मिक संस्कृति प्रकृति की पुजारी है, और वातावरणीय प्रदूषण के विरुद्ध है। सूत्रों के अनुसार जब छठी देवी की पूजा करने के लिए कुछ महिलाएं दिल्ली की यमुना नदी के पानी के बीच में सूर्य को अर्घ्य देने के लिए खड़ी हुई थीं, तो दुनिया को यमुना के वास्तविक प्रदूषण का पता चला। यमुना का पानी काला था, और उस पर इतनी ज्यादा सफेद झाग तैर रही थी कि वह ध्रुवीय समुद्र के बीच में तैर रहे बर्फ के पहाड़ लग रहे थे। बताने की जरूरत नहीं है कि अब यमुना की सफाई के प्रयास जोरों से शुरु हो गए हैं। पर इसको करवाने के लिए अनजाने में ही व्हिसल ब्लोवर का काम उन सनातन परंपरावादी महिलाओं से हो गया जो अपनी जान को जोखिम में डालकर प्रकृति को सम्मान देने और उसकी पूजा करने के लिए ज़हरीली नदी में उतरीं। कुछ तथाकथित अत्याधुनिक लोग तो उन्हें रूढ़िवादी और अंधविश्वासी कह सकते हैं, पर उन्होंने वह काम कर दिखाया जिसे बड़े-बड़े आधुनिकतावादी और तर्कवादी भी न करे। यह एक छोटा सा उदाहरण है। प्रकृति प्रेमी सनातनवाद की इसी तरह हर जगह बेकद्री होती हुई दिखती है, इसीलिए प्रकृति विनाश की तरफ जाती हुई प्रतीत होती है। मैं यहाँ किसी धर्मविशेष का पक्ष नहीं ले रहा हूँ, और न ही किसी विचारधारा का विरोध कर रहा हूँ, बल्कि जो सत्य घटना घटित हुई है, उसीका वर्णन और विश्लेषण कर रहा हूँ।

राजा हिमाचल मस्तिष्क का और उसका राज्य शरीर का प्रतीक है

शिवपुराण में आता है कि राजा हिमाचल ने विवाह महोत्सव के लिए अपने सभी संबंधी पर्वतों और नदियों को निमंत्रण दिया। विभिन्न प्रकार के अन्नों का भंडारण करवाया। चारों तरफ साज-सज्जा की गई। अपने राज्य के सभी लोगों के लिए खूब सुख-सुविधाएं वितरित कीं। उससे उसके पूरे राज्य के लोग प्रसन्न हो गए। प्रमुख ऋषियों को शिव के पास विवाह का निमंत्रण लेकर कैलाश मिलने भेजा। दरअसल राजा हिमाचल और उसका महल मस्तिष्क ही है। कैलाश सहस्रार चक्र है। धरती ही राजा हिमाचल का राज्य है। वह पूरा शरीर है। वैसे भी पर्वत को भूभृत कहते हैं। इसका मतलब है, धरती को पालने वाला। मस्तिष्क ही शरीर को पालता है। राजा हिमाचल सभी नदियों को

अपने महल बुलाता है, मतलब मस्तिष्क शरीर की सभी नाड़ियों की ऊर्जा को अपनी तरफ आकर्षित करता है। वह सभी पर्वतों को भी न्यौता देता है, मतलब मस्तिष्क का मुख्य केंद्र अन्य छोटे-छोटे केंद्रों से संवेदना-शक्ति को इकट्ठा करके कुंडलिनी जागरण की सर्वोच्च संवेदना को अभिव्यक्त करता है। यही शिव विवाह है, और इसीको ही विभिन्न पर्वतों का शिवविवाह में सम्मिलित होना कहा गया है। पर्वतराज हिमाचल विभिन्न खाद्यान्नों का भंडारण करता है, मतलब मस्तिष्क शरीर की सारी ऊर्जा अपनी तरफ खींचता है। भोजन ही ऊर्जा है, ऊर्जा ही भोजन है। प्राण ऊर्जा की प्राप्ति के लिए ही भोजन किया जाता है। तभी तो कहते हैं कि अन्न ही प्राण है। राजा हिमाचल के पूरे राज्य की जनता धन-धान्य से युक्त होकर हर्षोल्लास से भर जाती है, मतलब मस्तिष्क में जब ऊर्जा की भरमार होती है, तब उससे ऐसे रसायन निकलते हैं, जो पूरे शरीर को लाभ पहुंचाते हैं। शरीर और ब्रह्मांड के बीच में इस तरह की समकक्षता पुस्तक 'शरीरविज्ञान दर्शन' में सर्वोत्तम रूप में दर्शाई गई है। शिवविवाह के दिन राज्य के सभी लोग विभिन्न भोगों की धाम खाते हैं, और विभिन्न विलासों का भरपूर आनन्द उठाते हैं। इसका मतलब है कि कुंडलिनी जागरण वाले दिन पूरे शरीर में रक्तसंचार बढ़ जाता है। ऋषियों को आम आदमी के जैसे साधारण विवाह को इतने विस्तार से लिखने की क्या जरूरत थी, क्योंकि वे ज्यादातर खुद ब्रह्मचारी या अविवाहित होते थे, और कई तो गृहस्थी से दूर रहकर वनों में तप करते थे। कुंडलिनी के तो माता-पिता हैं, पर शिव के कोई नहीं। वह तो स्वयंभू परमात्मा हैं, इसीलिए शम्भु कहे जाते हैं। इससे जाहिर होता है कि यह साधारण विवाह नहीँ है। कुंडलिनी जागरण को ही शिवविवाह के रूप में वर्णित किया गया है, ताकि गृहस्थी में बंधे हुए आमजन भी उसे समझ सके और उसे आसानी से प्राप्त कर सके।

हिमाचल राज्य का सर्वोच्च महल सहस्रार है, जहाँ पर शिव-शक्ति का वैवाहिक जोड़ा ही स्थायी रूप से निवास कर सकता है

उपरोक्तानुसार सप्तऋषियों को विवाह के निमंत्रण पत्र के साथ शिव के पास कैलाश भेजा। कैलाश सहस्रार चक्र है। वहाँ पर ही अद्वैतभाव रूपी शिव का निवासस्थान है। दरअसल प्राणोत्थान के बाद शरीर की ऊर्जा-नदी का प्रवाह सहस्रार की तरफ ही होता है। उससे स्वाभाविक है कि उस ऊर्जा के बल से सहस्रार क्षेत्र में अद्वैतभाव व आनन्द के साथ सुंदर चित्र प्रकट होते रहते हैं। यह भी स्वाभाविक ही है कि अधिकांशतः वे चित्र भी उन्हीं लोगों या वस्तुओं के बनते हैं, जिनके साथ अद्वैत भाव या आध्यात्मिक भाव जुड़ा होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कोई व्यक्ति उसी क्षेत्र में जाना चाहता है, जो क्षेत्र उसके अनुकूल या उसके जैसा हो। ऋषि-मुनियों से अधिक अद्वैतरूप या आध्यात्मिक कौन हो सकता है। इसीलिए उन आध्यात्मिक वस्तुओं या व्यक्तियों को सप्तर्षिओं के रूप में दिखाया गया है। वैसे वह गुरु, मंदिर का पुजारी, मंदिर, गाय, गंगा

आदि कोई भी आध्यात्मिक वस्तु हो सकती है। शिवजी के नजदीक तो ये चीजें जाती हैं, और उन्हें कुंडलिनी के साथ एकाकार होने के लिए प्रेरित भी करती हैं, पर खुद शिव से एकाकार नहीं हो पातीं। इसीको इनके द्वारा शिव को उन्हीं के विवाह के लिए निमंत्रण देने के रूप में दिखाया गया है। विवाह किससे, कुंडलिनी से। शिव के साथ एकाकार न हो पाने के कारण ही इन्हें निमंत्रण देकर वापिस आते हुए दिखाया गया है। कोई भी चित्र शिव से जुड़े बिना निरन्तर सहस्रार में नहीं बना रह सकता, उसे जल्दी ही मस्तिष्क के निम्नतर ऊर्जा स्तर वाले निचले साधारण क्षेत्रों में आना ही पड़ता है। कुंडलिनी ही शिव के साथ एकाकार होने या जागृत होने के फलस्वरूप शिव के साथ कैलाश में निरंतर बनी रह पाती है। मतलब कि कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी को अपनी आत्मा के साथ जुड़ी हुई कुंडलिनी का अनुभव सहस्रार चक्र में निरंतर होता रहता है। यही कुंडलिनी जागरण की सर्वप्रमुख खूबी है, और यही आदमी को मोक्ष की ओर ले जाती है।

प्राण ही सहस्रार में शिव-शक्ति का विवाह रचाते हैं

फिर आता है कि शिव के विवाह समारोह के लिए विश्वकर्मा ने अद्‌भुत व दिव्य विवाह मंडप, भवन व प्रांगण आदि बनाए। जड़ मूर्तियां सजीव लग रही थीं, और सजीव वस्तुएं जड़ मूर्तियां लग रही थीं। जल में स्थल का और स्थल में जल का भान हो रहा था। दरअसल कुंडलिनी जागरण के आसपास प्राणों के सहस्रार में होने के कारण सब कुछ अद्‌भुत व दिव्य लगता है। अतीव आनन्द की स्थिति होती है। चारों ओर शांति महसूस होती है। अद्वैत भाव चरम के करीब होता है, और कुंडलिनी जागरण के दौरान तो चरम पर पहुंच जाता है। सभी कुछ एक जैसा लगता है। भेद दृष्टि खत्म सी हो जाती है। यह नशे के जैसी मूढ़ अवस्था नहीं होती, पर परम चेतनता और आनन्द से भरी होती है। इसी आध्यात्मिक भाव को यहाँ उपरोक्त रोचक कथानक के रूप में दर्शाया गया है। जल का थल लगना या थल का जल लगना, मतलब जल और थल के बीच में अभेद का अनुभव। जड़ का चेतन की तरह दिखना व चेतन का जड़ की तरह दिखना, मतलब जड़ और चेतन के बीच में समानता नजर आना। हर जगह झाड़-बुहार के पूरी तरह से साफ व निर्मल कर दी गई थी। इसका मतलब है कि सहस्रार में ही असली व पूर्ण निर्मलता का अनुभव होता है। बाहर से जितना मर्जी सफाई कर लो, यदि सहस्रार में प्राण नहीं हैं, तो सबकुछ मैला ही लगता है। इसी वजह से तो गाय के गोबर से पुते हुए आध्यात्मिक स्थान अति पवित्र महसूस होते हैं, क्योंकि आध्यात्मिकता के प्रभाव से सहस्रार चक्र प्राण से संपन्न होता है। जिन मूल्यवान भवनों में लड़ाई-झगड़ों का बोलबाला हो, वहां की चाकचौबंद सफाई भी रास नहीं आती, और वहाँ दम सा घुटता है। इसके विपरीत एक आध्यात्मिक साधु पुरुष की गोबर से लिपीपुती घासफूस की झौंपड़ी भी बड़ी आकर्षक व संजीदा लगती है।

अध्याय-21

कुंडलिनी योग रामायण वर्णित प्रभु राम की अयोध्या गृह-भूमि द्वारा रूपात्मक व अलंकारपूर्ण कथा के रूप में प्रदर्शित

गहराई से देखने पर रामायण कुंडलिनी योग के व्यावहारिक व प्रेरक वर्णन की तरह प्रतीत होती है

भगवान राम यहाँ जीवात्मा का प्रतीक है। परमात्मा और जीवात्मा में तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। वह नवरात्रि के नौ दिनों में शक्ति साधना करता है। उससे उसकी कुंडलिनी सहस्रार में पहुंच जाती है। उससे वह प्रतिदिन शुद्ध होता रहता है। दसवें दिन वह अहंकार रूपी रावण राक्षस को अपनी योगाग्नि से जलाकर नष्ट कर देता है। दीवाली के दिन उसकी कुंडलिनी जागृत हो जाती है। इसको राम का वापिस अपने घर अयोध्या लौटना दिखाया गया है। अयोध्या आत्मा का वह परमधाम है, जिसे कोई नहीं जीत सकता, मतलब जिसके ऊपर कोई न हो। अयोध्या का शाब्दिक अर्थ भी यही होता है। राम दशरथ का पुत्र है। दशरथ मतलब वह रथ जिसे दस घोड़े खींचते हैं। इन्द्रियों को शास्त्रों में घोड़े कहा गया है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पांच कर्मेन्द्रियाँ, कुल दस इन्द्रियाँ इस शरीर को चलाती हैं। इसलिए दशरथ शरीर को ही कहा गया है। इसीसे आत्मा बद्ध जैसा होकर जीवात्मा या राम बन जाता है। वैसे तो राम परमात्मा है, पर उससे बद्ध जीवात्मा या साधारण राम को यही दशरथ-शरीर पैदा करता है, इसीलिए इसे जीवात्मा राम का पिता कहा गया है। वह जो 12 वर्ष तक वनवास करता है, वह कुंडलिनी योग साधना ही है। कुंडलिनी योग साधना से आदमी सबके बीच रहता हुआ भी सबसे दूर और सबसे अलग सा बना रहता है। इसे ही वनवास कहा गया है। वैसे भी, तंत्र शास्त्रों के अनुसार कुंडलिनी योग में परिपक्वता या पूर्णता प्राप्त करने में औसतन 12 साल लग जाते हैं। दशरथ की पत्नी जो केकयी है, वह शरीर में पैदा होने वाली परमार्थ बुद्धि है। वह बाहर से देखने पर तो मूर्ख और दुष्ट लगती है, पर असलियत में वह परम हित करने वाली होती है। वह काक या कौवे की तरह कांय कांय जैसे कठोर शब्द करने वाली लगती है, इसीलिए उसका नाम केकयी है। उसने कभी दशरथ रूपी शरीर को राक्षसों के साथ युद्ध में बचाया था, मतलब उसने सख्ती और प्रेम से दशरथ को राक्षसों के जैसी बुरी आदतों से रोक कर परमार्थ- भ्रष्ट होने से बचाया था। इसीलिए दशरथ को उस पर गहरा विश्वास था। परमार्थ की बुद्धि को बनाए रखने के लिए परमार्थ के मार्ग पर चलना

पड़ता है। केकयी के कोपभवन में जाकर आत्महत्या की धमकी देने का यही अर्थ है कि अगर कम से कम उसकी तीन तथाकथित आध्यात्मिक बातें नहीं मानी गईं तो शरीर ऐशोआराम में डूब कर मनमर्जी का दुराचरण करेगा, जिससे वह नष्ट हो जाएगी। जो सन्मार्ग पर चलते हैं, उनकी वाणी में सरस्वती का वास होता है। उनके बोल झूठे नहीं होते। इसे ही यह कहा गया है, रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाए पर वचन न जाई। केकयी का मांगा जीवात्मा राम के लिए पहला वर है, राम को राज्य न देना। इसका मतलब है कि राम को भोगविलास व व्यर्थ की जिम्मेदारियों से दूर रखना। दूसरा वर है कि राम को 12 वर्ष का वनवास देना। वनवास कुंडलिनी योग साधना का ही पर्याय है। तीसरा वर है कि उसके पुत्र भरत को अयोध्या का राजा बनाना। भरत मतलब भ्राता में रत, भाई राम की भक्ति में लीन। भरत शरीर का निर्लिप्त मन है। वह राज्य तो करता है, पर बुझे हुए मन से। वह भोगविलास में आसक्त नहीं होता। वह राम के जूतों को अपने सिंघासन पर रखे रखता है, खुद उसपर कभी नहीं बैठता। यह राजा राम का महान कर्मयोग ही है। वह सबकुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता और कुंडलिनी योग साधना में ही तल्लीन रहता है। उसकी पत्नी सीता अर्थात उसकी शक्ति योगी राम के साथ रहती है, राजा राम के साथ नहीं। यही सीता का राम के साथ वन को जाना है। इसी तरह हनुमान और लक्ष्मण भी योगी राम के साथ रहते हैं, राजा राम या भरत के साथ नहीं। हनुमान यहां जंगली या अंधी शक्ति का प्रतीक है, जो राम के दिग्दर्शन में रहते हुए विभिन्न यौगिक क्रियाओं के माध्यम से कुंडलिनी योग में सहायक बनती है। लक्ष्मण मन के लाखों विचारों का प्रतीक है। लक्ष-मन मतलब लाखों विचार। ये भी अपनी संवेदनात्मक ऊर्जा कुंडलिनी को देते हैं। दरअसल रूपात्मक कथाओं में मन के विभिन्न हिस्सों को विभिन्न व्यक्तियों के रूप में दर्शाने की कला का बहुत महत्त्व होता है। वैसे भी, सारा संसार मन में ही तो बसता है। यदि कोई पूछे कि कुंडलिनी योगी राम किसका ध्यान करते हुए कुंडलिनी योग साधना करते थे, तो जवाब स्पष्ट है कि राम भगवान शिव का ध्यान करते थे। इसका प्रमाण रामेश्वरम तीर्थ है, जहाँ राम ने स्वयं शिवलिंग की स्थापना की है। यह अति प्रसिद्ध तीर्थ भारतवर्ष की चारधाम यात्रा के अंतर्गत आता है।

राम की दूसरी माता कौशल्या का नाम कुशल शब्द से पड़ा है। वह शरीर में वह बुद्धि है जो शरीर का कुशलक्षेम चाहती है। वह बाहर से तो अच्छी लगती है, क्योंकि वह शरीर को सभी सुख सुविधाएं देना चाहती है, पर वह परमार्थ बुद्धि केकयी को व अपना असली कल्याण चाहने वाले जीवात्मा राम को अच्छी नहीं लगती। केकयी राम के शरीर या दशरथ को भी अच्छी नहीं लगती क्योंकि शरीर को परमार्थ से क्या लेना देना, उसे तो बस ऐशोआराम चाहिए। पर जब वह मजबूत होती है, तब वह युक्ति से शरीर को भी वश में कर लेती है। यही केकयी के द्वारा दशरथ को वश में करना है।

कुंडलिनी स्थायी घर से जुड़ी होती है

दशरथ रूपी शरीर को हम उसके स्थायी घर का राजा भी कह सकते हैं। यही अयोध्या का राजा दशरथ है। आदमी के अपने स्थायी घर को भी हम अयोध्या नगरी कह सकते हैं, क्योंकि हम इससे लड़ नहीं सकते। हम इसे नुकसान नहीं पहुंचा सकते। कोई भी प्राणी अपने स्थायी घर से युद्ध नहीं कर सकता। इसीलिए इसका नाम अयोध्या है। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि एक आदमी से उसके स्थायी घर में कोई नहीं लड़ सकता। तभी तो कहते हैं कि अपने घर में तो कुत्ता भी शेर होता है। कोई आदमी कितना ही बड़ा लड़ाका क्यों न हो, पर अपने स्थायी घर में हमेशा शांति चाहता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। कोई प्राणी नहीं चाहता कि उसे हर समय अपराध बोध सताता रहे, क्योंकि उसका स्थायी घर उसके मन से हमेशा जुड़ा होता है। क्योंकि आदमी का मन हमेशा उसके स्थायी घर से जुड़ा होता है, इसलिए कुंडलिनी भी स्थायी घर से जुड़ी होती है, क्योंकि कुंडलिनी मन का ही हिस्सा है, या यूं कहो कि मन का सर्वोच्च प्रतिनिधि है। इसीलिए हरेक आदमी अपने स्थायी घर में सदैव अपना सम्मान बना कर रखना चाहता है। मुसीबत के समय स्थायी घर ही याद आता है। आपने देखा होगा कि कैसे कोरोना लौकडाऊन को तोड़ते हुए लोग अपने-अपने स्थायी घरों को भागते थे। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ बताए गए हैं। इनका आधार यह शरीर और उस शरीर का आधार उसका स्थायी घर ही है। कहा भी गया है कि शरीरमाद्यम खलु धर्मसाधनम। इसलिए बेशक जीवात्मा राम अपने कुंडलिनी जागरण के लिए इसे थोड़ा नजरअंदाज भी कर ले, पर कुंडलिनी जागरण के बाद उसे इसी शरीर में, शरीर के आधाररूप स्थायी घर और उसके माध्यम से भौतिकता में प्रविष्ट होना पड़ता है। बेशक वह कुंडलिनी जागरण के लिए अपना घर छोड़कर वन को चला जाए, पर अंततः उसे घर वापिस आना ही पड़ता है। देखा भी होगा आपने, आदमी घर से बाहर जहाँ मर्जी चला जाए, पर वह वास्तविक और स्थायी विकास अपने स्थायी घर में ही कर पाता है। नई जगह को घर बनाने में एक आदमी की कई पीढ़ियां लग जाती हैं। तभी तो एक प्रसिद्ध लघु कविता बनी है, "एक चिड़िया के बच्चे चार, घर से निकले पंख पसार; पूरव से वो पश्चिम भागे, उत्तर से वो दक्षिण भागे; घूम-घाम जग देखा सारा, अपना घर है सबसे प्यारा। घर की महिमा भी अपरम्पार है, और अयोध्या नगरी की भी। इसीलिए रिश्तों में घर और वर की बहुत ज्यादा अहमियत होती है। सबको पता है कि असली घर तो परमात्मा ही है, पर वहाँ के लिए रास्ता निवास-घर से होकर ही जाता है, ऐसा लगता है। सम्भवतः इसीलिए आदमी को मरणोपरांत भी उसके स्थायी घर पहुंचाया जाता है। अपने स्थायी घर गजनी को समृद्ध करने के लिए ही तो जेहादी आक्रांता महमूद गजनवी ने भारत को बेतहाशा लूटा था। बाहर जो कुछ भी विकास आदमी करता है, वह अपने स्थायी घर के लिए ही तो करता है। गजनवी को स्थायी घर के महत्त्व का पता था, नहीं तो क्या वह भारत में ही अपने रहने के लिए स्थायी घर न बना लेता? इसी तरह उपनिवेशवाद के दौरान अधिकांश अंग्रेजों ने भी भारत सहित

अन्य उपनिवेशित देशों में अपने लिए स्थायी घर नहीं बनाए। विश्व के ज्यादातर आंदोलनों, संघर्षों व युद्धों का एकमात्र मूल कारण होमलैंड या स्थायी घर ही प्रतीत होता है। इसका मतलब है कि आदमी कुंडलिनी के लिए ही ताउम्र संघर्ष करता रहता है, क्योंकि स्थायी घर भी उसमें विद्यमान कुंडलिनी की वजह से ही प्रिय लगता है। पेटभर खाना तो आदमी कहीं भी पा सकता है। पर घर घर ही होता है। अपनापन अपनापन ही होता है। कुंडलिनी से ही अपनापन है। इसका अर्थ है कि कुंडलिनी साधना करते हुए आदमी कहीं भी रहे, उसे अपने स्थायी घर जैसा ही आनन्द मिलता है, यहाँ तक कि उससे कहीं ज्यादा, यदि कुंडलिनी योग साधना निष्ठा व मेहनत से की जाए। इससे यह अर्थ भी निकलता है कि कुंडलिनी योग होम सिकनेस को कुछ हद तक दूर करके विश्व के अधिकांश संघर्षों और युद्धों पर विराम लगा सकता है, और दुनिया में असली व स्थायी शांति का माहौल बना सकता है, जिसकी आज सख्त जरूरत है। एक आम आदमी के द्वारा कुंडलिनी जागरण के बाद अपने स्थायी घर में जीतोड़ मेहनत करना ही राजा राम के द्वारा अयोध्या में बेहतरीन ढंग से राजकाज संभालना कहा गया है। यह अलग बात है कि कुंडलिनी जागरण के बाद व्यवहार में लाई गई भौतिकता आत्मज्ञान के साथ प्रयुक्त की जाती है, इसलिए ज्यादा हानिकारक नहीं होती। इसी दुनियादारी से कुंडलिनी जागरण स्थिरता और नित्यता को प्राप्त होता हुआ मुक्तिकारक आत्मज्ञान की ओर ले जाता है। मेरे खयाल से खाली कुंडलिनी जागरण की झलक से कुछ नहीं होता, यदि उसे सही दिशा में आगे नहीं बढ़ाया जाता। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि रामायण जैसी घटनाएं कभी हुई ही नहीं थीं, या रामायण काल्पनिक है। रामायण वास्तविक भी हो सकती है, रूपात्मक भी हो सकती है, और एकसाथ दोनों रूपों में भी हो सकती है। यह श्रद्धा और विश्वास पर निर्भर करता है। रामायण हमें हर प्रकार से शिक्षा ही देती है। मानो तो सारा संसार ही काल्पनिक है, न मानो तो कुछ भी काल्पनिक नहीं है, किसीके साथ कोई भेदभाव नहीं।

अध्याय-22
कुंडलिनी शक्ति ही माता सीता है, और उसका बहिर्गमन ही दशानन रावण के द्वारा सीताहरण है

मित्रो, मैं पिछले अध्याय में बता रहा था कि किस तरह रामायण कुंडलिनी योग के रूपकात्मक वर्णन की तरह प्रतीत होती है। इस अध्याय में हम इसको थोड़ा विस्तृत परिपेक्ष्य में देखेंगे।

शरीर में कुंडलिनी शक्ति ही माता सीता है, और उसका बहिर्गमन ही दशानन रावण के द्वारा सीताहरण है

राक्षस रावण के दस सिर दस दोषों के प्रतीक हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियों के दोष, और पांच कर्मेंद्रियों के दोष। उन दोषों ने कुंडलिनी शक्ति को बहिर्मुख किया हुआ था। इससे कुंडलिनी शक्ति शरीर से बाहर निकलकर संसार में भटकी हुई थी। भौतिक संसार में भटकते हुए वह उन दोषों के हित में काम कर रही थी, जिससे वे दोष और ज्यादा ताकतवर हुए जा रहे थे। विभिन्न सांसारिक इच्छाओं को पैदा करके वह काम दोष को बलवान बना रही थी। लड़ाई-झगड़े करा कर वह क्रोध दोष को बल दे रही थी। ज्यादा से ज्यादा पाने की इच्छा पैदा करके वह लालच को बढ़ा रही थी। सुंदर वस्तुओं के पीछे शरीर को भगा कर वह मोह दोष को बढ़ा रही थी। नशा वगैरह करवाकर वह मद को बढ़ा रही थी, और दूसरे की संपत्ति पर बुरी नजर डलवाकर मत्सर दोष को बढ़ा रही थी। इसी तरह से वह कर्मेन्द्रियोके पांच दोषों को भी बढ़ा रही थी। वह शक्ति ही माता सीता है। दस दोषों के द्वारा उस कुंडलिनी शक्ति को अपनी ताकत बढ़ाने के लिए इस्तेमाल करने को ही दशानन रावण के द्वारा माता सीता को चुराने के रूप में लिखा गया है।

सहस्रार चक्र में आत्मा और कुंडलिनी का मिलन ही राम और सीता के मिलन के रूप में दर्शाया गया है

कुंडलिनी शक्ति के द्वारा बाहरी भौतिक जगत में भी अनासक्ति के साथ विविध क्रियाकलाप करना ही माता सीता का रावण से दूर और उसके प्रति अनासक्त बने रहना है। तीव्र कुंडलिनी योग के माध्यम से कुंडलिनी शक्ति का शरीर में अंदर की

तरफ लौटना और सहस्रार में प्रविष्ट होकर जीवात्मा से उसका मिलना ही माता सीता से भगवान राम का पुनर्मिलन है। सहस्रार में कुंडलिनी और जीवात्मा के मिलन से दसों इन्द्रियों के दोषों का नष्ट होना ही भगवान राम के द्वारा सीता की सहायता से दशानन रावण का वध करना है। भारतवर्ष शरीर है, लंका शरीर के बाहर का भौतिक जगत, और उनके बीच में समुद्र दोनों के बीच का विभाजनकारी क्षेत्र है। बाहर की दुनिया कभी भीतर प्रवेश नहीं कर सकती। हम दुनिया को महसूस नहीं करते हैं, लेकिन हम केवल अपने दिमाग के अंदर बाहरी दुनिया की अनुमानित छवि महसूस करते हैं। इसलिए दोनों क्षेत्रों के बीच महान महासागर को उनकी पूर्ण पृथकता दिखाने के लिए चित्रित किया गया है। राम का समुद्र में एक पुल के माध्यम से लंका पहुंचना प्रतीकात्मक है, क्योंकि हम किसी क्षेत्र तक पहुंचे बिना वहाँ से किसी चीज को वापस नहीं ला सकते हैं। उन्होंने और उनकी सेना ने नावों का नहीं, बल्कि एक पुल का इस्तेमाल किया। इसका मतलब है कि हमारा मस्तिष्क वास्तव में बाहरी दुनिया तक नहीं पहुंचता है, लेकिन मस्तिष्क में प्रवेश करने वाली रोशनी और ध्वनियों के रूप में पुल के माध्यम से जानकारी प्राप्त करता है।

सभी पुराण कुंडलिनी योग का मिथकीय व रूपात्मक वर्णन करते हैं

पुराने समय में अशिक्षा और पिछड़ेपन का बोलबाला होता था। कुंडलिनी योग अति सूक्ष्म व आध्यात्मिक विज्ञान से जुड़ा हुआ विषय था। उस समय स्थूल विज्ञान भी आम लोगों की समझ से परे होता था, कुंडलिनी योग जैसा सूक्ष्म व पारलौकिक विज्ञान उन्हें कैसे समझ आ सकता था। इसलिए कुंडलिनी योग का ज्ञान केवल सम्पन्न वर्ग के कुछ गिनेचुने लोगों को ही होता था। वे चाहते थे कि आम लोग भी उसे प्राप्त करते, क्योंकि आध्यात्मिक मुक्ति पर मानवमात्र का अधिकार है। पर वे उन्हें सीधे तौर पर कुंडलिनी योग को समझाने में सफल नहीं हुए। इसलिए उन्होंने कुंडलिनी योग को रूपात्मक व मिथकीय कथाओं के रूप में ढाला, ताकि लोग उन्हें रुचि लेकर पढ़ते, इससे धीरे-धीरे ही सही, कुंडलिनी योग की तरफ उनका झुकाव पैदा होता गया। उन कथाओं के संग्रह पुराण बन गए। उन पुराणों को पढ़ने से अनजाने में ही लोगों के अंदर कुंडलिनी का विकास होने लगा। इससे उन्हें आनन्द आने लगा, जिससे उन्हें पुराणों की लत लग गई। इतने प्राचीन ग्रँथों के प्रति तब से लेकर आज के आधुनिक युग तक जो लोगों का आकर्षण है, यह इसी कुंडलिनी-आनन्द के कारण प्रतीत होता है। पुराण पढ़ने व सुनने वाले लोगों के बीच में जिसका दिमाग तेज होता था, वह एकदम से कुंडलिनी योग को पकड़ कर अपनी कुंडलिनी को जागृत भी कर लेता था। इस तरह से पुराण प्राचीन काल से लेकर मानवता की अप्रतिम सेवा करते आ रहे हैं।

अध्यात्म में रूपकता का महत्त्व

रूपकों से आध्यात्मिक विषयों को भौतिकता, सरलता, रोचकता, सामाजिकता और वैज्ञानिकता मिलती है। इसके बिना अध्यात्म बहुत नीरस होता। कई लोग अनेक प्रकार के कुतर्कों से रूपकता का विरोध करते हैं। इसे रूढ़िवादिता, कपोल कल्पनाशीलता आदि माना जाता है। बेशक आजके विज्ञानवादी युग में ऐसा लगता हो, पर प्राचीन काल में रूपकों ने मानवमात्र को बहुत लाभ पहुंचाया है। यदि शिव के स्थान पर निराकार ब्रह्म कहा जाए तो कितना उबाऊ लगेगा। मस्तिष्क और सहस्रार शब्द में वो सरसता कहाँ है, जो उनकी जगह पर हिमालय पर्वत और कैलाश पर्वत लिखने से प्राप्त होती है। पर मैं यह बता दूं कि शिवपुराण में जो पर्वतों का उल्लेख है वह प्रतीकात्मक या रूपात्मक ही लगता है। ऐसा नहीं है कि केवल पर्वतों में ही कुंडलिनी जागरण होता हो। हाँ, पर्वत उसमें थोड़ी अधिक मदद जरूर करते हैं। वहां शान्ति होती है। पर वहाँ ऑक्सीजन की व अन्य सुविधाओं की कमी भी होती है। इससे अधिकांश प्राण ऐसे भौतिक कष्टों से निजात दिलाने में ही खर्च हो जाते हैं। इसलिए मैदान व पहाड़ का मिश्रण सबसे अच्छा है। मैदानों की सुविधाओं में खूब सारा प्राण इकठ्ठा कर लो, और उसे कुंडलिनी को देने के लिए थोड़े समय के लिए पर्वत पर चले जाओ। पुराने जमाने मे लोग ऐसा ही करते थे। इसी तरह कुंडलिनी शब्द भी उतना रोचक नहीं लगता, जितना उसकी जगह पर माता पार्वती या सीता लगता है। फिर भी आजकल के तथाकथित आधुनिक व बुद्धिप्रधान समाज की ग्राह्यता के लिए आध्यात्मिक रूपकता को रहस्योद्‌घाटित करते हुए यथार्थ भी लिखना पड़ता है।

अध्याय-23

कुंडलिनी जागरण दीपावली और राम की योगसाधना रामायण महाकाव्य के मिथकीय रूपक में निरूपित

कुंडलिनी देवी सीता और जीवात्मा भगवान राम है

सीता कुंडलिनी ही है जो बाहर से आंखों की रौशनी के माध्यम से वस्तु के चित्र के रूप में प्रविष्ट होती है। वास्तव में शरीर की कुंडलिनी शक्ति नेत्रद्वार से बाहर गई होती है। शास्त्रों में कहा भी है कि आदमी का पूरा व्यक्तित्व उसके मस्तिष्क में रहता है, जो बाह्य इन्द्रियों के रास्ते से बाहर निकलकर बाहरी दुनिया में भटकता रहता है। बाहर हर जगह भौतिक दोषों अर्थात रावण का साम्राज्य है। वह शक्ति उसके कब्जे में आ जाती है, और उसके चंगुल से नहीं छूट पाती। मस्तिष्क में बसा हुआ जीवात्मा अर्थात राम उस बाहरी दुनिया में भटकती हुई सीता शक्ति को लाचारी से देखता है। यही जटायु के भाई सम्पाति के द्वारा उसे अपनी तेज नजर से समुद्र पार देखना और उसका हालचाल राम को बताना है। फिर राम योगसाधना में लग जाता है, और किसी मंदिर वगैरह में बनी देवता की मूर्ति को या वहाँ पर रहने वाले गुरु की खूब संगति करता है, और तन-मन-धन से उनको प्रसन्न करता है। इससे धीरे-धीरे उसके मन में अपने गुरु के चित्र की छाप गहरी होती जाती है, और एक समय ऐसा आता है जब वह मानसिक चित्र स्थायी हो जाता है। यही लँका के राजा रावण से सीता को छुड़ाकर लाना, और उसे समुद्र पर बने पुल को पार कराते हुए अयोध्या पहुंचाना है। प्रकाश की किरण ही वह पुल है, क्योंकि उसीके माध्यम से बाहर का भौतिक चित्र मन के अंदर प्रविष्ट हुआ। मन ही अयोध्या है, जिसके अंदर राम रूपी जीवात्मा रहता है। मन से कोई भी युद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि वह भौतिकता के परे है। हर कोई किसीके शरीर से तो युद्ध कर सकता है, पर मन से नहीं। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि मन को समझा-बुझा कर ही सीधे रास्ते पर लगाना चाहिए, जोरजबरदस्ती या डाँट-डपट से नहीं। टेलीपैथी आदि से भी दूसरे के मन का बहुत कम पता चलता है। वह भी एक अंदाज़ा ही होता है। किसी दूसरे के मन के बारे में पूरी तरह से कभी नहीं जाना सकता। पहले तो राम रूपी जीवात्मा लंबे समय तक बाहर की दुनिया में अर्थात रावण की लँका में भटकते हुए अपने हिस्से को अर्थात सीता माता को दूर से ही देखता रहा। मतलब उसने उस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। अगर वह बाहर गया भी, तो अधूरे मन से गया। अर्थात उसने शक्ति को वापिस लाने के लिए पर्याप्त प्रयास नहीं किए। फिर जब राम उसके वियोग से बहुत परेशान हो गया, तब वह दुनियदारी में जीजान से कूद गया। यही राक्षसों के

साथ उसके युद्ध के रूप में दिखाया गया है। दरअसल असली और जीवंत जीवन तो युद्धस्तर के जैसा संघर्षमयी और बाह्यमुखी जीवन ही होता है। मतलब कि वह मन रूपी अयोध्या से बाहर निकलकर आँखों की रौशनी के पुल से होता हुआ लँका में प्रविष्ट हो गया। दुनिया में वह पूरे जीजान से व पूरे ध्यान के साथ मेहनत करने लगा। यही तो कर्मयोग है, जो सभी आध्यात्मिक साधनाओं के मूल व प्रारंभ में स्थित है। मतलब कि वह लँका में सीता को ढूंढने लगा। फिर किसी सत्संगति से उसमें दैवीय गुण बढ़ने लगे। मतलब कि अष्टाङ्ग योग के यम-नियमों का अभ्यास उससे खुद ही होने लगा। यह सत्संग राम और राक्षस संत विभीषण की मित्रता के रूप में है। इससे जीवात्मा को कोई वस्तु बहुत पसंद आई, और वह लगातार उसी एक वस्तु के संपर्क में बना रहने लगा। मतलब कि राम की नजर अपनी परमप्रिय सीता पर पड़ी, और वह उसीके प्रेम में मग्न रहने लगा। मतलब कि इस रूपक कथा में साथ में तंत्र का यह सिद्धांत भी प्रतिपादित किया गया है कि एक स्त्री अर्थात पत्नी ही योग में सबसे ज्यादा सहायक होती है। पुराणों का मुख्य उद्देश्य तो आध्यात्मिक और पारलौकिक है। लौकिक उद्देश्य तो गौण या निम्न है। पर अधिकांश लोग उल्टा समझ लेते है। उदाहरण के लिए, वे इस आध्यात्मिक मिथक से यही लौकिक आचार वाली शिक्षा लेते हैं कि रावण की तरह पराई स्त्री पर बुरी नजर नहीं डालनी चाहिए। हालांकि यह शिक्षा भी ठीक है, पर वे इसमें छिपे हुए कुंडलिनी योग के मुख्य और मूल उद्देश्य को या तो समझ ही नहीं पाते या फिर नजरअंदाज करते हैं। फिर जीवात्मा के शरीर की पोज़िशन और सांस लेने की प्रक्रिया स्वयं ही इस तरह से एडजस्ट होने लगी, जिससे उसका ज्यादा से ज्यादा ध्यान उसकी प्रिय वस्तु पर बना रहे। इससे योगी राम का विकास अष्टाङ्ग योग के आसन और प्राणायाम अंग तक हो गया। इसका मतलब है कि राम सीता को दूर से व छिप-छिप कर देखने के लिए कभी बहुत समय तक खड़ा रहता, कभी डेढ़ा-मेढ़ा बैठता, कभी उसे लंबे समय तक सांस रोककर रखनी पड़ती थी, कभी बहुत धीरे से साँसें लेनी पड़ती थी। ऐसा इसलिए था ताकि कहीं दुनिया में उलझे लोगों अर्थात लँका के राक्षसों को उसका पता न चलता, और वे उसके ध्यान को भंग न करते। वास्तव में जो भौतिक वस्तु या स्त्री होती है, उसे पता ही नहीं चलता कि कोई व्यक्ति उसका ध्यान कर रहा है। यह बड़ी चालाकी से होता है। यदि उसे पता चल जाए, तो वह शर्मा कर संकोच करेगी और अपने विविध रूप-रंग व भावनाएं ढंग से प्रदर्शित नहीं कर पाएगी। इससे ध्यान परिपक्व नहीं हो पाएगा। अहंकार पैदा होने से भी ध्यान में क्षीणता आएगी। ऐसा ही गुरु के मामले में भी होता है। इसी तरह मन्दिर में जड़वत खड़ी पत्थर की मूर्ति को भी क्या पता कि कोई उसका ध्यान कर रहा है। क्योंकि सीता के चित्र ने ही राम के मन की अधिकांश जगह घेर ली थी, इसलिए उसके मन में फालतू इच्छाओं और गैरजरूरी वस्तुओं को संग्रह करने की इच्छा ही नहीं रही। इससे अष्टाङ्ग योग का पांचवां अंग, अपरिग्रह खुद ही चरितार्थ हो गया। अपरिग्रह का अर्थ है, वस्तुओं का संग्रह या उनकी इच्छा न करना। फिर इस तरह से योग के इन प्रारंभिक पांच अँगों के लंबे अभ्यास से जीवात्मा के मन में उस वस्तु या स्त्री का चित्र स्थिर हो जाता है। यही योग के धारणा

और ध्यान नामक एडवांस्ड व उत्तम अंग हैं। इसका मतलब है कि राम ने लँका के रावण से सीता को छुड़ा लिया, और उसे वायुमण्डल रूपी समुद्र पर बने उसी प्रकाश की किरण रूपी पुल के माध्यम से आँख रूपी समुद्रतट पर पहुंचाया और फिर अंदर मनरूपी अयोध्या की ओर ले गया या **जैसा कि रामायण में लिखा गया है कि लँका से उनकी वापसी पुष्पक विमान से हुई**। यही समाधि या कुंडलिनी जागरण का प्रारंभ है। इससे उसकी इन्द्रियों के दस दोष नष्ट हो गए। इसे ही दशहरा त्यौहार के दिन दशानन रावण को जलाए जाने के रूप में मनाया जाता है। फिर जीवात्मा ने कुंडलिनी की जागृति के लिए उसे अंतिम व मुक्तिगामी छलांग या एस्केप विलोसिटी प्रदान करने के लिए बीस दिनों तक तांत्रिक योगाभ्यास किया। उस दौरान वह घर पहुंचने के लिए सुरम्य और मनोहर यात्राएं करता रहा। वैसे भी अपने स्थायी घर के ध्यान और स्मरण से कुंडलिनी को और अधिक बल मिलता है, क्योंकि कुंडलिनी स्थायी घर से भी जुड़ी होती है, जैसा मैंने एक पिछले लेख में बताया है। मनोरम यात्राओं से भी कुंडलिनी को अतिरिक्त बल मिलता है, इसीलिए तो तीर्थयात्राएं बनी हैं। उस चौतरफा प्रयास से उसकी कुंडलिनी बीस दिनों के थोड़े समय में ही जागृत हो गई। यही राम का अयोध्या अर्थात कुंडलिनी के मूलस्थान पहुंचना है। यही कुंडलिनी जागरण है। कुंडलिनी जागरण से जो मन के अंदर चारों ओर सात्त्विकता का प्रकाश छा जाता है, उसे ही प्रकाशपर्व दीपावली के रूप में दर्शाया गया है। क्योंकि कुंडलिनी जागरण का प्रभाव समाज में, विशेषकर गृहस्थान में चारों तरफ फैलकर आनन्द का प्रकाश फैलाता है, इसलिए यही अयोध्या के लोगों के द्वारा दीपावली के प्रकाशमय त्यौहार को मनाना है।

अध्याय-24

कुंडलिनी तांत्रिक योग को यौन-संभोग प्रवर्धन व वीर्य रूपांतरण की सहायता से दिखाता सनातन शिवपुराण~संभोग से समाधि

ॐ कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगिन्द्रहारम् सदावसंतं हृदयारविन्दे भवंभवानीसहितं नमामि

मित्रो, शिवपुराण के अनुसार भगवान शिव के साथ देवी पार्वती का विवाह हुआ। फिर वे पार्वती के साथ कामक्रीड़ा करते हुए विहार करते रहे। उनको रमण करते हुए सैंकड़ों वर्ष बीत गए, पर वे उससे उपरत नहीँ हुए। इससे सभी देवता उदास होकर ब्रह्मा के पास चले गए। ब्रह्मा उन सबको साथ लेकर भगवान नारायण के पास चले गए। नारायण ने उन्हें समझाया कि किसी पुरुष और स्त्री के जोड़े को आपसी रमण करने से नहीं रोकना चाहिए। यदि कोई ऐसा करता है, तो उसे अपनी पत्नी और संतानों से वियोग का दुःख झेलना पड़ता है। उन्होंने ऐसे बहुत से लोगों का उदाहरण दिया जिन्होंने ऐसा किया था और जिसका दण्ड भी उन्हें मिला था। फिर उन्होंने कहा कि भगवान शिव एक हजार साल तक पार्वती के साथ संभोग करेंगे। उसके बाद वे उससे उपरत हो जाएंगे। इसलिए तब तक देवताओं को उनसे न मिलने की सलाह दी। परन्तु एक हजार साल बाद भी शिव और पार्वती गुफा से बाहर नहीं निकले। उन दोनों की रतिक्रीड़ा से भू कम्पित होने लगी, और जिस कच्छप और शेषनाग पर धरती टिकी हुई है, उनकी थकावट के कारण वायुमंडल की वायु भी स्तम्भित जैसी होने लग गई। तब सभी देवता व्याकुल होकर उस गुफा के द्वार के पास पहुंच गए। उस समय शिव-पार्वती संभोग में क्रीड़ारत थे। देवताओं ने दुखभरी आवाज में रुदन करते हुए शिव की स्तुति की, और राक्षस तारकासुर द्वारा अपने ऊपर किए गए अत्याचार से उन्हें अवगत कराया। भगवान शिव उनका रुदन सुनकर पार्वती को छोड़कर करुणावश उनसे मिलने द्वार तक आ गए। शिव ने उन्हें समझाया कि होनी को कोई नहीं टाल सकता, यहाँ तक कि वे खुद भी नहीं। फिर उन्होंने कहा कि जो होना था, वह हो गया, अब आगे की स्थिति स्पष्ट करते हैं। शिव ने कहा कि जो उनके वीर्य को ग्रहण कर सके, वही राक्षस तारकासुर से सुरक्षा दिला सकता है। सभी देवताओं ने इसके लिए अग्नि देवता को आगे किया। फिर शिव ने आश्वस्त होकर अपना वीर्य धरा पर गिरा दिया। अग्नि देवता ने कबूतर बनकर अपनी

चोंच से उस वीर्य का पान कर लिया। तभी पार्वती अंदर से रुष्ट होकर बाहर आई, और देवताओं के ऊपर क्रोध करते हुए उन पर आरोप लगाने लगी कि उन्होंने उसके संभोग के आंनद में विघ्न पैदा करके उसे बन्ध्या बना दिया। ऐसा कहते हुए उसने उनको श्राप दे दिया कि वे भी वन्ध्या की तरह निःसंतान रहेंगे। फिर अग्नि देवता को फटकारते हुए कहा कि उसने वीर्यपान जैसा नीच कर्म किया है, इसलिए वह कहीं शान्ति प्राप्त नहीं करेगा, और दाहकता से जलता रहेगा। वीर्य के असह्य तेज से परेशान होकर वह महादेव की शरण में चला गया, और उनसे अपनी व्यथाकथा सुनाई। महादेव शिव ने उसकी जलन कम करने के लिए एक उपाय बताया। उन्होंने कहा कि यदि माघ या जनवरी के महीने में प्रातः जल्दी स्नान करने वाली सात स्त्रियां इस वीर्य को अपनी योनि में ग्रहण करें, तो उसे उस वीर्य की जलन से छुटकारा मिल जाएगा। फिर देवी पार्वती भगवान शिव को फिर से गुफा के भीतर ले गई, और उनके साथ संभोग सुख प्राप्त करते हुए गणेश नामक पुत्र को उत्पन्न किया। तभी गुफा द्वार पर स्थित देवताओं के समक्ष आठ ऋषिपत्नियाँ पहुंच गईं। उन्हें माघ महीने के ठंडे जल के स्नान से ठंड लगी थी, इसलिए उनमें से सात स्त्रियां उस अग्नि के समीप जाने लगीं। एक अन्य ऋषिपत्नी अरुंधति को सब पता था, इसलिए उसने उन्हें रोका भी, पर वे नहीं रुकीं। अग्नि के पहुंचते ही अग्नि की सूक्ष्म चिंगारियों से होता हुआ वह वीर्य उनके अंदर प्रविष्ट हो गया, और वे गर्भवती हो गईं। जब उनके पति ऋषियों को इस बात का पता चला, तो उन्हें व्यभिचारिणी कहते हुए उनका परित्याग कर दिया। अब वे अपने कृत्य पर पछताते हुए दुनिया में इधर-उधर भटकने लगीं। उनसे वीर्य की जलन नहीं सही जा रही थी। वे हिमालय पर्वत पे चली गईं और उस वीर्य को हिमालय को देकर जलन और दबाव के भार से मुक्त हो गईं। जब हिमालय से वह वीर्यतेज नहीँ सहा गया, तो उसने वह गंगा नदी को दे दिया। गंगा भी उस वीर्य के तेज से परेशान हो गई, और उसने उसे अपने किनारे पर उगे सरकंडों में उड़ेल दिया। वहाँ पर उससे एक सरकंडे के ऊपर एक बालक ने जन्म लिया। उसके जन्म लेते ही चारों ओर खुशियां छा गईं। अनजाने में ही शिव और पार्वती परम प्रसन्नता, ताजगी व किसी बड़े बोझ के खत्म होने का अनुभव करने लगे। अत्यधिक प्रेम उमड़ने के कारण पार्वती के स्तनों से खुद ही दूध निकलने लगा। उनके निवास पर चारों ओर उत्सव के जैसा माहौल छा गया। देवता खुशियां मनाने लगे, और तारकासुर जैसे राक्षसों का अंत निकट मानने लगे। वह बालक कार्तिकेय के नाम से विख्यात हुआ, जिसने बड़े होकर तारकासुर का वध किया।

उपरोक्त रूपक का मनोवैज्ञानिक व कुण्डलिनीयोग परक विश्लेषण

शिव एक जीव की आत्मा है। जीवात्मा और परमात्मा में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं है। पार्वती उसकी पत्नि है। जीव हरेक मनुष्य जन्म में अपनी पत्नी के साथ भरपूर सहवास

करता है, पर जीवन-मरण से मुक्ति का उपाय नहीं करता। देवताओं ने जगत और जीव के शरीर का निर्माण इसलिए किया है, ताकि उसमें रहने वाली जीवात्मा मुक्त हो सके। उससे देवताओं को भी फायदा होता है, क्योंकि वे फिर जीव की सीमित देह के बंधन को त्याग कर पूर्ववत अपनी असीमित ब्रह्मांडीय देह में विहार करने लगते हैं। कुछ जन्मों तक तो वे लोकपालक विष्णु की आज्ञा से उसे संभोग सुख में डूबे रहने देते हैं। पर जब उसके दसियों जन्म ऐसे ही बीत जाते हैं, तब विष्णु भी देवताओं के साथ मिलकर उसे मनाने चल पड़ते हैं। आध्यात्मिक मुक्ति के सम्बंध में मनुष्य को प्रकृति ने स्वतंत्र इच्छा प्रदान की है, इसलिए उस पर जोरजबरदस्ती तो नहीं चल सकती। इसका मतलब है कि देवताओं को प्रेम से उसकी प्रार्थना और स्तुति करनी पड़ती है। देवता उससे कहते हैं कि राक्षस तारकासुर उन्हें परेशान करता है, और आपका पुत्र ही उसका वध कर सकता है। तारकासुर अज्ञान का प्रतीक है, क्योंकि वह आदमी को अंधा कर देता है। जीव का पुत्र कुंडलिनी को कहा गया है। दरअसल जीव लिंग रूप में है, और उसकी पत्नी योनि रूप में है, जो गुहारूप ही है। देवपूजा आदि विभिन्न आध्यात्मिक साधनाओं से व सत्संग से उसके मन में कुंडलिनी का विकास होता है। उसके साथ संभोग की शक्ति भी मिश्रित हो जाती है। उसी प्रचण्ड कुंडलिनी के प्रभाव से उसके शरीर में कम्पन पैदा होने लगता है, और साँसे भी उखड़ने लगती हैं। इसीको रूपक कथा में धरती के कम्पन और वायु के स्तम्भन के रूप में दर्शाया गया है। जीव का केंद्रीय तंत्रिका तंत्र रीढ़ की हड्डी और मस्तिष्क में फैला हुआ है, जिसकी आकृति एक फन उठाए हुए नाग से मिलती है। कुंडलिनी चित्र उसी केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में पलता और बढ़ता है। स्वाभाविक है कि प्रचंड कुंडलिनी के वेग से वह थक जाएगा। साँसों की गति व शरीर के कम्पन को भी वही केंद्रीय तंत्रिका तंत्र नियंत्रित करता है। उसकी थकावट से ही साँसे अनियमित, लम्बी या उखड़ी हुई सी हो जाती हैं। इसीको योगासन और प्राणायाम भी कह सकते हैं। इसीको रूपक में यह कह कर बताया गया है कि शेषनाग की थकान से वायुमंडल की वायु स्तम्भित होने लगी। वही कुंडलिनी उसे संभोग के समय स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र के आसपास महसूस होती है। इसीको समस्त देवताओं का गुहाद्वार पर इकट्ठे होने के रूप में दर्शाया गया है। क्योंकि कुंडलिनी ही पूरे शरीर का अर्थात सभी देवताओं का सार है। फिर शिवलिंग रूपी शिव गुफा से बाहर आते हैं। जीव को परमात्मा शिव की प्रेरणा से आभास हो जाता है कि जब जननांग क्षेत्र में वीर्य तत्त्व से कुंडलिनी चित्र इतना अधिक घनीभूत हो जाता है, तब उसे मस्तिष्क को चढ़ाकर समाधि या कुंडलिनी जागरण को अवश्य प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए वह अपने ही शरीर के अंतर्गत स्थित देवताओं से कहता है कि जो उसके वीर्य के तेज को धारण कर पाएगा, वह तारकासुर के वध में सहायक होगा। फिर जीव अपनी पुट्ठे की, पेट की व मूत्रनालिका की मांसपेशियों को जोर से ऊपर की ओर सिकोड़ता हुआ वीर्य को ऊपर की ओर खींचता है। इस शक्तिशाली कर्म से शरीर में गर्मी चढ़ जाती है। इसे ही अग्नि देवता द्वारा वीर्यपान कहा गया है। वीर्य का चुसाव जननेन्द्रिय से शुरु होता है, जिसकी आकृति एक चोंच वाले पक्षी की तरह है। इसीको अग्नि द्वारा

कबूतर बन कर अपनी चोंच से वीर्यपान करना बताया गया है। कई तांत्रिक हठयोगी तो इस क्रिया में इतनी महारत हासिल कर लेते हैं कि वे वीर्य को बाहर गिराकर भी वापिस ऊपर खींच लेते हैं। इस तकनीक को तंत्र में वज्रोली क्रिया कहा जाता है। इससे क्योंकि योनि में वीर्य नहीं गिरता, इसलिए स्वाभाविक है कि गर्भ नहीं बनेगा। यही पार्वती के द्वारा देवताओं को श्राप देना है। क्योंकि शरीर देवताओं से ही बना है, इसलिए स्वाभाविक है कि जीव के निःसन्तान होने से देवता भी निःसन्तान अर्थात बन्ध्या हो जाएंगे। वीर्य को धारण करने से जननांग में एक दबाव सा या जलन सी पैदा हो जाती है। यही पार्वती द्वारा अग्निदेव को दिया गया श्राप है। परमात्मा शिव रूपी गुरु की आज्ञा से जीव अपनी जननेन्द्रिय के वीर्य के तेज को अपने शरीर के सातों चक्रों के ऊपर प्रतिस्थापित कर देता है। क्योंकि आठवां चक्र शरीर के बाहर और मस्तिष्क से थोड़ा ऊपर होता है, इसलिए वह उसे वीर्यतेज नहीं दे पाता। नहाते समय चक्रों पर एक आनन्दमयी संवेदना और सिकुड़न पैदा होती है। पानी जितना ठंडा होता है, यह अनुभव इतना ही ज्यादा होता है। इसीलिए शास्त्रों में सभी के लिए, विशेषकर योगियों के लिए वर्षभर प्रातः जल्दी उठकर ठंडे पानी से नहाने की हिदायत दी गई है। अपनी सिकुड़न की शक्ति से चक्र उस वीर्यतेज को जननांग से अपनी ओर खींच लेते हैं। यही ऋषिपत्नियों का ठंड के मारे अग्नि के निकट जाकर आग तपना, और अग्नि की सूक्ष्म चिंगारियों के माध्यम से उनके अंदर वीर्यतेज का प्रविष्ट होना है। क्योंकि माघ का महीना सबसे ठंडा होता है, इसलिए स्वाभाविक है कि यह प्रक्रिया तब सर्वाधिक होती है। इसीको रूपक में उन आठ स्त्रियों, सात स्त्रियों व माघ माह में उनके ठंडे पानी से स्नान के रूप में दिखाया गया है। क्योंकि कुंडलिनीयुक्त हठयोग से भी चक्रों पर ठंडे पानी के जैसा प्रभाव पड़ता है, इसलिए यह रूपक अंश कुंडलिनी योग के हठयोग भाग (विशेषकर आसनों) का भी प्रतीक है। मन को ऋषि के रूप में दिखाया गया है। अलग-अलग चक्रों में मन के अलग-अलग विचार दबे होते हैं। इसलिए चक्रों को ही ऋषिपत्नियाँ कहा गया है। चक्र एक छल्ले के सुराख के जैसी आकृति है, इसलिए इसे योनिरूप में दर्शाया गया है। चक्र में छिपा मन का विचार स्त्रीरूप है। उसमें स्थापित वीर्य का तेज पुरुषरूप है। दोनों का मिलन होने से गर्भ बनता है। इसीको ऋषिपत्नियों का गर्भवती होना बताया गया है। चक्र पर वीर्य का तेज भी ज्यादा शक्तिशाली नहीं होता, और कुंडलिनी विचार भी मस्तिष्क के कुंडलिनी विचार की तरह मजबूत नहीं होता। इसलिए वह गर्भ कामयाब नहीं हो पाता। गर्भ और वीर्य के तेज से चक्रों को जलन महसूस होने लगी। वीर्य के तेज से चक्र पर इधर-उधर के फालतू विचारों का शोर थम गया, और उनकी जगह एकमात्र कुंडलिनी विचार ने ले ली। मतलब मन ने चक्र का साथ छोड़ दिया, क्योंकि विचारों का समूह ही मन है। यही ऋषियोँ के द्वारा अपनी पत्नियों को व्यभिचार का आरोप लगाकर छोड़ना है। सबसे अधिक जलन और दबाव स्वाधिष्ठान चक्र को महसूस होता है। चक्रों ने गर्भ सहित उस वीर्यतेज को रीढ़ की हड्डी को दे दिया। मतलब कि जीव ने स्वाधिष्ठान चक्र की जलन के साथ रीढ़ की हड्डी को उसके ध्यान के साथ अनुभव किया। रीढ़ की हड्डी मूलाधार चक्र से मस्तिष्क

तक जाती है। पर उसकी अनुभूति पिछले स्वाधिष्ठान चक्र से पिछले आज्ञा चक्र तक ज्यादा होती है। यही ऋषिपत्नियों के द्वारा अपने अंदर प्रविष्ट वीर्य और गर्भ के तेज को हिमालय को देना है। नीचे का, पुट्ठे वाला क्षेत्र पर्वत का निचला आधार है, और मस्तिष्क उस पर्वत का ऊपरी आधार या शिखर है, जबकि रीढ़ की हड्डी उन दोनों मूलभूत आधारों को जोड़ने वाली एक पतली, लम्बी और ऊंची पहाड़ी है। हड्डी में यह सामर्थ्य नहीँ है कि वह अपने अंदर स्थित वीर्यतेज को प्रवाहित कर सके, क्योंकि वह स्थूल व कठोर होती है। इससे वीर्य का तेज उसके विभिन्न व विशेष बिंदुओं पर एकस्थान पर ही दबाव डालने लगा। ये सभी बिंदु फ्रंट चैनल के चक्रों की सीध में ठीक पीछे रीढ़ की हड्डी में होते हैं। इनमें से दो मुख्य बिंदु हैं, पीछे का स्वाधिष्ठान चक्र और पीछे का आज्ञा चक्र। वीर्यतेज के ज्यादा होने पर अनाहत चक्र के क्षेत्र में भी बनता है। और ज्यादा होने पर नाभि चक्र के क्षेत्र में भी बन जाता है, इस तरह से। जब तांत्रिक शक्ति से सम्पन्न, नियमित, व निरंतर योगाभ्यास से वीर्य का तेज बहुत अधिक बढ़ जाता है, तब वह रीढ़ की हड्डी से सुषुम्ना नाड़ी में चला जाता है। इसीको इस तरह से लिखा गया है कि जब हिमालय के लिए वीर्यतेज असहनीय हो गया तो उसने उसे गंगा नदी में उड़ेल दिया। गंगा नदी यहाँ सुषुम्ना नाड़ी को कहा गया है। सुषुम्ना से होता हुआ वह प्रकाशमान तेज एक विद्‌युत रेखा के रूप में सहस्रार में प्रविष्ट हो जाता है। वहाँ उस तेज की शक्ति से कुंडलिनी जागृत हो जाती है। इसको रूपक के तौर पर ऐसा लिखा गया है कि गंगा के प्रवाह में बहता हुआ वह वीर्य गंगा के लिए असह्य हो गया। इसलिए गंगा ने उसे किनारे पर उगी हुई सरकंडे की घास में उड़ेल दिया। वहाँ उससे एक सरकंडे के ऊपर एक बालक का जन्म हुआ। सरकंडे की घास वाला किनारा यहाँ मस्तिष्क के लिए कहा गया है। मस्तिष्क को ढकने वाली खोपड़ी पर सरकंडे की तरह पैने और चुभने वाले बाल होते हैं। दोनों को ही पशु नहीं खाते। सरकंडे की घास में जड़ से निकलने वाली कुछ ऐसी शाखाएं भी होती हैं, जिन पर फूल लगते हैं। वे बांस की तरह लकड़ीनुमा और गाँठेदार होती हैं। उनसे लकड़ी का छोटामोटा और सजावटी फर्नीचर भी बनाया जाता है। उन पर पत्तों की घनी छाल लगी होती है, जिसको निकालकर और कूट कर एक रेशा निकाला जाता है। उससे मूँज की रस्सी बनाई जाती है। इसीलिए मूँज एक आध्यात्मिकता और सात्विकता का प्रतीक भी है। दरअसल सरकंडा एक बहुपयोगी पौधा है, जो नदी या तालाब के किनारों पर उगता है। सरकंडे की उस पुष्पगुच्छ वाली शाखा में इसी तरह बीच-बीच में गाँठे होती हैं, जिस तरह रीढ़ की हड्डी में चक्र। सम्भवतः इसीलिए उसपर बालक का जन्म बताया गया है। कुंडलिनी चित्र का जागरण ही बालक का जन्म है। पर यह भौतिक बालक नहीं, मानसिक बालक होता है। अगर जागरण न भी हो, तो भी कुंडलिनी चित्र का मन में दृढ़ समाधि के तौर पर स्थायी और स्पष्ट रूप से बने रहना भी कुंडलिनी-बालक का जन्म ही कहा जाएगा। वीर्य इसे बाहर निकलकर पैदा नहीं करता, बल्कि अंदर या उल्टी दिशा में जाकर पैदा करता है। ब्रह्मा भी एक मानसिक चित्र ही है, इसीलिए उसे अयोनिज कहा जाता है। मतलब वह जो योनि से पैदा न हुआ हो। कोई शंका कर सकता है कि केवल एक बार के यौनयोग से कैसे

कुंडलिनी जागरण या दृढ़ समाधि की प्राप्ति हो सकती है। पर यह हो भी सकता है। प्रसिद्ध व महान तंत्र दार्शनिक ओशो कहते थे कि यदि एक बार भी ठीक ढंग से संभोग के साथ समाधि का अनुभव हो जाए, तो भी आध्यात्मिक सफलता मिल जाती है। यह अलग बात है कि वे ऐसे तांत्रिक रहस्यों को खुले तौर पर, प्रत्यक्ष तौर पर और मौखिक भाषणों के रूप में आम जनमानस के बीच ले गए, जिससे गलतफहमी से उनके बहुत से दुश्मन और आलोचक भी बन गए। यह भी आशंका जताई जाती है कि सम्भवतः उनकी मृत्यु के पीछे किसी साजिश का हाथ हो। इसलिए तंत्र को गुप्त कला या गुह्य विद्या कहा जाता है। यद्यपि इसे आज की खुली दुनिया में छिपाना ठीक नहीं है, फिर भी कुछ गोपनीयता की आवश्यकता है, और अपात्र, अनिच्छुक, अविश्वसनीय, विश्वासहीन और असमर्पित व्यक्ति के सामने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रकट नहीं किया जाना चाहिए। लेखक की प्रत्यक्ष व्यक्तिगत पहचान दिखाए बिना और किसी संभावित लक्ष्य को तय किए बिना, और स्वार्थ व पक्षपात के बिना, सभी के लिए ऑनलाइन में इसे प्रदर्शित करना आज के मुक्तसमाज में गोपनीयता का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है। सम्भवतः इसी गोपनीयता को बनाए रखने के लिए ही पुराणों के लेखक ने कभी भी अपना नाम और पता सार्वजनिक नहीं किया। हर जगह लेखक को दर्शाने के लिए 'व्यास' शब्द लिखा गया है, जो सभी आध्यात्मिक कथावाचकों के लिए दिया गया एक आम सामान्य शब्द है। कुंडलिनी जागरण से शरीर का आधा बायाँ भाग और आधा दायाँ भाग, दोनों बराबर मात्रा में पुष्ट और प्रसन्न हो गए। कुंडलिनी चित्र यहाँ बाएँ भाग या स्त्री या पार्वती की खुशी का प्रतीक है, और भटकती हुई आत्मा की शांति यहाँ दाएँ भाग या पुरुष या शिव की खुशी का प्रतीक है। मतलब कि एकदूसरे से बिछुड़े हुए शिव और पार्वती अपने पुत्र के रूप में एक दूसरे में एक हो गए। जीव कभी पूर्ण और एक था। पर माया की शक्ति से वह दो टुकड़ों में बंट कर अपूर्ण हो गया। तभी से वे दोनों टुकड़े एक होने का प्रयास कर रहे हैं। जीव के द्वारा फिर से पूर्ण होने के लिए की गई आपाधापी से ही जीव और जगत का विकास होता है। तांत्रिक जोड़े के पुरुष और स्त्री भाग या पार्टनर, दोनों भी वीर्यतेज के बोझ, दबाव, व दाह से मुक्त होकर सुप्रसन्न हो गए। पूरे मन में हर्षोल्लास व आनन्द छा गया। शरीर का रोम-रोम खिल गया। इसी को कथा में ऐसे दर्शाया गया है कि उस बालक के जन्म लेने पर शिव व पार्वती, और सभी देवता दोनों बहुत प्रसन्न हुए, और चारों ओर हर्षोल्लास छा गया। कुंडलिनी जागरण के बाद कुंडलिनी चित्र मन में अधिक से अधिक स्पष्ट और स्थायी होता गया। फिर वह स्थायी समाधि के रूप में मन में लगातार बना रहने लगा। उस स्थायी समाधि से जगत के प्रति आसक्ति क्षीण होती गई, और अद्वैत भावना बढ़ती रही। फिर जीवात्मा को अपनी जीवनमुक्ति का आभास हुआ। यही उसके अज्ञान का अंत था। इसको मिथक कथा में इस तरह दिखाया गया है कि वह बालक बड़ा होकर कार्तिकेय नाम से विख्यात हुआ, जिसने राक्षस तारकासुर का वध किया। साथ में, इस कथा के बारे में यह भी लिखा गया है कि जो कोई इस कथा को श्रद्धापूर्वक पढ़ेगा या सुनेगा, वह जगत के सारे सुख प्राप्त करते हुए आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करेगा। इसका मतलब है कि यह

मिथकीय व रूपकात्मक कथा तांत्रिक कुंडलिनी योग का ही वर्णन कर रही है। यदि यह साधारण सहवास, पुत्रजन्म या राक्षसवधकी कथा होती, तो आध्यात्मिक मुक्ति की बात तो दूर की, साधारण लौकिक सुखों की प्राप्ति में भी संदेह होता।

अध्याय-25

कुंडलिनी साहित्य के रूप में संस्कृत साहित्य एक आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, अत्याधुनिक, और सदाबहार साहित्य है

संस्कृत साहित्य कुंडलिनी आधारित साहित्य होने के कारण ही एक अनुपम साहित्य है

दोस्तो, मैं संस्कृत साहित्य का जन्मजात शौकीन हूँ। संस्कृत साहित्य बहुत मनोरम, सजीव, जीवंत व चेतना से भरा हुआ है। एक सज्जन संस्कृत विद्वान ने बहुत वर्षों पहले 'संस्कृत साहित्य परिचायिका' नाम से एक सुंदर, संक्षिप्त व ज्ञान से भरपूर पुस्तक लिखी थी। उस समय ऑनलाइन पुस्तकों का युग नहीं आया था। इससे वह आजतक गुमनामी में पड़ी रही। मेरी इच्छा उसको ऑनलाइन करने की हुई। कम्प्यूटर पर टाइपिंग में समस्या आई, क्योंकि अधिकांश शब्द संस्कृत के थे, और टाइप करने में कठिन थे। भला हो एंड्रॉयड में गूगल के इंटेलिजेंट कीबोर्ड का। उससे अधिकांश टाइपिंग खुद ही होने लगी। मैं तो शुरु के कुछ ही वर्ण टाइप करता हूँ, बाकी वह खुद प्रेडिक्ट कर लेता है। आधे से ज्यादा टाइप हो गई। अधिकांश पब्लिशिंग प्लेटफोरमों पर तो मैंने इसे ऑनलाइन भी कर दिया है। शेष स्थानों पर भी मैं इसे जल्दी ही ऑनलाइन करूँगा। निःशुल्क पीडीएफ बुक के रूप में यह इस पुस्तक के शॉप पेज पर दिए गए निःशुल्क पुस्तकों के लिंक पर भी उपलब्ध है। यह सभी साहित्यप्रेमियों के पढ़ने लायक है। आजकल किसी भी विषय का आधारभूत परिचय ही काफी है। बोलने का तात्पर्य है कि विषय की हिंट ही काफी है। उसके बारे में बाकि विस्तार तो गूगल पर व अन्य साधनों से मिल जाता है। केवल साहित्य से जुड़े हुए प्रारम्भिक संस्कार को बनाने की आवश्यकता होती है, जिसे यह पुस्तक बखूबी बना देती है। संस्कृत साहित्य का भरपूर आनंद लेने के लिए इस पुस्तक का कोई सानी नहीं है। यह छोटी जरूर है, पर गागर में सागर की तरह है। इसी पुस्तक से निर्देशित होकर मैं कालीदासकृत कुमारसम्भव काव्य की खोज गूगल पर करने लगा। मुझे पता चला कि इसमें शिव-पार्वती के प्रेम, उससे भगवान कार्तिकेय के जन्मादि की कथा का वर्णन है। कुमार मतलब लड़का या बच्चा, सम्भव मतलब उत्पत्ति। कहते हैं कि शिव और पार्वती के संभोग का वर्णन करने के पाप के कारण कवि कालीदास को कुष्ठरोग हो गया था। इसलिए वहां पर उन्होंने

उसे अधूरा छोड़ दिया। बाद में उसे पूरा किया गया। कुछ लोग कहते हैं कि आम जनमानस ने शिव-पार्वती के प्रति भक्तिभावना के कारण उनके संभोग-वर्णन को स्वीकार नहीं किया। इसलिए उन्हें उसे रोकना पड़ा। पहली संभावना यद्यपि विरली पर तथ्यात्मक भी लगती है, क्योंकि वह आम संभोग नहीं है। उसका लौकिक तरीके से वर्णन नहीं किया जा सकता। वह एक तंत्रसाधना के रूप में है, और रूपकात्मक है, जैसा कि पिछले अध्याय में दिखाया गया है। लौकिक हास्यविनोद व मनोरंजन का उसमें कोई स्थान नहीं है। इस संभावना के पीछे मनोविज्ञान तथ्य भी है। क्योंकि देवताओं के साथ बहुत से लोगों की मान्यताएं और आस्थाएँ जुड़ी होती हैं, इसलिए उनके अपमान से उनकी अभिव्यक्त बददुआ या नाराजगी की दुर्भावना तो लग ही सकती है, पर अनभिव्यक्त अर्थात अवचेतनात्मक रूप में भी लग सकती है। इस तरह से अवलोकन करने पर पता चलता है कि सारा संस्कृत साहित्य सनातन वेदों और पुराणों की कथाओं और आख्यानों के आधार पर ही बना है। अधिकाँश साहित्यप्रेमी और लेखक वेदों या पुराणों से किसी मनपसंद विषय को उठा लेते हैं, और उसे विस्तार देते हुए एक नए साहित्य की रचना कर लेते हैं। क्योंकि वेदों और पुराणों के सभी विषय कुण्डलिनी पर आधारित होने के कारण वैज्ञानिक हैं, इसलिए संस्कृत साहित्य भी कुण्डलिनीपरक और वैज्ञानिक ही सिद्ध होता है।

विभिन्न धर्मों की मिथकीय आध्यात्मिक कथाओं के रहस्योद्‌घाटन को सार्वजनिक करना आज के आधुनिक, वैज्ञानिक, व भौतिकवादी युग की मूलभूत मांग प्रतीत होती है

मुझे यह भी लगता है कि आध्यात्मिक रहस्यों को उजागर करने से समाज को बहुत लाभ भी प्राप्त हो सकता है। मैं यह तो नहीं कहता कि हर जगह रहस्य को उजागर किया जाए, क्योंकि ऐसा करने से रहस्यात्मक कथाओं का आनन्द समाप्त ही हो जाएगा। पर कम से कम एक स्थान पर तो उन रहस्यों को उजागर करने वाली रचना उपलब्ध होनी चाहिए। कहते हैं कि आध्यात्मिक सिद्धांतों व तकनीकों को इसलिए रहस्यमयी बनाया गया था, ताकि आदमी आध्यात्मिक परिपक्वता से पहले उनको आजमाकर पथभ्रष्ट न होता। पर कई बार ऐसा भी होता है कि अगर आध्यात्मिक परिपक्वता से पहले ही आदमी को रहस्य की सच्चाई पता चल जाए, तब भी वह उससे तभी लाभ उठा पाएगा जब उसमें परिपक्वता आएगी। रहस्य को समझ कर उसे यह लाभ अवश्य मिलेगा कि वह उससे प्रेरित होकर जल्दी से जल्दी आध्यात्मिक प्रगति प्राप्त करने की कोशिश करके आध्यात्मिक परिपक्वता को हासिल करेगा, ताकि उस रहस्य से लाभ उठा सके। साथ में, तब तक वह योग साधना के रहस्यों व सिद्धांतों से भलीभांति परिचित हुआ रहेगा। उसे जरूरत पड़ने पर वे नए और अटपटे नहीं लगेंगे। कहते भी हैं कि अगर कोई आदमी अपने पास लम्बे समय तक चाय की दुकान का

सामान संभाल कर रखे तो वह एकदिन चाय की दुकान जरूर खोलेगा, और कामयाब उद्योगपति बनेगा। पहले की अपेक्षा आज के युग में आध्यात्मिक रहस्योद्‌घाटन को सार्वजनिक करना इसलिए भी जरूरी लगता है क्योंकि आजकल ईमानदार, व निपुण आध्यात्मिक गुरु विरले ही मिलते हैं, और जो होते हैं वे भी अधिकांशतः आम जनमानस की पहुंच से दूर होते हैं। पहले ऐसा नहीं होता था। उस समय अध्यात्म का बोलबाला होता था। आजकल तो भौतिकता का बोलबाला ज्यादा है। अगर आजकल कोई आध्यात्मिक रूप से परिपक्व हो जाए, और उसे उसकी जरूरत के अनुसार सही मार्गदर्शन न मिले, तो उसे तो बड़ी आध्यात्मिक हानि उठानी पड़ सकती है। एक अन्य लाभ यह भी मिलेगा कि जब सभी धर्मों का रहस्योद्‌घाटन हो जाएगा, तब सबको कुंडलिनी तत्त्व अर्थात अद्वैत तत्त्व ही अध्यात्म के मूल तत्त्व के रूप में नजर आएगा। इससे सभी धर्मों के बीच में आपसी कटुता समाप्त हो जाएगी और असल रूप में **सर्वधर्मसमभाव** स्थापित हो पाएगा। इससे दुनिया के अधिकांश झगड़े समाप्त हो जाएंगे।

इड़ा नाड़ी को ही ऋषिपत्नी अरुन्धती कहा गया है

अब पिछले अध्याय में वर्णित रूपकात्मक कथा को आगे बढ़ाते हैं। उसमें जिस अरुंधति नामक ऋषिपत्नी का वर्णन है, वह दरअसल इड़ा नाड़ी है। इड़ा नाड़ी अर्धनारीश्वर के स्त्री भाग का प्रतिनिधित्व करती है। कई बार हठयोग का अभ्यास करते समय प्राण इड़ा नाड़ी में ज्यादा प्रवाहित होने लगता है। इसका मतलब है कि वह प्राण को सुषुम्ना में जाने से रोकती है। सुषुम्ना से होता हुआ ही प्राण चक्रों पर अच्छी तरह स्थापित होता है। प्राण के साथ वीर्यतेज भी होता है। इसको यह कह कर बताया गया है कि अरुंधति ने ऋषिपत्नियों को अग्नि देव के निकट जाने से रोका। पर योगी ने आज्ञाचक्र के ध्यान से प्राण के साथ वीर्यतेज को सुषुम्ना से प्रवाहित करते हुए चक्रों पर उड़ेल दिया। इसको ऐसे दिखाया गया है कि ऋषिपत्नियों ने अरुंधती की बात नहीं मानी, पर भगवान शिव के इशारे को समझा। आज्ञाचक्र शिव का प्रतीक भी है, क्योंकि वहीँ पर उनका तीसरा नेत्र है।

कुंडलिनी जागरण और कुंडलिनी योग के बीच में केवल अनुभव की मात्रा को लेकर ही भिन्नता है, अनुभव की प्रकृति को लेकर नहीं

कई जगह सहस्रार को आठवां चक्र माना जाता है। सहस्रार तक वीर्यतेज पहुंचाना अन्य चक्रों से मुश्किल होता है। जबरदस्ती ऐसा करने से सिरदर्द होने लग सकता है। इसलिए नीचे के सात चक्रों पर ही वीर्य को स्थापित किया जाता है। इसीको रूपक में ऐसा कहा

गया है कि आठ में से सात ऋषिपत्नियाँ ही अग्निदेव के पास जाकर आग सेंकने लगीं। आई तो आठवी भी, पर उसने आग की तपिश नहीं ली। मतलब कि थोड़ा सा वीर्यतेज तो सहस्रार तक भी जाता है, पर वह नगण्यतुल्य ही होता है। सहस्रार तक वीर्यतेज तो मुख्यतः सुषुम्ना के ज्यादा क्रियाशील होने से उससे होकर ही जाता है। इसीको रूपक में यह कहा गया है कि गंगानदी ने शिव के वीर्य को सरकंडे की घास में उड़ेल दिया। यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि प्राण या वीर्यतेज या ऊर्जा या शक्ति के साथ कुंडलिनी चित्र तो रहता ही है। ये सभी नाम आपस में पर्यायवाची की तरह हैं, अर्थात सभी शक्तिपर्याय हैं। वीर्यतेज से सर्वप्रथम व सबसे ज्यादा जलन आगे के स्वाधिष्ठान चक्र पर महसूस होती है। यह उसी जननांग से जुड़ा है, जिसे पिछले लेख में कबूतर कहा गया है। उसके साथ जब चक्रों पर बारी-बारी से कुंडलिनी का भी ध्यान किया जाता है, तब वह तेज चक्रों पर आने लगता है। फिर वह चक्रों से रीढ़ की हड्डी में जाता हुआ महसूस होता है। सम्भवतः यह आगे के चक्र से पीछे के चक्र को रिस जाता है। इसीलिए आगे-पीछे के दोनों चक्र आपस में एक पतले एनर्जी चैनल से जुड़े हुए बताए जाते हैं। इसीको मिथक कथा में यह कह कर बताया गया है कि ऋषिपत्नियों ने वह वीर्य तेज हिमालय को दिया, क्योंकि पीछे वाले चक्र रीढ़ की हड्डी में ही होते हैं। पुराण बहुत बारीकी से लिखे गए होते हैं। उनके हरेक शब्द का बहुत बड़ा और गहरा अर्थ होता है। इस तेज-स्थानांतरण का आभास पीठ के मध्य भाग में नीचे से ऊपर तक चलने वाली सिकुड़न के साथ आनन्द की व नीचे के बोझ के कम होने की अनुभूति से होता है। फिर थोड़ी देर बाद उस सिकुड़न की सहायता से वह तेज सुषुम्ना में प्रविष्ट होता हुआ महसूस होता है। यह अनुभूति बहुत हल्की होती है, और खारिश की या किसी संवेदना की या यौन उन्माद या ऑर्गेज्म की एक आनन्दमयी लाइन प्रतीत होती है। यह ऐसा लगता है कि पीठ के मेरुदंड की सीध में एक मांसपेशी की सिकुड़न की रेखा एकसाथ नीचे से ऊपर तक बनती है और ऑर्गेज्म या यौन-उन्माद के आनन्द के साथ कुछ देर तक लगातार बनी रहती है। ऐसा लगता है कि वह नाड़ी सहस्रार में कुछ उड़ेल रही है। इसके साथ ही कुंडलिनी चित्र सहस्रार में महसूस होता है। अभ्यास के साथ तो हर प्रकार की अनुभूति बढ़ती रहती है। इसीको रूपक में ऐसे कहा गया है कि अग्निदेव ने वह तेज सात ऋषिपत्नियों को दिया, ऋषिपत्नियों ने हिमालय को दिया, हिमालय ने गंगानदी को, और गंगानदी ने सरकंडे की घास को दिया। इसका सीधा सा मतलब है कि कुंडलिनी क्रमवार ही सहस्रार तक चढ़ती है, सीधी नहीं। योग में अक्सर ऐसा ही बोला जाता है। हालाँकि तांत्रिक योग से सीधी भी सहस्रार में जा सकती है। किसीकी कुंडलिनी मूलाधार में बताई जाती है, किसी की स्वाधिष्ठान चक्र तक ऊपर चढ़ी हुई, किसीकी मणिपुर चक्र तक, किसीकी अनाहत चक्र तक, किसीकी विशुद्धि तक, किसी की आज्ञाचक्र तक और किसीकी सहस्रार तक चढ़ी हुई बताई जाती है। हालांकि इन सातों चक्रों में तो कुण्डलिनी प्रतिदिन के योगाभ्यास में चढ़ती और उतरती रहती है, पर कुंडलिनी को लम्बे समय तक एक चक्र पर स्थित रखने के लिए काफी अभ्यास की जरूरत होती है। आपकी कुंडलिनी प्रतिदिन सहस्रार में भी जाएगी, पर यह योगाभ्यास

के दौरान सहस्रार पर ध्यान लगाने के समय जितने समय तक ही सहस्रार में रहेगी। जब कुण्डलिनी लगातार, पूरे दिनभर, कई दिनों तक और बिना किसी योगाभ्यास के भी सहस्रार में रहने लगेगी, तभी वह सहस्रार तक चढ़ी हुई मानी जाएगी। इसे ही प्राणोत्थान भी कहते हैं। इसमें आदमी दैवीय गुणों से भरा होता है। पशुओं को आदमी की इस अवस्था का भान हो जाता है। मैं जब इस अवस्था के करीब होता हूँ, तो पशु मुझे विचित्र प्रकार से सूंघने और अन्य प्रतिक्रियाएं दिखाने लगते हैं। इसमें ही कुंडलिनी जागरण की सबसे अधिक संभावना होती है। इसके लिए सेक्सुअल योग से बड़ी मदद मिलती है। ये जरूरी नहीं कि ये सभी अनुभव तभी हों, जब कुंडलिनी जागरण हो। हरेक कुंडलिनी योगी को ये अनुभव हमेशा होते रहते हैं। कई इन्हें समझ नहीं पाते, कई ठीक ढंग से महसूस नहीं कर पाते, और कई दूसरे छोटे-मोटे अनुभवों से इन्हें अलग नहीं कर पाते। सम्भवतः ऐसा तब होता है, जब कुंडलिनी योग का अभ्यास हमेशा या लंबे समय तक नित्य प्रतिदिन नहीं किया जाता। अभ्यास छोड़ने पर कुण्डलिनी से जुड़ीं अनुभूतियां शुरु के सामान्य स्तर पर पहुंच जाती हैं। मैं एक उदाहरण देता हूँ। नहाते समय चाहे शरीर के किसी भी हिस्से में पानी के स्पर्श की अनुभूति ध्यान के साथ की जाए, वह अनुभूति एक सिकुड़न के साथ पीठ से होते हुए सहस्रार तक जाती हुई महसूस होती है। इससे जाहिर होता है कि मेरुदण्ड में ही सुषुम्ना नाड़ी है, क्योंकि वही शरीर की सभी संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुंचाती है। कुंडलिनी जागरण और कुंडलिनी योग के बीच में केवल अनुभव की मात्रा को लेकर ही भिन्नता है, अनुभव की प्रकृति को लेकर नहीं। कुंडलिनी जागरण में कुंडलिनी अनुभव उच्चतम स्तर तक पहुंच जाता है, व इससे सम्बंधित अन्य अनुभव भी शीर्षतम स्तर तक पहुंच सकते हैं। कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी फिर से एक साधारण कुंडलिनी योगी बन जाता है, ज्यादा कुछ नहीं।

मेडिटेशन एट टिप अर्थात शिखर पर ध्यान

यह एक वज्रोली क्रिया का छोटा रूप ही है। इसमें वीर्य को बाहर नहीं गिराया जाता पर पेनिस टिप या वज्रशिखा पर उसे ले जाकर वापिस ऊपर चढ़ाया जाता है। यह ऐसा ही है कि वीर्य स्खलन के बिना ही उसकी चरम अनुभूति के करीब तक संवेदना को बढ़ाया जाता है, और फिर संभोग को रोक दिया जाता है। यह ऐसा ही है कि यदि उस अंतिम सीमाबिन्दु के बाद थोड़ा सा संभोग भी किया जाए, तो वीर्य का वेग अनियंत्रित होने से वीर्यस्खलन हो जाता है। यह तकनीक ही आजकल के तांत्रिकों विशेषकर बुद्धिस्ट तांत्रिकों में लोकप्रिय है। यह बहुत प्रभावशाली भी है। यह तकनीक पिछले लेख में वर्णित अग्निदेव के कबूतर बनने की शिवपुराण कथा से ही आई है। यह ज्यादा सुरक्षित भी है, क्योंकि इसमें पूर्ण वज्रोली की तरह ज्यादा दक्षता की जरूरत नहीं, और न ही संक्रमण आदि का भय ही रहता है। दरअसल शिवपुराण में रूपकों के रूप में लिखित रहस्यात्मक कथाएं ही तंत्र का मूल आधार हैं।

शरीर व उसके अंगों का देवता के रूप में सम्मान करना चाहिए

तंत्र शास्त्रों में आता है कि योनि में सभी देवताओं का निवास है। इसीलिए कामाख्या मंदिर में योनि की पूजा की जाती है। इससे सभी देवताओं की पूजा स्वयं ही हो जाती है। दरअसल ऐसा मूलाधार की प्रचण्ड ऊर्जा के कारण ही होता है। वास्तव में यही मूलाधार को ऊर्जा देती है। उससे वहाँ कुंडलिनी चित्र का अनुभव होता है। क्योंकि मन में सभी देवताओं का समावेश है, और कुंडलिनी मन का सारभूत तत्त्व या प्रतिनिधि है, इसीलिए ऐसा कहा जाता है। इसलिए पिछले लेख में वर्णित रूपक के कुछ यौन अंशों को अन्यथा नहीं लेना चाहिए। शरीरविज्ञान दर्शन के अनुसार शरीर के सभी अंग भगवदस्वरूप हैं। पुराणों के अनुसार भी शरीर के सभी अंग देवस्वरूप हैं। शरीर में सभी 33 करोड़ देवताओं का वास है। इसका मतलब तो यह हुआ कि शरीर का हरेक सेल या कोशिका देवस्वरूप ही है। इससे यह अर्थ भी निकलता है कि शरीर की सेवा और देखभाल करना सभी देवताओं की पूजा करने के समान ही है। पुस्तक 'शरीरविज्ञान दर्शन' में यह सभी कुछ तथ्यों के साथ सिद्ध किया गया है। यह शरीर सभी पुराणों का और शरीरविज्ञान दर्शन का सार है। पुराण पुराने समय में लिखे गए थे, पर शरीरविज्ञान दर्शन आधुनिक है। इसलिए शरीर के किसी भी अंग का अपमान नहीं करना चाहिए। शारीरिक अंगों का अपमान करने से देवताओं का अपमान होता है। ऐसा करने पर देवता तारकासुर रूपी अज्ञान को नष्ट करने में मदद नहीं करते, जिससे आदमी की मुक्ति में अकारण विलंब हो जाता है। कई लोग धर्म के नाम पर इसलिए नाराज हो जाते हैं कि किसी देवता की तुलना शरीर के अंग से क्यों कर दी। इसका मतलब तो भगवदस्वरूप शरीर और उसके अंगों को तुच्छ व हीन समझना हुआ। एक तरफ वे देवता को खुश कर रहे होते हैं, पर दूसरी तरफ भगवान को नाराज कर रहे होते हैं।

अध्याय-26
कुंडलिनी पुरुष के रूप में भगवान कार्तिकेय का लीला विलास

मित्रो, मुझे भगवान कार्तिकेय की कथा काफी रोचक लग रही है। इसमें बहुत से कुंडलिनी रहस्य भी छिपे हुए लगते हैं। इसलिए हम इसे पूरा खंगालेंगे। शिवपुराण के अनुसार ही, फिर सरकंडे पर जन्मे उस बालक को ऋषि विश्वामित्र ने देखा। बालक ने उन्हें अपना वेदोक्त संस्कार कराने के लिए कहा। जब विश्वामित्र ने कहा कि वे क्षत्रिय हैं, ब्राह्मण नहीं, तब कार्तिकेय ने उनसे कहा कि वे उसके वरदान से ब्राह्मण हो गए। फिर उन्होंने उसका संस्कार किया। तभी वहाँ छः कृत्तिकाएँ आईं। जब वे उस बालक को लेकर लड़ने लगीं, तो वह छः मुंह बनाकर छहों का एकसाथ स्तनपान करने लगा। अग्निदेव ने भी उसे अपना पुत्र कहकर उसे शक्तियां दीं। उन शक्तियों को लेकर वह करौंच पर्वत पर चढ़ा और उसके शिखर को तोड़ दिया। तब इंद्र ने नाराज होकर उस पर वज्र से कई प्रहार किए, जिनसे शाख, वैशाख और नैगम तीन पुरुष पैदा हुए और वे चारों इंद्र को मारने के लिए दौड़ पड़े। कृत्तिकाओं ने अपना दूध पिलाकर कार्तिकेय को पाला पोसा, और जगत की सभी सुख सुविधाएं उसे दीं। उसे उन्होंने दुनिया की नजरों से छिपाकर रखा कि कहीं उस प्यारे नन्हें बालक को कोई उनसे छीन न लेता।
पार्वती ने शंकित होकर शिव से पूछा कि उनका अमोघ वीर्य कहाँ गया। उसे किसने चुराया। वह निष्फल नहीं हो सकता। भगवान शिव जब पार्वती के साथ व अन्य देवताओं के साथ अपनी सभा में बैठे थे, तो उन्होंने सभी देवताओं से इस बारे पूछा। उन्होंने कहा कि जिसने भी उनके अमोघ वीर्य को चुराया है, वह दण्ड का भागी होगा, क्योंकि जो राजा दण्डनीय को दण्ड नहीं देता, वह लोकनिंदित होता है। सभी देवताओं ने बारी-बारी से सफाई दी, और वीर्यचोर को भिन्न-भिन्न श्राप दिए। तभी अग्निदेव ने कहा कि उन्होंने वह वीर्य शिव की आज्ञा से सप्तऋषियों की पत्नियों को दिया। उन्होंने कहा कि उन्होंने वह हिमालय को दे दिया। हिमालय ने बताया कि वह उसे सहन नहीं कर पाया और उसे गंगा को दे दिया। गंगा ने कहा कि उस असह्य वीर्य को उसने सरकंडे की घास में उड़ेल दिया। वायुदेव बोले कि उसी समय वह वीर्य एक बालक बन गया। सूर्य बोले कि रोते हुए उस बालक को देख न सकने के कारण वह अस्ताचल को चला गया। चन्द्रमा बोला कि कृत्तिकाएँ उसे अपने घर ले गईं। जल बोला कि उस बालक को कृत्तिकाओं ने स्तनपान कराके बड़ा किया है। संध्या बोली कि कृत्तिकाओं ने प्रेम से उसका पालन पोषण करके कार्तिक नाम रखा है। रात्रि बोली कि वे कृत्तिकाएँ उसे अपनी आँखों से कभी दूर नहीं होने देतीं। दिन बोला कि वे कृत्तिकाएँ उसे श्रेष्ठ आभूषण पहनाती हैं, और स्वादिष्ट भोजन कराती हैं। इससे शिवपार्वती, दोनों बड़े खुश हुए, और समस्त जनता भी। तब शिव के गण दिव्य विमान लेकर कृतिकाओं के पास गए।

जब कृतिकाओं ने उसे देने से मना किया तो गणों ने उन्हें शिवपार्वती का भय दिखाया। कृत्तिकाएँ डर गईं तो कार्तिकेय ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा कि उसके होते हुए उन्हें डरने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने रोते हुए कार्तिकेय को हृदय से लगाकर उसीसे पूछा कि वह कैसे उन अपनी दूध पिलाने वाली माताओं से अलग हो पाएगा, जो एकपल के लिए भी उसे अपनी नजरों से ओझल नहीं होने देतीं। कार्तिकेय ने कहा कि वह उनसे मिलने आया करेगा। दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर कार्तिकेय शिवपार्वती के पास कैलाश पर आ गया। हर्षोल्लास का पर्व मनाया गया। शिवपार्वती ने उसे गले से लगा लिया। कार्तिकेय के दिव्य तेज से प्रभावित होकर बहुत से लोग उसके भक्त बन कर उसकी स्तुति करने लगे। वे उसे शिव की प्राप्ति कराने वाला और जन्ममरण से मुक्ति देने वाला कहते। वे उसे अपना सबसे प्रिय इष्टदेव कहते। एक आदमी का यज्ञ के लिए बंधा बकरा कहीं भाग गया था। सबने उसे ब्रह्मांड में हर जगह ढूंढा, पर वह नहीं मिला। फिर वह आदमी भगवान कार्तिकेय के पास आकर उनसे प्रार्थना करने लगा कि वे ही उस बकरे को ला सकते हैं, नहीं तो उसका अजमेध यज्ञ नष्ट हो जाएगा। कार्तिकेय ने वीरबाहु नामक गण को पैदा करके उसे वह काम सौंपा। वह उसे ब्रह्मांड के किसी कोने से बांध कर ले आया और कार्तिकेय के समक्ष उस आदमी को सौंप दिया। कार्तिकेय ने उसपर पानी छिड़कते हुए उससे कहा कि वह बकरा बलिवध के योग्य नहीं, और उसे उस आदमी को दे दिया। वह कार्तिकेय को धन्यवाद देकर चला गया।

उपर्युक्त कुंडलिनी रूपक का रहस्योद्‌घाटन

विश्वामित्र ने कुंडलिनी का अनुभव किया था। वे क्षत्रिय थे पर कुंडलिनी के अनुभव से उनमें ब्रह्मतेज आ गया था। उसी कुंडलिनी पुरुष अर्थात कार्तिकेय के अनुभव से ही वे ब्रह्मऋषि बने। कुंडलिनी से ब्रह्मऋषित्व है, जाति या धर्म से ही नहीं। कार्तिकेय का संस्कार करने का मतलब है कि उन्होंने कुंडलिनी पुरुष को अपनी योगसाधना से प्रतिष्ठित किया। छः कृत्तिकाएँ छः चक्र हैं। कुंडलिनी पुरुष अर्थात कुंडलिनी चित्र कभी किसी एक चक्र पर तो कभी किसी अन्य चक्र पर जाता हुआ सभी चक्रों पर भ्रमण करता है। इसीको उनका आपस में लड़ना कहा गया है। फिर योगी ने तीव्र योगसाधना से उसे सभी चक्रों पर इतनी तेजी से घुमाया कि वह सारे चक्रों पर एकसाथ स्थित दिखाई दिया। यह ऐसे ही है कि यदि कोई जलती मशाल को तेजी से चारों ओर घुमाए, तो वह पूरे घेरे में एकसाथ जलती हुई दिखती है। इसीको कार्तिकेय का छः मुख बनाना और एकसाथ छहों कृत्तिकाओं का दूध पीना कहा गया है। चक्रों पर कुंडलिनी पुरुष के ध्यान से उसे बल मिलता है। इसे ही कार्तिकेय का दूध पीना कहा गया है। रोमांस से सम्बंधित विषयों को 'हॉट' भी कहा जाता है। इसलिए उन विषयों पर अग्निदेव का आधिपत्य रहता है। क्योंकि कुंडलिनी पुरुष की उत्पत्ति इन्हीं विषयों से हुई, इसीलिए वह अग्निदेव का पुत्र हुआ। उत्पत्ति होने के बाद भी कुंडलिनी पुरुष को तांत्रिक योग से बल मिलता रहा, जिसमें प्रणय प्रेम की मुख्य भूमिका होती है। इसीको अग्निदेव के द्वारा

कार्तिकेय को बल देना कहा गया है। फिर कुंडलिनी उससे शक्ति लेकर आज्ञाचक्र के ऊपर आ गई। मूलाधार और आज्ञाचक्र आपस में सीधे जुड़े हुए दिखाए जाते हैं। इसको कार्तिकेय का क्रौंच पर्वत पर चढ़ना बताया गया है। क्रौं से मिलता जुलता सबसे नजदीकी शब्द क्रांति है। क्रांतिकारी चक्र आज्ञा चक्र को भी कह सकते हैं। आज्ञाचक्र एक बुद्धिप्रधान चक्र है। क्रांति बुद्धि से ही होती है, मूढ़ता से नहीं। क्रौंच पर्वत के शिखर को तोड़ता है, मतलब तेज, जजमेंटल और द्वैतपूर्ण बुद्धि को नष्ट करता है। अहंकार से भरा जीवात्मा कुंडलिनी को सहस्रार में जाने से रोकना चाहता है। उसी अहंकार को इंद्र कहा गया है। उसके द्वारा कुंडलिनी को रोकना ही उसके द्वारा कार्तिकेय पर वज्र प्रहार है। कुंडलिनी आज्ञाचक्र पर तीन नाड़ियों से आती है। ये नाड़ियां हैं, इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इससे कुंडलिनी आज्ञा चक्र से नीचे आती रहती है, और तीनों नाड़ियो से फिर से ऊपर जाती रहती है। इससे वह बहुत शक्तिशाली हो जाती है। यही वज्र प्रहार से कार्तिकेय से तीन टुकड़ों का अलग होना है। शाख इड़ा है, वैशाख पिंगला है, नैगम सुषुम्ना है। शाखा से जुड़ा नाम इसलिए दिया गया है, क्योंकि ये दोनों नाड़ियां टहनियों की तरह हैं। मूल वृक्ष सुषुम्ना है, इसलिए उसे नैगम नाम दिया गया है। सभी निगमों अर्थात धर्मशास्त्रों का निचोड़ सुषुम्ना ही है, इसीलिए नैगम नाम दिया गया। कुंडलिनी पुरुष अर्थात कार्तिकेय के साथ ये तीनों पुरुष इंद्र को मारने दौड़ पड़े, मतलब कुंडलिनी सहस्रार की ओर अग्रसर थी, जिससे इंद्र रूपी अहंकार का नाश होना था। सभी लोग कार्तिक की ऐसे स्तुति कर रहे हैं, जैसे कुंडलिनी पुरुषरूप देवता की स्तुति की जाती है। कुंडलिनी तांत्रिक क्रियाओं से भी शक्ति प्राप्त कर सकती है। ऐसा तब ज्यादा होता है जब कुंडलिनी की तीव्र अभिव्यक्ति के साथसाथ शारिरिक श्रम भी खूब किया जाता है। इसका अर्थ है कि कुंडलिनी ही तांत्रिक यज्ञों को सफल बनाती है। कार्तिकेय के द्वारा पैदा किए गए वीरबाहु नामक गण के द्वारा बलि के बकरे को ढूंढ कर यज्ञ को पूर्ण करना इसी सिद्धांत को दर्शाता है। वीरबाहु का मतलब है, ऐसा व्यक्ति, जो अपनी भुजाओं की शक्ति के कारण ही वीर है। यह श्रमशीलता का परिचायक है। अधिकांशतः कुंडलिनी शक्ति के प्रतीकों से ही संतुष्ट हो जाती है, शक्ति के लिए हिंसा की जरूरत ही नहीं पड़ती। इससे यह तातपर्य भी निकलता है कि कम से कम हिंसा और अधिक से अधिक आध्यात्मिक लाभ। तंत्र के नाम पर नाजायज हिंसा का विरोध करने के लिए ही यह दिखाया गया है कि कार्तिकेय ने बकरे पर जल का छिड़काव करके उसे छोड़ देने के लिए कहा। यह हिंसा का प्रतीकात्मक स्वरूप ही है। शेष अगले हफ्ते।

अध्याय-27
कुंडलिनी ही साँसें हैं, साँसें ही कुंडलिनी हैं

मित्रों, पिछले लेखों में जो लिखा गया है कि ठंडे मौसम में ठंडे जल से नहाने वाली ऋषिपत्नियों अर्थात छः चक्रों ने वीर्यशक्ति को ग्रहण किया, यह मुझे ईसाइयों के बैप्टिसम संस्कार की तरह ही लगता है। बैप्टिसम में भी नंगे शरीर पर ठंडा पानी गिराया जाता है। इससे चक्र खुल जाते हैं, और शक्ति का संचार सुधर जाता है। साथ में, नंगा शरीर होने से मन में एक बालक के जैसा अनासक्ति भाव औऱ अद्वैत छा जाता है। इससे भी शक्ति के संचरण और कुंडलिनी की अभिव्यक्ति में मदद मिलती है। मुझे तो प्रतिदिन नहाते हुए अपने बैप्टिसम के जैसा अनुभव होता है। इससे सिद्ध होता है कि योग और बैप्टिसम के पीछे एक ही सिद्धांत काम करता है। साथ में, छः ऋषिपत्नियों अर्थात छः चक्रों के द्वारा कबूतर बने अग्निदेव से वीर्यतेज ग्रहण करने के बारे में लिखा गया है, वे स्वाधिष्ठान चक्र को छोड़कर शेष छः चक्र भी हो सकते हैं। वह इसलिए क्योंकि खुद स्वाधिष्ठान चक्र तो उस कबूतर बने अग्निदेव का हिस्सा है। सहस्रार में कुंडलिनी से अद्वैत भाव पैदा होता है। चन्द्रमा अद्वैत का प्रतीक है, क्योंकि इसमें प्रकाश और अंधकार दोनों समान रूप में विद्यमान होते हैं। इसीलिए सूर्य को अस्त होते हुए और चन्द्रमा को उदय होते दिखाया गया है। उसी अद्वैत अवस्था के दौरान कुंडलिनी आज्ञा चक्र और फिर हृदय चक्र को उतर जाती है। हृदय चक्र को ही कई योगी असली चक्र मानते हैं। उनका अनुभव है कि आत्मज्ञान व मुक्ति की ओर रास्ता हृदय से जाता है, मस्तिष्क से नहीं। मुझे भी ऐसा कई बार लगता है। प्रेम से जो मुक्ति कही गई है, वह हृदय से ही तो है, क्योंकि प्रेम हृदय में ही बसता है। किसी भी भावनात्मक मनःस्थिति में कुंडलिनी हृदय में विराजमान होती है। विपरीत परिस्थितियों में वह भावनात्मक सदमे और उसके परिणामस्वरूप हृदयाघात से भी बचाती है। इसीलिए तो पशुओं से प्रेम करने को कहा जाता है। पशु का नियंत्रक हृदय है, मस्तिष्क नहीं। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि वे बोल नहीं सकते। इसलिए उनकी मानसिक विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम भावनाप्रधान हृदय ही है। आप भी किसी दिन मौनव्रत धारण करके देख लें। पूरे दिनभर आपकी कुंडलिनी हृदय में रहेगी। मौनव्रत की अपार महिमा है। गाय में हृदय का प्रभाव सभी पशुओं से श्रेष्ठ है, इसीलिए सनातन धर्म में गाय को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। इसीलिए आजकल कॉमिउनिकेशन के नाम से गाय के साथ रहने का चलन बढ़ा है। इससे बढ़ा हुआ रक्तचाप सामान्य हो जाता है, और तनाव से राहत मिलती है। दरअसल ऐसा कुंडलिनी शक्ति के द्वारा अनाहत चक्र पर डेरा लगा लेने से होता है। इसलिए कुंडलिनी योग हमेशा करते रहना चाहिए। बुरे वक्त में कुंडलिनी ही

सभी शारीरिक व मानसिक हानियों से बचाती है। कुंडलिनी जागरण की झलक के एकदम बाद बहुत से लोगों को नीचे उतरती हुई कुंडलिनी का ऐसा ही अनुभव होता है। इस तरह कुंडलिनी सभी चक्रों में फैल जाती है। इसीको इस तरह से लिखा गया है कि चन्द्रमा ने शिव को बताया कि कृत्तिकाएँ कार्तिकेय को अपने साथ ले गईं। जो शाख अर्थात इड़ा नाड़ी और वैशाख अर्थात पिंगला नाड़ी से कार्तिकेय अर्थात कुंडलिनी पुरुष का शक्तिमान होना कहा गया है, वह मेरे अपने अनुभव के अनुसार भी है। मुझे तो सुषुम्ना की तरह ही इड़ा और पिंगला से भी अपनी कुंडलिनी सुदृढ़ होती हुई महसूस होती है, बशर्ते कि दोनों नाड़ियाँ साथसाथ या एकदूसरे के निकट रहें। जब ये दोनों संतुलित नहीं होती, तब इनसे कुंडलिनी सहस्रार को नहीं जाती, और अन्य चक्रों पर भी कम ही रहती है, हालांकि शरीर के अंदर या बाहर कहीं भी महसूस होती है। इसलिए वह माइक्रोकोस्मिक ऑर्बिट लूप में कम ही घूम पाती है। हालाँकि उसकी शक्ति तो बढ़ती ही है, पर वह सुस्त व अव्यवस्थित सी रहती है, जिससे आदमी भी वैसा ही रहता है। सम्भवतः इसीलिए कहा जाता है कि कुंडलिनी योग साधना की तकनीक सही होनी चाहिए, बिना तकनीक के हर कहीं ध्यान नहीं लगाना चाहिए। कुंडलिनी माइक्रोकोस्मिक ऑर्बिट लूप में घूमती रहनी चाहिए। आध्यात्मिक समाज में यह बात भी फैली हुई है कि कुंडलिनी इड़ा और पिंगला में नहीं जानी चाहिए। सम्भवतः यह बात अनुभवी व एक्सपर्ट कुंडलिनी योगी के लिए कही गई है। दरअसल आम दुनियादारी में इनके बिना कुण्डलिनी का सुषुम्ना में सीधे प्रवेश करना बहुत कठिन है। इसका मतलब है कुण्डलिनी का ध्यान कहीं पर भी लग जाए, लगा लेना चाहिए। इड़ा और पिंगला में भटकने के बाद वह देरसवेर सुषुम्ना में चली ही जाती है। इसीलिए लौकिक मंदिरों व आध्यात्मिक क्रियाकलापों में कहीं भी ध्यान की पद्धति नहीं दर्शाई होती है। बस मूर्तियों आदि के माध्यम से ध्यान को ही महत्त्व दिया गया होता है। क्रौंच पर्वत की उपमा हमने आज्ञाचक्र को दी। उत्तराखंड में वास्तविक क्रौंच पर्वत भी है। वहाँ भगवान कार्तिकेय का मंदिर है। कहते हैं कि वहाँ से हिमालय के लगभग 80% शिखर साफ नजर आते हैं। वहाँ घना जंगल है, और चारों ओर प्राकृतिक सौंदर्य बिखरा हुआ है। दरअसल पिंड और ब्रह्मांड में कोई अंतर नहीं है। जो भौतिक रचनाएं इस शरीर में हैं, बाहर भी वे ही हैं अन्य कुछ नहीं। यह अलग बात है कि शरीर में उनका आकार छोटा है, जबकि विस्तृत जगत में बड़ा है। हालांकि आकार सापेक्ष होता है, एब्सोल्यूट या असली नहीँ। यह सिद्धांत पुस्तक 'शरीरविज्ञान दर्शन' में विज्ञान की कसौटी पर परख कर साबित किया गया है। मुझे लगता है कि पहले पुराणों की रचना हुई, फिर उनमें दर्शाए गए रूपकात्मक और मिथकीय स्थानों को बाहर के स्थूल जगत में दिखाया गया। इसका एक उद्देश्य धार्मिकता व अध्यात्मिकता को बढ़ावा देना हो सकता है, तो दूसरा उद्देश्य व्यावसायिक व धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देना भी हो सकता है। ऐसे नामों के अनगिनत उदाहरण हैं। पुराणों में गंगा सुषुम्ना नाड़ी को कहा गया है, पर लोक में इसे उत्तराखंड से निकलने वाली एक नदी के रूप में दिखाया जाता है। जैसे सुषुम्ना शरीर के बीचोंबीच सफर करती है, उसी तरह गंगा नदी भी भारतीय भूभाग के बीचोंबीच बहती है। जैसे

सुषुम्ना पूरे शरीर को मस्तिष्क से जोड़ती है, वैसे ही गंगा नदी पूरे भारतीय भूभाग को हिमालय से जोड़ती है।हिमालय को इसीलिए देश का मस्तक कहा जाता है। कैलाश रूपी सहस्रार भी मस्तक में ही होता है। गंगा में स्नान से मुक्ति प्राप्त होने का अर्थ यही है कि सुषुम्ना नाड़ी में बह रही कुंडलिनी ऊर्जा जब सहस्रार में बसे जीवात्मा को प्राप्त होती है, तो उसके पाप धुल जाने से वह पवित्र हो जाता है, जिससे मुक्ति मिल जाती है। पर आम लोगों ने उसे साधारण भौतिक नदी समझ लिया। उसमें स्नान करने के लिए लोगों की लाइन लग गई। वैसे तो आध्यात्मिक प्रतीकों से कुछ अप्रत्यक्ष लाभ तो मिलता ही है, पर उससे सुषुम्ना नाड़ी में नहाने से मिले लाभ की तरह प्रत्यक्ष लाभ नहीं मिल सकता।

देवताओं के द्वारा शिव के समक्ष कार्तिकेय से संबंधित गवाही देना जीवात्मा के द्वारा शरीर की गतिविधियों को अनुभव करना है

ध्यान से अपने शरीर का अवलोकन करना ही शिव के द्वारा देवताओं की सभा बुलाना है। ऐसी सभा का वर्णन मैंने अनायास ही अपनी पुस्तक शरीरविज्ञान दर्शन में की है। मुझे लगता है कि सम्भवतः मैं पिछले जन्म में शिवपुराण का गहन जानकार होता था। इस जन्म में तो मैंने कभी शिव पुराण पढ़ा नहीं था, फिर कैसे मेरे से उससे हूबहू मिलती जुलती हालाँकि आधुनिक विज्ञानवादी पुस्तक शरीरविज्ञान दर्शन की रचना हो गई। या फिर भटकती हुई मानवसभ्यता पर दया करते हुए शिव की ही आज्ञा या प्रेरणा हो कि उनके द्वारा प्रदत्त लुप्तप्राय विद्या को पुनर्जीवित किया जाए। यह भी हो सकता है कि मेरे परिवार का संस्कार मेरे ऊपर बचपन से ही पड़ा हो, क्योंकि मुझे याद आता है कि मेरे दादाजी शिवपुराण को बहुत पसंद करते थे, और उसे विशेष रूप से पढ़ा करते थे। फिर जीवात्मा को कार्तिकेय जन्म की घटना की असलियत का पता चलना ही देवताओं द्वारा शिव को वस्तुस्थिति से अवगत कराना है। उस वीर्यतेज को कुंडलिनी पुरुष के रूप में जीवात्मा के अनुभव में न लाना ही उसकी चोरी है। क्योंकि वह शरीर के अंदर ही रहता है, इसलिए उसकी चोरी का शक देवताओं के ऊपर ही जाता है, जो पूरे शरीर का नियमन करते हुए शरीर में ही स्थित हैं। वीर्य की दाहकता ही वीर्यचोर को दिया गया श्राप है। रक्तसंचार के वेग से ही अँगों को प्राण मिलता है। उसी प्राण से उन अंगों के सम्बंधित चक्र क्रियाशील हो जाते हैं, जिससे वहाँ कुंडलिनी भी चमकने लगती है। उदाहरण के लिए यौनोत्तेजना के समय वज्रप्रसारण उसमें रक्त के भर जाने से होता है। मैं यहाँ बता दूं कि जो कुंडलिनी-नाग का ऊपर की ओर रेंगना बताया गया है, वह वज्र प्रसारण के बाद के वज्र संकुचन से होता है। इसके साथ सहस्रार से लेकर मूलाधार तक फैली नाग की आकृति की सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान किया जाता है। वज्र उस नाग की पूंछ है, पैल्विक घेरा नाग का चौड़ है, पीठ के केंद्र से होकर वह ऊपर खड़ा है, मस्तिष्क में उसके अनगिनत फन फैले हैं, और उस नाग का अंत आज्ञा चक्र पर केंद्रीय फन के

रूप में होता है। वज्र प्रसारण के बाद इस ध्यान से उत्पन्न वज्र संकुचन से ऐसा लगता है कि नाग ऊपर की तरफ रेंगते हुए सहस्रार में पहुंच गया और उसके साथ कुंडलिनी पुरुष भी सहस्रार में चमकने लगता है। यदि नाग की पूँछ का ऐसा ध्यान करो कि वह आगे से ऊपर चढ़कर आज्ञा चक्र को छू रही है, मतलब नाग की पूँछ उसके सिर को छूकर एक गोल छल्ला जैसा बना रही है, तब यह रेंगने की अनुभूति ज्यादा होती है। फिर वह आज्ञा चक्र से होते हुए आगे से नीचे उतरता है। इस तरह एक लूप सा बन जाता है, जिस पर गशिंग व ऑर्गैस्मिक ब्लिस फील के साथ एनर्जी लगातार घूमने लगती है। यह प्रक्रिया कुछ क्षणों तक ही रहती है। फिर मांसपेशियों की निरंतर व स्पासमोडिक किस्म की सिकुड़न से शरीर थक जाता है। यह सिकुड़न जैसा घटनाक्रम ज्यादातर लगभग एक ही लम्बी व अटूट सांस में होता है। सम्भवतः इसीलिए सांस को ज्यादा देर तक रोकने के लिए योगी को प्राणायाम का अभ्यास कराया जाता है। फिर कई घण्टों के उपयुक्त क्रियाकलापों से या आराम से ही इसे दुबारा से सही ढंग से करने की शक्ति हासिल होती है। वज्र में रक्त भर जाने से स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र पर कुंडलिनी की अभिव्यक्ति बढ़ जाती है। उसी रक्त को रूपक में दुग्ध कहा गया है, क्योंकि दुग्ध रक्त से ही बना है। दुग्ध अन्य कुछ नहीं बल्कि एक प्रकार से छना हुआ रक्त ही है। दुग्ध इसलिए भी कहा गया है क्योंकि तांत्रिक कुंडलिनी मूलाधार से हृदय चक्र तक ही सबसे ज्यादा जाती है। वह वक्षस्थल पर होता है, जहाँ पर दुग्ध के स्रोत स्तन भी होते हैं। मिस्र की अँखिन्ग तकनीक में भी कुंडलिनी यौनांग से पीछे के हृदय चक्र तक जाती है। उसे फिर अँखिन्ग लूप से पीछे से ऊपर ले जाकर सिर के ऊपर से घुमा कर वापिस आगे से नीचे ले जाकर आगे के हृदय चक्र तक उतारा जाता है। सम्भवतः इसी तकनीक से कृतिका डर गई हो। अँखिन्ग लूप में कुंडलिनी का बारबार घूमना ही कार्तिकेय का कृत्तिका को आश्वासन देना और उससे बारबार मिलने आना है। जैसे ही लंबी-गहरी-धीमी और ध्यान लगाई गई साँसों की सहायता से होने वाली संकुचन -प्रसारण जैसी तांत्रिक क्रिया से शक्ति को मूलाधार से ऊपर पीठ से होते हुए मस्तिष्क की ओर चढ़ाया जाता है, वैसे ही वज्र संकुचित हो जाता है, और उसके साथ कुंडलिनी भी ऊपर चली जाती है। फिर जिस चक्र पर वह प्राण शक्ति जाती है, रक्त या दुग्ध भी वहीं चला जाता है, जिसका पीछा करते हुए कुण्डलिनी पुरुष भी। हालांकि उन चक्रों पर हमें वज्र प्रसारण की तरह कोई तरलजनित प्रसारण अनुभव नहीं होता, क्योंकि वे क्षेत्र शरीर में गहरे और दृढ़तापूर्वक स्थित होते हैं। कई बार उल्टा भी होता है। किसी चक्र पर यदि कुंडलिनी पुरुष का ध्यान किया जाए, तो शक्ति खुद ही वहाँ के लिए दौड़ पड़ती है। इसीलिए कार्तिकेय को षण्मुखी कहा गया है क्योंकि यह छहों चक्रों पर प्राणों से अर्थात दुग्ध से पोषण प्राप्त करता है। रक्त क्योंकि जल देवता के आधिपत्य में आता है, इसीलिए कहा गया है कि जलदेवता ने बताया कि कृत्तिकाएँ उस नवजात बालक को स्तनपान कराती हैं। पौराणिक युग के पुराण रचनाकार गजब के अध्यात्म वैज्ञानिक होते थे। जो शिवगण कृत्तिकाओं से कार्तिकेय को लेने जाते हैं, वे तांत्रिक क्रियाएं ही हैं, जो चक्रों से कुण्डलिनी को सहस्रार की तरफ खींचती हैं। वे क्रियाएँ

साधारण हठयोग वाली संकुचन-प्रसारण वाली या वीभत्स प्रकार की पँचमकारी भी हो सकती हैं, इसीलिए कृत्तिकाओं का उनसे डरना दिखाया गया है। स्वाभाविक है कि कुंडलिनी के साथ ही वहाँ से रक्तसंचार भी जाने लग पड़ता है, इसलिए वे मुरझा कर पीली सी पड़ने लगती हैं अर्थात डरने लगती हैं। कुंडलिनी योग से कुंडलिनी का बार-बार चक्रों की ओर लौटना ही कार्तिकेय का अपनी माता को पुनः वापिस लौटने का आश्वासन देना है। इससे वे नए रक्तसंचार से प्रफुल्लित होने लगती हैं, अर्थात उनका भय खत्म हो जाता है। कई लोग बोलते हैं कि उनकी कुंडलिनी किसी चक्र पर फंसी हुई है, और चलाने पर भी नहीं चलती। दरअसल जब कुंडलिनी है ही नहीं, तो चलेगी कैसी। कई बार कमजोर कुंडलिनी भी एक जगह अटक जाती है, कमजोर आदमी की तरह। ताकतवर कुंडलिनी को कोई चलने से नहीं रोक सकता। तांत्रिक पँचमकारों से कुण्डलिनी को अतिरिक्त शक्ति मिलती है। कुंडलिनी को अभिव्यक्त करने का सबसे आसान तरीका बताता हूँ। लम्बी-गहरी-धीमी साँसें लो और उस पर ध्यान देकर रखो। इधर-उधर के विचारों को भी अपने आप आते-जाते रहने दो। न उनका स्वागत करो, और न ही अनादर। एकदम से कुंडलिनी पुरुष किसी चक्र पर अनुभव होने लगेगा। फिर उसे अपनी इच्छानुसार चलाने लग जाओ। कुंडलिनी पुरुष को अभिव्यक्त कराने वाला दूसरा पर हल्के वाला तरीका बताता हूँ। अपने शरीर के किसी निर्वस्त्र स्थान जैसे कि हाथों पर शरीरविज्ञान दर्शन के ध्यान के साथ नजर डालो। कुंडलिनी अभिव्यक्त हो जाएगी। कुंडलिनी पुरुष और कुंडलिनी शक्ति साथसाथ रहते हैं। मानसिक ध्यान चित्र या कुंडलिनी चित्र ही कुंडलिनी पुरुष है। यही शिव भी है। यह शक्ति के साथ ही रहता है। शक्ति की बाढ़ से शिव पूर्ण रूप में अर्थात अपने असली रूप में अभिव्यक्त होता है। यही कुंडलिनी जागरण है। दरअसल अँगदर्शन वाले उपरोक्त तरीके से भी यौगिक साँसें चलने लगती है। उसीसे कुण्डलिनी चित्र अभिव्यक्त होता है। सारा कमाल साँसों का ही है। साँस ही योग है, योग ही साँस है। किसी विचार के प्रति आसक्ति के समय हमारी सांसें थम जैसी जाती हैं। जब हम फिर से स्वाभाविक साँसों को चलाना शुरु करते हैं, तो आसक्ति गायब होकर अनासक्ति में तब्दील हो जाती है। इससे परेशान करने वाला विचार भी आराम से शांत हो जाता है। इससे काम, क्रोध आदि सभी मानसिक दोष भी शांत हो जाते हैं, क्योंकि ये विकृत व आसक्तिपूर्ण विचारों की ही उपज होते हैं। अगर साँसों पर ध्यान दिया जाए, तो कुंडलिनी की शक्ति से अनासक्ति और ज्यादा बढ़ जाती है।

यब-युम तकनीक यौन तंत्र का महत्त्वपूर्ण आधारस्तंभ है

यब-युम की तकनीक भी इसी कार्तिकेय-कथा में रहस्यात्मक रूपक की तरह दर्शाई गई है। क्योंकि कथा में आता है कि कबूतर के रूप में बना गुप्तांग वीर्य को ग्रहण करके ऋषिपत्नियों के रूप में बने चक्रों को प्रदान करते हैं। उन में उससे गर्भ बन जाता है, जो कुंडलिनी पुरुष के रूप में विकसित होने लगता है। यब-युम में भी तो यही किया

जाता है। यब-युम की युग्मावस्था में यह वीर्यतेज का स्थानांतरण बहुत तेजी से होता है। इसमें पुरुष-स्त्री का जोड़ा अपने सभी युग्मित चक्रों पर एकसाथ ध्यान लगाता है। उससे दो मूलाधरों की ऊर्जा एकसाथ बारी-बारी से सभी चक्रों पर पड़ती है। उससे वहाँ तेजी से कुंडलिनी पुरुष प्रकट हो जाता है, जो वीर्यतेज से और तेजी से बढ़ने लगता है। यह तन्त्र की बहुत कारगर तकनीक है। इस तकनीक के बाद ऐसा लगता है कि मूलाधार व स्वाधिष्ठान चक्रों और सम्बंधित अँगों का दबाव एकदम से कम हो गया। दरअसल वहां से वीर्यतेज चक्रों पर पहुंच कर वहाँ कुंडलिनी पुरुष बन जाता है। यही ऋषिपत्नियों के द्वारा गर्भ धारण करना है। ऐसे लम्बे अभ्यास के बाद सुषुम्ना नाड़ी पूरी खुल जाती है। फिर चक्रों पर स्थित वह तेज एकदम से सुषुम्ना से ऊपर चढ़कर सहस्रार में भर जाता है। यह कुंडलिनी जागरण या प्राणोत्थान है। यही ऋषिपत्नियों के द्वारा गर्भसहित वीर्यतेज को गंगा नदी को प्रदान करना है। गंगा के द्वारा किनारे में उगी सरकंडे की घास को प्रदान करना है, और उस पर एक शिशु का जन्म है। यह रूपक पिछले कुछ लेखों में विस्तार से वर्णित किया गया है। यहाँ ध्यान देने योग्य मुख्य बिंदु है कि शिवलिंग भी यब-युम का ही प्रतीक है। इसी वजह से शिवलिंगम की अराधना से भी यब-युम के जैसा लाभ प्राप्त होता है। और तो और, हठयोग के आसनों को भी इसी वीर्य ऊर्जा को पूरे शरीर में वितरित करने के लिए बनाया गया है, ऐसा लगता है। ऐसे प्रत्यक्ष अनुभव से ही पाश्चात्य देशों में यह धारणा बनी हुई है कि योगासन संभोग शक्ति को बढ़ाते हैं।

शिवपुराण में साफ लिखा है कि शिव के वीर्य से उत्पन्न कार्त्तिकेय अर्थात कुंडलिनी पुरुष ही तारकासुर अर्थात आध्यात्मिक अज्ञान को मारकर उससे मुक्ति दिला सकता है, अन्य कुछ नहीं। इससे यह क्यों न मान लिया जाए कि यौनयोग ही आत्मजागृति के लिए आधारभूत व मुख्य तकनीक है, अन्य बाकि तो सहयोगी क्रियाकलाप हैं। अगर गिने चुने लोगों को जागृति होती है, तो अनजाने में इसी यौन ऊर्जा के मस्तिष्क में प्रविष्ट होने से होती है। यह इतनी धीरे होता है कि उनको इसका पता ही नहीं चलता। इसलिए वे जागृति का श्रेय अपने रंगबिरंगे क्रियाकलापों और चित्रविचित्र मान्यताओं को देते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उनकी जागृति के समय वे उन-उन प्रकार के क्रियाकलापों या मान्यताओं से जुड़े होते हैं। इससे आपसी विवाद भी पैदा होता है। अन्धों की तरह कोई हाथी की पूंछ पकड़कर उसे असली हाथी बताता है, तो कोई हाथी की सूंड को। असली हाथी का किसीको पता नहीं होता। ऐसा भी हो सकता है कि अपनी विशिष्ट मान्यताओं या क्रियाओं से मूलाधार की यौन शक्ति हासिल हो, पर आदमी शर्म के कारण उसके यौनता से जुड़े अंश को जगजाहिर न करता हो। हम अन्य तकनीकों का विरोध नहीं करते। पर हैरानी इसको लेकर है कि मुख्य तकनीक व सिद्धांत को सहायक या गौण बना दिया गया है, और सहायक तकनीकों को मुख्य। जब दूध का दूध और पानी का पानी हो जाएगा तब स्वाभाविक है कि बहुत से लोगों को स्पष्ट व वैज्ञानिक रूप से जागृति होगी, संयोगवश गिनेचुने लोगों को ही नहीं। अक्सर लोग बाहरी अलंकारों और रूपकों में डूबे होते हैं, असल चीज का पता ही नहीं होता।

मुझे तो वे समझ भी नहीं आते, और उनका रहस्य समझे बिना वे किसी दिव्य ग्रह की कथाएं लगती हैं। मैं फेसबुक पर देखता रहता हूँ। डाकिनी, काली आदि देवियों के कितने ही नाम इस मूल सिद्धांत से जोड़े गए हैं। सभी पन्थों और संप्रदायों ने अपनेअपने हिसाब से नाम दिए हैं। मूल चीज एक ही है। ऐसी बात भी नहीं है कि जागृति के मूल वैज्ञानिक सिद्धांत का पता न हो लोगों को। योग शास्त्रों में साफ लिखा है कि कुंडलिनी मूलाधार में ही रहती है, अन्यत्र कहीं नहीं। तो फिर इधर-उधर क्यों भागा जाए। मूलाधार में ही शक्ति को क्यों न ढूंढा जाए। दरअसल इसको व्यावहारिक रूप में नहीं, बल्कि अलंकार या रूपक की तरह माना गया। रूपक बनाने से यह नुकसान हुआ कि लोगों को पता ही नहीं चला कि क्या रूपक है और क्या असली। जिन्होंने इसे कुछ समझा, वे संभोग के सिवाय अन्य सभी टोटकों की सहायता लेने लगे मूलाधार की शक्ति को जागृत करने के लिए। सम्भवतः ऐसा सामाजिक संकोच व लज्जा के कारण हुआ। महिलाएं तो इस बारे में ज्यादा ही अनभिज्ञ और संकोची बनती हैं, जबकि पुराने जमाने में महिलाएं ही सफल तन्त्रगुरु हुआ करती थीं। एक तरफ तो मान रहे हैं कि कुंडलिनी मूलाधार में ही रहती है, और कहीं नहीं, और दूसरी तरफ उस संभोग को नकार रहे हैं, जो मूलाधार की शक्ति को जगाने के लिए सबसे प्रत्यक्ष और शक्तिशाली क्रिया है। विचित्र सा विरोधाभास रहा यह। सम्भवतः शक्ति की कमी भी इसमें कारण रही। समाज के जरूरत से ज्यादा ही आदर्शवादी और अहिंसक बनने से शरीर में शक्ति की कमी हो गई। शक्ति की कमी होने पर संभोग में रुचि कम हो जाती है। अंडे का सेवन एक उचित विकल्प हो सकता है। अंडा तो शाकाहारी भोजन ही माना जा सकता है, क्योंकि उसमें जीवहिंसा नहीं होती। वह तो दूध की तरह ही पशु का बाइप्रोडक्ट भर ही है। उसमें सभी पोषक तत्त्व संतुलित मात्रा में होते हैं। अंडा यौन उत्तेजना को भी बढ़ाता है, इसलिए तन्त्र के हिसाब से इसका सेवन सही होना चाहिए। आजकल के विकसित व वैज्ञानिक युग में तो यौनता के प्रति संकोच कम होना चाहिए था। विज्ञान की बदौलत आजकल अनचाहे गर्भ का भय भी नहीं है। बेशक तांत्रिक संभोग के साथ कंडोम का प्रयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि तांत्रिक क्रियाओं से वज्र लगातार संकुचित व प्रसारित होता रहता है, जिससे वह अंदर फंस सकता है। एड्स आदि यौन रोगों के संचरण का खतरा बढ़ सकता है इसके बिना। पर ऐसी नौबत ही नहीं आती क्योंकि यौनतन्त्र एक ही जीवनसाथी अर्थात पत्नी के साथ ही सिद्ध होता है। तन्त्र में वैसे भी दूसरों की बेटियों व पत्नियों को यौनतन्त्र साथी बनाना वर्जित है। कामभाव जागृत करने के लिए सभ्य तरीके से अप्रत्यक्ष सम्पर्क या हंसीमजाक तो चलता रहता है। फिर भी बहुत से गर्भनिरोधक उपाय हैं। हॉर्मोन की गोलियां हैं। हालांकि इनको लम्बे समय तक लगातार रोज लेना पड़ता है, जिससे दुष्प्रभाव भी हो सकते हैं। यदि तांत्रिक अभ्यास के समय असुरक्षित चक्र-काल में गल्ती से योनि में स्खलन हो भी जाए, तो गर्भ रोकने के लिए अन्य हॉर्मोनल दवाइयां हैं, जैसे कि विकल्प-72, जिसे स्खलन के बाद के 72 घण्टे के अंदर लेने पर गर्भ नहीं ठहरता। यदि किसी कारणवश उसे न लिया जा सके, या बहुत विरले मामले में वह फेल हो जाए, तो एबॉर्शन पिल नाम से अन्य हॉर्मोनल दवाइयां

मिलती हैं, जिन्हें माहवारी मिस होने के बाद जितना जल्दी लिया जाए, उतना अच्छा परिणाम मिलता है। ऐसे यूजर फ्रेंडली मिनीकिट उपलब्ध हैं, जिनसे माहवारी मिस होने के दिन से अगले 2-3 दिन में ही गर्भ ठहरने का पता चल जाता है। वैसे तो इन सबकी जरूरत ही नहीं पड़ती यदि यौनतन्त्र के प्रारम्भिक अभ्यास के समय सुरक्षित काल में ही संभोग किया जाए। यह समय माहवारी के पहले दिन समेत माहवारी चक्र के प्रथम सात दिन और अंतिम 7 दिन हैं। इन दिनों में स्खलन होने पर भी गर्भ नहीं बनता, क्योंकि इन दिनों में शुक्राणुओं को अण्डाणु उपलब्ध नहीं होता। यह समय सीमा उनके लिए है, जिनमें चक्र काल 28 दिनों का है, और हरबार इतना ही और अपरिवर्तित रहता है। यदि काल इससे कम-ज्यादा हो, तो उसी हिसाब से सुरक्षित काल कम-ज्यादा हो जाता है। यदि यह काल बराबर नहीं तब भी धोखा लग सकता है। हालाँकि कोई भी गर्भनिरोधक तरीका 100 प्रतिशत नहीं है, पर सभी तरीके मिलाकर तो लगभग 100 प्रतिशत सुरक्षा दे ही देते हैं। कई बार प्रीइजेक्युलेट में भी थोड़े से शुक्राणु होते हैं। पर वे अक्सर गर्भ के लिए नाकाफी होते हैं। वैसे हल्के तरीके ही काफी हैं। कॉपर टी, नलबंदी, नसबंदी जैसे जटिल तरीकों की तो जरूरत ही नहीं पड़ती अधिकांशतः। मैं एक पुरानी अध्याय में पढ़ रहा था जिसमें एक तंत्राभ्यासी कह रहे थे कि आजकल जनसंख्या व बेरोजगारी अधिक है, इसलिए यौन तन्त्र से समस्या आ सकती है। इसलिए यौन तन्त्र का अभ्यास करें तो सावधानी से करें, और यह मान कर चलें कि यदि अनचाहा गर्भ ठहर जाए तो उसे खुशी-खुशी स्वीकार करने में ही भलाई है। पर आज के वर्तमान दौर में ये सब बातें पुरानी हो गई हैं। गर्भ भी उसी प्रकार की प्रचण्ड यौन ऊर्जा से बनता है, जिससे जागृति मिलती है। जिस सुस्त व आलसी संभोग से गर्भ नहीं बन सकता, उससे जागृति भी नहीं मिल सकती। इसीलिए तो देवी पार्वती को हैरानी हुई कि भगवान शिव के शक्तिशाली संभोग से उपजे शक्तिशाली वीर्य से गर्भ तो अवश्य बनना था, वह वीर्य असफल नहीं हो सकता था। पर वह गर्भ गया कहाँ। बाद में पता चला कि वह गर्भ सहस्रार में जागृति के रूप में प्रकट हुआ। इससे स्वाभाविक है कि पुराने जमाने में संभोग तन्त्र से लोगों को परहेज होना ही था, क्योंकि इससे गर्भ ठहरने की पूरी संभावना होती है, और भौतिक विज्ञान की कमी से उस समय भौतिक गर्भनिरोधक तकनीकों और ज्ञान का अभाव तो था ही। ऐसी जानकारियों वाली बातें लिखने और पढ़ने में ही अच्छी लगती हैं, इन्हें बोलने और सुनने में संकोच और लज्जा जैसी महसूस होती है। इसी वजह से तो आजकल के चैटिंग के युग में देखने में आता है कि कई बार एक देवी सदृश और पतिव्रता नारी भी, जिससे ऐसी बातें बोलने और सुनने की कल्पना भी नहीं की जा सकती, वह भी अपने मोबाइल फोन पर इतनी अश्लील चैटिंग कर लेती है कि लेखन के जादू पर उसको भी यकीन होने लगता है जो लेखन का धुर विरोधी रहा हो।

चलो, फिर से कुण्डलिनी से जुड़ी भगवान कार्तिकेय की कथा पर वापिस चलते हैं। तारकासुर को मारने विभिन्न देवता आए, पर वे उसे मार न सके। फिर शिव का मुख्य गण वीरभद्र आया। उसने अपने अमित पराक्रम से उसे लगभग मरणासन्न कर

दिया। पर वह फिर उठ खड़ा हुआ। अंत में सभी देवताओं ने मिलकर कार्तिकेय को उसे मारने भेजा। तब राक्षस तारकासुर ने उस बालक को देखकर हँसते हुए भगवान विष्णु से कहा कि वह बड़ा निर्लज्ज है, इसीलिए उसने बालक को उससे लड़कर मरने के लिए भेजा है। फिर उसने विष्णु को कोसते हुए कहा कि वह प्रारम्भ से ही कपटी और पापी है। उसने रामावतार में धोखे से बाली को मारा था, और मोहिनी अवतार में राक्षसों को ठगा था। इस तरह से तारकासुर ने विष्णु के बहुत से पाप गिनाए, और कहा कि वह उसको मारकर उन सभी पापों की सजा देगा। फिर कार्तिकेय ने तारकासुर पर हमला किया। भयंकर युद्ध हुआ। उससे पवन स्तम्भित जैसी हो गई, और धरती कांपने लगी। सूर्य भी फीका पड़ने लग गया। कार्तिकेय ने अपनी अत्यंत चमकदार शक्ति तारकासुर पर चलाई। इससे तारकासुर मर गया। उसके बहुत से सैनिक मारे गए। कई सैनिकों ने देवसेना की शरणागति स्वीकार करके अपनी जान बचाई। तारकासुर का एक राक्षस बाणासुर युद्ध से जिंदा भाग गया था। वह क्रोंच पर्वत को प्रताड़ित करने लगा। जब उसने उसकी शिकायत कार्तिकेय से करी, तो उसने बाणासुर को भी मार दिया। इसी तरह प्रलम्बासुर राक्षस शेषनाग के पुत्र कुमुद को दुखी करने लगा। कार्तिकेय ने उसका वध भी कर दिया।

तारकासुर वध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

वीरभद्र को हम शिव का प्रमुख व्यक्तित्व कह सकते हैं, क्योंकि वह शिव का मुख्य गण है। मुख्य सेनापति में राजा के गुण तो आएंगे ही। एक प्रकार से यह तांत्रिक व्यक्तित्व है। ऐसे व्यक्तित्व से तारकासुर यानी अज्ञान काफी कमजोर या मरणासन्न हो जाता है, पर मरता नहीं है। मरता तो वह शिवपुत्र कार्तिकेय से ही है। कार्तिकेय यहाँ अथक व अटूट संभोग योग से उत्पन्न वीर्यतेज को सहस्रार को चढ़ाने से फलीभूत कुंडलिनी जागरण का प्रतीक है। सात्विक विष्णु भी तारकासुर को मारने आया। पर उसे उसके पुराने पाप कचोटते रहे। दुनिया में अक्सर देखा जाता है कि बहुत सात्विक आदमी अपने द्वारा हुआ छोटा सा पाप भी नहीँ भूल पाते। वे तांत्रिक ऊर्जा का उपभोग भी नहीं करते, जो पापों को नष्ट करने के लिए तांत्रिक बल देती है। अपने पुराने पापों की कुंठा ही उनकी कुंडलिनी को जागृत नहीं होने देती। इसीको ऐसा कहकर बताया गया है कि तारकासुर भगवान विष्णु से उसके पुराने पापों की सजा देने की बात कर रहा है। कार्तिकेय को बालक इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह कुण्डलिनी योग से निर्मित मानसिक पुरुष है, जो नया-नया ही पैदा हुआ है, और भौतिक वस्तुओं से कम प्रभावी प्रतीत होता है। सूर्य, चंद्र, वायु आदि देवता बहुत पुराने समय से लेकर हैं। उनका भौतिक अस्तित्व है, जिससे वे कठोर या दृढ़ शरीर वाले हैं। इसीलिए उन्हें तुलनात्मक रूप से वयस्क माना गया है। पर कुण्डलिनी तो शुद्ध मानसिक चित्र है, जिससे वह बच्चे की तरह मुलायम है। क्योंकि कुंडलिनी चित्र मूलाधार की उसी वीर्यशक्ति से पैदा होता है, जिससे सन्तान पैदा होती है। इसीलिए कार्तिकेय को बच्चा कहा गया है। कार्तिकेय

ने तारकासुर पर हमला किया, मतलब कुंडलिनी योगी ने शक्तिशाली तांत्रिक योग से प्राणोत्थान को लंबे समय तक बना कर रखा, जिससे चमचमाती कुंडलिनी लम्बे समय तक लगातार सहस्रार में बनी रही। पवन स्तम्भित हो गई, मतलब शक्तिशाली प्राणोत्थान से योगी की साँसें बहुत धीमी और गहरी अर्थात लगभग न के बराबर हो गईं। योग की ऐसी उच्चावस्था में प्राण ही ऑक्सीजन की ज्यादातर जरूरत पूरी करने लगता है। धरती कांपने लगी, मतलब प्राणोत्थान से पूरे शरीर का प्राण सहस्रार में घनीभूत हो गया, जिससे शरीर में प्राण की कमी हो गई। इससे दुनियादारी के तनावयुक्त विविध कार्यों का शरीर पर जरा सा भी भार पड़ने पर शरीर कमजोरी के कारण कांपने लगता है। सूर्य फीका पड़ने लग गया, मतलब सहस्रार में कुण्डलिनी के काबिज होने से पूरे मन में अद्वैत भाव छा गया। अद्वैत में तो सुख और दुख समान लगने लगते हैं, प्रकाश और अंधकार समान लगने लगता है, मतलब सूर्य और चन्द्र समान लगने लगते हैं। यही सूर्य का फीका पड़ना है। कार्तिकेय ने अपनी चमकदार शक्ति तारकासुर के ऊपर चलाई। कार्तिकेय अर्थात कुंडलिनी की अपने आप की चमक ही उसकी वह चमकदार शक्ति है, जो उसने तारकासुर अर्थात अज्ञान के ऊपर चलाई। मतलब उसकी अपनी जागरण की चमक से ही द्वैतरूपी अज्ञान या तारकासुर नष्ट हुआ। अज्ञान रूपी तारकासुर के सैनिक हैं, विभिन्न मानसिक दोष और उनसे उपजे दूषित आचार-विचार। वे नष्ट हो जाते हैं। जो बचे रहते हैं, वे रूपांतरित होकर पवित्र हो जाते हैं। मतलब कि वे देवसेना की शरण में चले जाते हैं। जैसे कि कामभाव तन्त्रभाव में रूपांतरित होकर पवित्र हो जाता है, और मानव के आध्यात्मिक विकास में मदद करता है। राक्षस बाणासुर से यहाँ तात्पर्य बुरी नजरों के बाणों से है। नयन बाण, यह एक प्रसिद्ध शास्त्रीय उक्ति है। क्योंकि आंखें आज्ञाचक्र से जुड़ी होती हैं, इसलिए बुरी नजरों से वह दुष्प्रभावित होता है। यही बाणासुर राक्षस द्वारा क्रोंच पर्वत को प्रताड़ित करना है। दूषित नजर से बुद्धि दूषित होती है। बुद्धि आज्ञाचक्र में निवास करती है। क्योंकि जब तक जागृति से मन को तसल्ली नहीं मिल जाती, तब तक आदमी की नजरों में किसी न किसी तरह से भौतिक आनंद पाने की लालसा बनी रहती है। इसीसे नजर दूषित होती है। जैसे कि पराई नारी से क्षणिक सम्भोगसुख की लालसा होना, जिससे नारी पर गलत नजर पड़ती है। इससे गलत विचार आते हैं, जिससे बुद्धि की कल्पना शक्ति और निर्णय शक्ति भी पापपूर्ण होने लगती है। मतलब बाणासुर क्रोंच पर्वत को रौंदने लगता है, जिससे उसका अधिष्ठातृ देवता प्रताड़ित महसूस करके दुखी होता है। पिछले अध्याय में मेरा अनुमान सही था कि आज्ञाचक्र को ही क्रोंच पर्वत कहा गया है। जागृति का ज्ञान होने के बाद बुरी और दूषित नजर का नष्ट होना ही कार्तिकेय के द्वारा बाणासुर का वध है। इसी तरह, शेषनाग मूलाधार से सहस्रार चक्र तक जाने वाली सुषुम्ना नाड़ी को कहा गया है, क्योंकि इसकी आकृति एक कुण्डली लगाए हुए और फन उठाए नाग की तरह है। सहस्रार चक्र को ही उसका पुत्र कुमुद कहा गया है। कुमुद का अर्थ श्वेतकमल होता है। सहस्रार चक्र को भी एक हजार पंखुड़ियों वाले कमल के रूप में दर्शाया जाता है। सुषुम्ना से ही सहस्रार को प्राण अर्थात जीवन मिलता है, इसीलिए दोनों का पिता-पुत्र का

सम्बंध दिखाया गया है। प्रलंब माला को कहते हैं। कुंडलिनी भी माला के रूप वाले माइक्रोकोस्मिक ऑर्बिट में घूमती है। यह एक व्यवहारिक अनुभव है कि जब माला पूरी जुड़ी हुई होती है, तभी कुंडलिनी सभी चक्रों में विशेषकर सहस्रार चक्र में अच्छे से प्रवेश कर पाती है। टूटी हुई माला से कुंडलिनी ऊर्जा गति नहीं कर पाती। राक्षस प्रलम्बासुर यही टूटी हुई माला है। वह शेषनाग पुत्र कुमुद को दुखी करने लगा, मतलब टूटा हुआ ऊर्जा परिपथ सहस्रार चक्र तक प्राण ऊर्जा की आपूर्ति को बाधित करने लगा। कार्तिकेय ने प्रलम्बासुर को मारा, मतलब कुंडलिनी जागरण के बाद कुंडलिनी के पीछे के चैनल से ऊपर चढ़ने से और आगे के चैनल से नीचे उतरने से ऊर्जा परिपथ पूर्ण हो गया। साथ में, कुंडलिनी जागरण से उत्साहित आदमी आगे भी नियमित रूप से कुंडलिनी योगाभ्यास करने लगा, जिससे माला रूपी केंद्रीय कुंडलिनी चैनल ज्यादा से ज्यादा खुलता गया। वास्तव में असली माला जाप तो चक्रों की माला में कुंडलिनी का जाप ही है। इसीको गलत समझने के कारण धागे और मनकों की भौतिक माला बनी होगी। या हो सकता है कि कुंडलिनी योग को आम अशिक्षित लोगों की समझ में लाने के लिए ही धागे की माला का प्रचलन शुरु कराया गया होगा। हालांकि इससे भी बहुत से लाभ मिलते हैं। अभ्यास से धागे की बाहरी माला चक्रों की भीतरी माला में रूपांतरित हो जाती है।

अध्याय-28
कुंडलिनी खोने से उत्पन्न पार्वती का कोप और रशियन सत्ताधीश का कोप~ एक तुलनात्मक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

दोस्तों, कई पौराणिक कथाओं को पूरी तरह से डिकोड नहीं किया जा सकता। इसलिए वहां अंदाजा लगाना पड़ता है। समथिंग इज बैटर देन नथिंग। हल्की शुरुआत से ये कथाएं भी बाद में डिकोड हो जाती हैं। ऐसी ही रहस्यमयी कथा गणेश देव को लेकर है। मुझे लगता है कि गणेश पार्वती देवी का कुंडलिनी पुरुष है। शिव के कुंडलिनी पुरुष के सहारे रहते हुए देवी पार्वती ऊब जैसी गई थीं। वे अपने को शिव के ऊपर निर्भर सा और परतन्त्र सा समझने लग गई थीं। खासकर उन्हें उनकी सहेलियों ने भी भड़काया था। इसीलिए देवी पार्वती कहती हैं कि वे शिवगणों की सुरक्षा के अंतर्गत रहते हुए एक पराधीन की तरह रह रही थीं। उन्होंने निश्चय किया कि अब वे अपने लिए एक समर्पित गण पैदा करेंगी। एकबार वे निर्वस्त्र होकर स्नान कर रही थीं, पर भगवान शिव द्वारपाल नन्दी को डांटकर अंदर घुस गए, जिससे वे शर्मिंदा हो गईं। इसलिए उन्होंने अपने शरीर की मैल से सर्वांगसुन्दर और निर्दोष गणेश को पैदा किया। मैल को भी रज कहते हैं, और वीर्य के समकक्ष योनिद्रव को भी। सम्भवतः देव गणेश देवी पार्वती की यौन ऊर्जा के रूपांतरण से निर्मित मानसिक पुरुष हैं, जैसे भगवान कार्तिकेय भगवान शिव की यौन ऊर्जा से निर्मित मानसिक कुंडलिनी पुरुष हैं। पुत्र इसलिए क्योंकि बना तो योनि द्रव से ही सामान्य पुत्र की तरह, बेशक गर्भ में न बनकर मस्तिष्क या मन में बना। इसी वजह से तो यौनतन्त्र के अभ्यास से स्त्री में मासिक धर्म के द्रव का स्राव या रज का स्राव बहुत कम या शून्य भी हो जाता है। इससे स्त्री का कमजोरी से भी बचाव हो जाता है। इसी रज या शरीर के मैल से ही उसकी कुंडलिनी विकसित होती है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित रहेगा कि हमारे लिए देवी पार्वती पूजनीया हैं, सम्माननीया हैं। हम उनके बारे में सीधे तौर पर कुछ नहीं कह सकते। हम तो केवल देवी पार्वती के जैसे स्वभाव वाले मनुष्यों के बारे में बात कर रहे हैं। क्योंकि हर जगह तो ऐसा नहीं लिखा जा सकता, "देवी पार्वती के जैसे स्वभाव वाला मनुष्य", क्योंकि इससे बिना जरूरत के लेखन का विस्तार बढ़ जाएगा, और साथ में लोग भ्रमित होकर समझ नहीं पाएंगे। इसलिए मजबूरी में संक्षेप के लिए देवी पार्वती या सिर्फ पार्वती लिखना पड़ता है। एक प्रकार से हम व्यक्तित्व या स्वभाव का वर्णन करते हैं, किसी देव विशेष या व्यक्ति विशेष का नहीं। इसी तरह भगवान शिव आदि सभी देवी-देवताओं के बारे में भी समझना चाहिए। आशा और विश्वास है कि आम जनमानस और देवी-देवता इसे अन्यथा नहीं लेंगे। पार्वती ने गणेश को एक लाठी देकर निर्देश दिया कि कोई भी उसकी आज्ञा के

बिना उसके घर के अंदर प्रविष्ट न होने पाए। पार्वती दरअसल जीवात्मा है। सहस्रार उसका घर है। गणेश को घर के बाहर खड़े करने का मतलब है, हरसमय कुंडलिनी के ध्यान में मग्न रहना। इससे कोई और चीज ध्यान में आ ही नहीं सकती, मतलब अपनी मर्जी से घर के अंदर प्रविष्ट नहीं हो सकती। जब जीवात्मा चाहेगा और कुंडलिनी से अपना ध्यान हटाएगा, तभी दूसरी चीज ध्यान रूपी घर में आ पाएगी। इससे पहले उसके मन में कुंडलिनी नहीं थी। इसलिए उसे न चाहते हुए भी शिव को और उसकी दुनियादारी को ध्यान-गृह में आने देना पड़ता था। नहाते समय वह नग्न थी, अर्थात आत्मा की गहराई के अंतरंग विचारों में खोई हुई थी। यह उनके लिए अच्छा जवाब है, जो यह गलत धारणा रखते हैं कि तन्त्र में स्त्री को पुरुष से निम्नतर समझा जाता है। दरअसल तन्त्र में पुरुष और स्त्री बराबर हैं, और दोनों के लिए समान प्रकार की साधनाएं बताई गई हैं। एकबार नन्दी को गणेश ने द्वार पर रोक दिया। इससे हैरान होकर शिव ने अपने नन्दी आदि गणों को बारी-2 से पार्वती के घर में प्रवेश करने को कहा, पर गणेश बालक ने अपनी लाठी से सबकी पिटाई कर दी। मतलब कि कुंडलिनी बालक की तरह कोमल होती है, जिसके पास जीवात्मा की रक्षा करने के लिए विशेष हथियार नहीं होते, पर लाठी को दर्शाता हुआ एक स्नेहभरा भय होता है। नंदी आदि गण यहाँ शिव के विचार हैं, जो शिव की आत्मा को पार्वती की आत्मा से मिलाने से पहले उससे अपना परिचय करवाना चाहते हैं। दुनिया में अक्सर ऐसा ही होता है। विचारों के माध्यम से ही लोगों का एकदूसरे से हार्दिक मिलन सम्भव हो पाता है। गणेश द्वारा लाठी से गणों को डराने या पीटने का मतलब है कि पार्वती अर्थात जीवात्मा बाहर से आ रहे विचारों की तरफ ध्यान न देकर कुंडलिनी पर ही ध्यान जमा कर रखती है। न तो विचारों का स्वागत करना है, और न ही उन्हें भगाना है। यही प्यार से भरा हुआ भय बना कर रखना है। यही विचारों या दुनियादारी के प्रति साक्षीभाव बना कर रखना है। यही विपासना है, विपश्यना है। गणेश द्वारा बारी-बारी से आए सभी देवताओं व गणों को हराना इसी बात को दर्शाता है कि पार्वती की कुंडलिनी शिवजी द्वारा प्रेषित किए गए सभी विचारों व भावनाओं से अप्रभावित रहती है। फिर सभी देवता इसको शिव के अपमान और उससे उत्पन्न जगहँसाई के रूप में लेते हैं। इसलिए वे सभी एक युद्धनीति बनाकर मिलकर लड़ते हैं, और धोखे से गणेश का वध कर देते हैं। मतलब कि शिव पार्वती को दुनियादारी में इतना उलझा देते हैं कि वह कुंडलिनी को भूल जाती है। इससे पार्वती अपार क्रोध से भरकर काली बन जाती है, और सृष्टि को नष्ट करने के लिए तैयार हो जाती है। मतलब कि मन के अखण्ड कुंडलिनी चित्र के नष्ट होने से पार्वती क्रोध से भर जाती है, और घुप्प अंधेरे में डूब जाती है। यह ऐसे ही है जैसे किसी की अतिप्रिय वस्तु गुम हो जाए, या उसे उसके खो जाने का डर सता जाए, और वह उसके बिना अंधा जैसा हो जाए। यह बच्चे के खिलौने के गम होने के जैसा ही है। ऐसे में आदमी कुछ भी गलत काम कर सकता है, यदि उसे सांत्वना देकर संभाला न जाए। रशियन सत्ताशीर्ष को क्या कहीं ऐसा ही सदमा तो नहीं लगा है। ऐसे में आदमी दुनिया को भी नष्ट कर सकता है, और खुद को भी। क्योंकि शरीर में समस्त ब्रह्मांड बसा है, इसीलिए सम्भवतः पार्वती

के द्वारा आत्महत्या के प्रयास को ही सृष्टि के विनाश का प्रयास कहा गया हो। काली नाम का मतलब ही काला या अंधेरा होता है। फिर वह काली बनी पार्वती कहती है कि यदि गणेश को पुनर्जीवित कर दोगे, तो वह प्रसन्न हो जाएगी। बात स्पष्ट है कि खोई हुई प्रिय वस्तु या कुंडलिनी को प्राप्त करके ही आदमी अपनी पूर्व की प्रसन्न अवस्था को प्राप्त करता है। यह तो अब रशियन सत्ताधीश से पूछना चाहिए कि उनकी क्या प्रिय वस्तु खो गई है, जिसके लिए वे परमाणु बटन की तरफ हाथ बढ़ा कर पूरी धरती को दांव पर लगा रहे हैं, और जिसे पाकर वे प्रसन्न हो जाएंगे। मैंने पिछले अध्याय में भी कहा था कि आज के उन्नत युग की कुंडलिनी आज्ञा चक्र में अटकी हुई है। कुंडलिनी का स्वभाव ही गति करना होता है। वह एक स्थान पर ज्यादा समय नहीं रह सकती। उसका अगला और उन्नत पड़ाव सहस्रार चक्र है। पर वहाँ तक कुंडलिनी को उठाने के लिए बहुत अधिक ऊर्जा की आवश्यकता है, जो यौनतन्त्र से ही मिल सकती है। इसीलिए ईश्वरीय प्रेरणा से मैं तन्त्र के बारे में लिखता हूँ। साथ में, भौतिक दुनियादारी को कम करने की भी जरूरत है, ताकि उससे बचाई गई ऊर्जा कुंडलिनी को ऊपर चढ़ाने के काम आ सके। यह युद्ध का विनाश दुनियादारी को कम करने का ही एक अवचेतनात्मक प्रयास है, ताकि कुंडलिनी की ऊर्जा की जरूरत पूरी हो सके। युद्ध के अन्य कारण गिनाए जाना तो बस बहाने मात्र हैं। एक परमाणु हथियार सम्पन्न और क्षेत्रफल के लिहाज से सबसे बड़े देश को भला किससे भय हो सकता है। युद्ध का असली और एकमात्र कारण तो उस बेशकीमती ऊर्जा की कमी है, जिससे आदमी मानवता और आध्यात्मिकता के पथ पर आगे बढ़ता है। समझदार को समझाने के लिए युद्ध का भय दिखाना ही काफी है, नासमझ युद्ध से भी नहीं समझेगा, सिर्फ नुकसान ही होगा। ज्यादा से ज्यादा हल्की सी युद्ध शक्ति दिखा देते, ताकि शत्रु को संभलने और सुधरने का मौका मिलता। फिर दुनिया भी योद्धा की कूटनीति और युद्धनीति की तारीफ करती। यह क्या कि पूरे ही राष्ट्र को नरक बनाने पर तुले हुए हो। एक तरफ गरीबों को सिर ढकने के लिए छत नहीं मिलती, वे रात भर खुले में ठिठुरते हैं, दूसरी तरफ आप आलीशान भवनों को जमींदोज करते जा रहे हो। सोचो, कितना खून पसीना लगा होगा उन्हें बनाने में। उस प्राण ऊर्जा की कितनी बर्बादी हुई होगी उन्हें बनाने में, जिससे कुंडलिनी जागृत हो सकती थी। कुंडलिनी की ऊर्जा की जरुरत पूरी करने का यह अवचेतनात्मक प्रयास अनियंत्रित और अमानवीय है, अनियंत्रित परमाणु ऊर्जा की तरह। इससे क्या है कि कुंडलिनी ऊपर चढ़ने की बजाय नीचे उतर रही है, अपने सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त किए बिना ही। इसलिए दुनियादारी या जीने के तरीकों में बदलाव धीरे-धीरे व मानवीय होना चाहिए, एकदम से व अमानवीय नहीं। मैं यहाँ किसी एक राष्ट्र पर आक्षेप नहीं लगा रहा हूँ। सभी राष्ट्र युद्धपिपासु की तरह व्यवहार करते हैं। दुनिया में सभी देशों के द्वारा ऐसी परिस्थितियां क्यों बनाई जाती हैं, जो किसी देश को मजबूरन युद्ध की तरफ धकेल दे। अधिकांश देश हथियारों का जखीरा इकट्ठा करने में लगे रहते हैं। हथियारों के व्यापार से पैसा कमाना चाहते हैं। साम्राज्यवाद का सपना पाल कर रखते हैं। इसकी सबसे अच्छी दवाई कुंडलिनी ही है। कुण्डलिनी की सहायता

से संपूर्ण सृष्टि अपने अंदर दिखाई देने लगती है। आदमी अपने में ही संतुष्ट रहने लगता है, चाहे वह कैसा भी हो, और कैसी भी परिस्थिति में क्यों न हो। जब किसी राष्ट्राध्यक्ष को अपने अंदर ही सम्पूर्ण ब्रह्मांड महसूस होगा, तब वह भला क्यों दूसरों की जमीन लूटना चाहेगा। वह अपनी समस्या का हल अपने अंदर ही खोजेगा। फिर उसे अधिकांश मामलों में हथियारों की जरूरत भी नहीं पड़ेगी, और युद्ध की भी नहीं। मैं दुनिया में सिर्फ एक ही देश को जानता हूँ, जिसने भरपूर उकसाओं के बाद भी कभी युद्ध की शुरुआत नहीं की, और न ही किसी के ऊपर आक्रमण किया। वह देश भारत है। सम्भवतः यह भारत में कुण्डलिनी योग और उसपर आधारित धर्म से ही सम्भव हुआ हो। इसलिए समस्त विश्व को भारत से शिक्षा लेनी चाहिए, यदि शांतिपूर्ण विश्व की स्थापना करनी है। मैं किसी की झूठी बड़ाई नहीं कर रहा हूँ। न ही मैं युद्ध के इलावा अन्य पक्षों को देख रहा हूँ। सत्य सत्य है, जिसे कोई झुठला नहीं सकता। खैर, शिव ने अपने गणों को सुबह के समय पूर्व दिशा में भेजा, और कहा कि जो भी जीव सबसे पहले मिले, उसका सिर काट के ले आएं, और गणेश के धड़ से जोड़ दें। मतलब कि कुछ भी सट्टा-बट्टा करना पड़े, पर पार्वती की खोई कुंडलिनी किसी तरह वापिस मिल जाए। गणों को सबसे पहले एक हाथी का बच्चा मिला। उन्होंने शिव की सहायता से उसका सिर गणेश के धड़ से जोड़कर गणेश को पुनर्जीवित कर दिया। उससे देवी पार्वती संतुष्ट हो गई, जिससे उनके कोप से पूरी दुनिया बाल-बाल बच गई।

अध्याय-29

कुंडलिनी और इस्लाम~कुंडलिनी जिन्न, सलत या नमाज योग, अल्लादीन योगी, चिराग आज्ञा चक्र, व शरीर बोतल है, और आँखें आदि इन्द्रियां उस बोतल का ढक्कन हैं

मित्रो, एक अच्छे लेखक के लिए अनुभवी होना बहुत जरूरी है। अनुभव की पराकाष्ठा जागृति में है। इसलिये हम कह सकते हैं कि एक जागृत व्यक्ति सबसे काबिल लेखक

बन सकता है। होता क्या है कि जागृत व्यक्ति का पिछला जीवन जल्दी ही खत्म होने वाला होता है, तेजी से चल रहे रूपाँतरण के कारण। इसलिये उसमें खुद ही एक नेचुरल इंस्टिन्कट पैदा हो जाती है कि वह अपने पुराने जीवन को शीघ्रता से लिखकर सुरक्षित कर ले, ताकि जरूरत पड़ने पर वह उसे पढ़ कर अपने पुराने जीवन को याद कर ले। इससे उसे रूपान्तरण का सदमा नहीं लगता। इस इंस्टिनकट या आत्मप्रेरणा की दूसरी वजह यह होती है कि लोगों को जागृति के लिए प्रेरणा मिले और उन्हें यह पता चल सके कि जागृति के लिए कैसा जीवन जरूरी होता है। अगर उसे खुद भी फिर से कभी जागृति की जरूरत पड़े, तो वह उससे लाभ उठा सके। वेदों और पुराणों को लिखने वाले लोग जागृत हुआ करते थे। उन्हें ऋषि कहते हैं। यह उनकी रचनाओं को पढ़ने से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उन्हें पढ़ने से लगता है कि वे जीवन के सभी अनुभवों से भरे होते थे। उनका लेखन मानव के हरेक पहलू को छूता है। साथ में मैं अपना ही एक अनुभव साझा कर रहा था कि कैसे मुझे अपने ही लेख ने प्रेरित किया। अन्य अधिकांश लोग तो दूसरों के लेखों से प्रेरित होते हैं। मुझे अपना ही लेख अचंभित करता था। उसमें मुझे अनेकों अर्थ दिखते थे, कभी कुछ तो कभी कुछ, और कभी कुछ नहीं। यह आदमी का मानसिक स्वभाव है कि सस्पेंस या संदेह और थ्रिल या रोमांच से भरी बात के बारे में वह बार-बार सोचता है। इसी वजह से वह लेख मेरे मन में हमेशा खुद ही बैठा रहता था, और मुझे ऐसा लगता था कि वह मुझे जीवन में दिशानिर्देशित कर रहा था। दरअसल अगर कोई चीज मन में लगातार बैठी रहे, तो वह कुंडलिनी का रूप ले लेती है। कई लोग उसे झेल नहीं पाते और अवसाद का शिकार हो जाते हैं। इसीलिए तो लोग कहते हैं कि फलां आदमी फलां चीज के बारे में लगातार सोच-सोच कर पागल हो गया। दरअसल वैसा ऊर्जा की कमी से होता है। कुंडलिनी शरीर की ऊर्जा का अवशोषण करती है। यदि कोई अतिरिक्त ऊर्जा को न ले तो स्वाभाविक है कि उसमें शक्तिहीनता जैसी घर कर जाएगी। इससे उसका मन अपनी रोज की साफसफाई के लिए भी नहीं करेगा। अवसाद की परिभाषा भी यही है कि आदमी अपने शरीर की देखरेख भी ढंग से नहीं कर पाता, बाकि काम तो छोड़ो। मेरा एक सहकर्मी जो अवसाद की दवाइयां भी खाता था, कई-कई दिनों तक न तो नहाता था और न खाना बनाता था। कुंडलिनी, ऊर्जा और शक्ति एकदूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं, लगभग। अवसाद में आदमी अकेलेपन में इसलिए रहने लगता है क्योंकि वह व्यर्थ के झमेलों से बचकर अपनी ऊर्जा बचाना चाहता है। पर इससे कई बार उसका अवसाद बढ़ जाता है, क्योंकि उसे प्रेमभरी सहानुभूति देने वाला कोई नहीं रहता। पर यदि कुंडलिनी के लिए अतिरिक्त ऊर्जा या शक्ति की आपूर्ति हो जाए, और उससे आदमी के काम कुप्रभावित न हों, तो कुंडलिनी चमत्कार करते हुए आदमी को मुक्ति की ओर ले जाती है। कई बार अवसाद के मरीज में ऊर्जा तो पर्याप्त होती है, पर वह ऊर्जा दिग्भ्रमित होती है। कुंडलिनी योग से यदि ऊर्जा को सही दिशा देते हुए उसे कुंडलिनी को प्रदान किया जाए, तो अवसाद समाप्त हो जाता है। मुझे भी ऐसा ही अवसाद होता था, जो कुंडलिनी योग से समाप्त हो गया। मेरे उन लेखों में यौनवासना का बल भी था, तंत्र के रूप में।

क्योंकि आपने देखा होगा कि लगभग हरेक फिल्म में रोमांस होता है। यह रोचकता प्रदान करने के लिए होता है। कोई चीज हमें तभी रोचक लगती है जब वह कुंडलिनी शक्ति से हमारे मन में ढंग से बैठती है। मतलब साफ है कि फ़िल्म में प्रणय संबंधों का तड़का इसीलिए लगाया जाता है, ताकि उससे मूलाधार-निवासिनी कुंडलिनी शक्ति सक्रिय हो जाए, जिससे पूरी फ़िल्म अच्छे से मन में बैठ जाए और लोग एकदूसरे से चर्चा करते हुए उसका खूब प्रचार करे, और वह ब्लॉकबस्टर बने। इसीलिए यदि ऐतिहासिक दस्तावेज पर भी फ़िल्म बनी हो, तो भी उसमें रोमांस जोड़ दिया जाता है, सच्चा न मिले तो झूठा ही सही। इसीलिए कई बार ऐसी फिल्मों का विरोध भी होता है। इसी विरोध के कारण ही फ़िल्म पद्मावती (स्त्रीलिंग) का नाम बदलकर पद्मावत (पुलिंग) रखना पड़ा था। यह फ़िल्म उद्योग का मनोविज्ञान है। ऐसा लग रहा था कि वे लेख मैंने नहीं, बल्कि मेरी कुंडलिनी ने लिखे थे। मेरा मन दो हिस्सों में विभाजित जैसा था, एक हिस्सा कुंडलिनी पुरुष या गुरु या उपदेशक के रूप में था, और दूसरे हिस्से में मेरा पूरा व्यक्तित्व एक शिष्य या श्रोता के रूप में था। कुंडलिनी का यह लाभ भी काबिलेगौर है। वैसे आम आदमी तो अपने लिखे या शत्रु द्वारा लिखे लेख से ज्यादा लाभ नहीं उठा सकता, पर कुंडलिनी को धारण करने वाला व्यक्ति उनसे भी पूरा लाभ उठा लेता है, क्योंकि उसे लगता है कि वे कुंडलिनी ने लिखे हैं। सम्भवतः इसीलिये कुंडलिनी को सबसे बड़ा गुरु या मार्गदर्शक कहते हैं। एक लेख से मुझे अपने लिए खतरा भी महसूस होता था, क्योंकि उसमें धर्म के बारे में कुछ सत्य और चुभने वाली बातें भी थीं। हालांकि गलत कुछ नहीं लिखा था। उस बारे मुझे कुछ धमकी भरी चेतावनियाँ भी मिली थीं। उसकी वजह मुझे यह भी लगती है कि उससे कुछ बड़े-बुजुर्गों और तथाकथित धर्म के ठेकेदारों के अहंकार को चोट लगी होगी कि एक साधारण सा कम उम्र का लड़का धर्म, तंत्र व आध्यात्मिक विज्ञान के बारे में कुछ कैसे लिख सकता था। हो सकता है कि उन्हें यह भी लगा हो कि उन लेखों में एक जगह गुरु का अपमान झलकता था। हालाँकि लगता है कि वे बाद में समझ गए थे कि वैसा कुछ नहीं था, और वे लेख अनगिनत अर्थों से भरे थे, ताकि हर किस्म के लोगों को पसंद आते। वैसे उन्हें यह सवाल पत्रिका के लिए लेख के चयनकर्ताओं से पूछना चाहिए था कि उन्होंने मेरे लेखों को क्या देखकर चयनित किया था। मुझे उन लेखों से पैदा हुए भय से लाभ भी मिला। भय से एक तो हमेशा उन लेखों पर ध्यान जाता रहा, और दूसरा लेखन की बारीकियों की समझ विकसित हुई। मेरे लेखन को मेरे परिवार के एक या दो बड़े लोगों ने भी पढ़ा था। उन्हें भी उससे अपने लेखन में कुछ सुधार महसूस हुआ था। साथ में, मैं बता रहा था कि कैसे पुरातन चीजों के साथ संस्कार जुड़े होते हैं। इसी मनोवैज्ञानिक सिद्धांत से प्रेरित होकर ही पुराणों के ऋषियों ने अपने लेखन में कभी सीमित काल नहीं जोड़ा है। केवल 'बहुत पुरानी बात' लिखा होता है। इससे पाठक के अवचेतन मन में यह दर्ज हो जाता है कि ये अनादि काल पहले की बातें हैं। इससे सर्वाधिक काल-संभव संस्कार खुद ही प्राप्त हो जाता है। इसी तरह यदि कहीं कालगणना की जाती है, तो

बहुत दूरपार की, लाखों -करोड़ों वर्षों या युगों की। इसीलिए सनातन धर्म को ज्यादातर लोग सनातन धर्म कहना पसंद करते हैं।

अब शिव पुराण की आगे की कथा को समझते हैं। हाथी का सिर जोड़कर गणेश को गजानन बना दिया गया। मतलब कि भगवान शिव पार्वती की कुंडलिनी तो वापिस नहीं ला पाए, पर उन्होंने कुंडलिनी सहायक के रूप में गजानन को पैदा किया। हाथी वाला भाग यिन का प्रतीक है, और मनुष्य वाला भाग यांग का। यिन-यांग गठजोड़ के बारे में एक पिछले अध्याय में भी बताया है। उसे देखकर पार्वती के मन में अद्वैतभावना पैदा हुई, जिससे उसे अपनी कुंडलिनी अर्थात अपने असली पुराने गणेश की याद वापिस आ गई, और वह हमेशा उसके मन में बस गया। इसलिए गजानन उसे बहुत प्यारा लगा और उसे ही उसने अपना पुत्र मान लिया। उसे आशीर्वाद भी दिया कि हर जगह सबसे पहले उसी की पूजा होगी। अगर उसकी पूजा नहीं की जाएगी, तो सभी देवताओं की पूजा निष्फल हो जाएगी। वास्तव में गजानन की पूजा से अद्वैतमयी कुंडलिनी शक्ति उजागर हो जाती है। वही फिर अन्य देवताओं की पूजा के साथ वृद्धि को प्राप्त करती है। देवताओं की पूजा का असली उद्देश्य कुंडलिनी ही तो है। यदि गजानन की पूजा से वह उजागर ही नहीं होगी, तो कैसे वृध्दि को प्राप्त होगी। अगर होगी, तो बहुत कम।

फिर शिव-पार्वती अपने दोनों पुत्रों कार्तिकेय और गणेश के विवाह की योजना बनाते हैं। वे कहते हैं कि जो सबसे पहले समस्त ब्रह्मांड की परिक्रमा करके उनके पास वापिस लौट आएगा, उसीका विवाह पहले होगा। कार्तिकेय मोर पर सवार होकर उड़ जाता है, अभियान को पूरा करने के लिए। उधर गणेश के पास चूहा ही एकमात्र वाहन है, जिसपर बैठकर ब्रह्मांड की परिक्रमा करना असंभव है। इसलिए वह माता पिता के चारों तरफ घूमकर परिक्रमा कर लेता है। वह कहता है कि मातापिता के शरीर में संपूर्ण ब्रह्मांड बसा है, और वे ही ईश्वर हैं। बात ठीक भी है, और शरीरविज्ञान दर्शन के अनुसार ही है। सवारी के रूप में चूहे का मतलब है कि गणेश अर्थात यिन-यांग गठजोड़ ज्यादा क्रियाशील नहीं होता। यह शरीर में कुंडलिनी की तरह नहीं घूमता। शरीर मतलब ब्रह्मांड। कार्तिकेय अर्थात कुण्डलिनी का शरीर में चारों ओर घूमना ही पूरे ब्रह्मांड की परिक्रमा है। इसीलिए उसे तीव्र वेग से उड़ने वाले मोर की सवारी कहा गया है। गणेश तो भौतिक मूर्ति के रूप में शरीर के बाहर जड़वत स्थित रहता है। इसीलिए मन्द चाल चलने वाले चूहे को उसका वाहन कहा गया है। वह खुद नहीं घूमता, पर शरीर के अंदर घूमने वाले कुंडलिनी पुरुष को शक्ति देता है। यदि उसका मानसिक चित्र घूमता है, तो वास्तविक कुंडलिनी पुरुष की अपेक्षा बहुत धीमी गति से। वह तो यिन-यांग का मिश्रण है। माता-पिता या शिवपार्वती भी यिन-यांग का मिश्रण है। दोनों के इसी समान गुण के कारण उसके द्वारा मातापिता की परिक्रमा कही गई है। क्योंकि यिन-यांग गठजोड़ से, बिना कुंडलिनी योग के, सीधे ही भी जागृति मिल सकती है, इसीलिए उसके द्वारा बड़ी आसानी से परमात्मा शिव या ब्रह्मांड की प्राप्ति या परिक्रमा होना बताया गया है। यिन-

याँग के बारे में बात चली है, तो मैं इसे और ज्यादा स्पष्ट कर देता हूँ। मांस मृत्यु या यिन है, और उसे जला रही अग्नि जीवन या याँग है। इसीलिए श्मशान में कुंडलिनी ज्ञान प्राप्त होता है। शिव इसी वजह से श्मशान में साधना करते हैं। धुएं के साथ उसकी गंध अतिरिक्त प्रभाव पैदा करती है। सम्भवतः इसी यिनयांग से आकर्षित होकर लोग तंदूरी चिकन आदि का ——। मैंने अपने कुछ बड़े-बुजुर्गों से सुना है कि वैदिक काल के लोग जिंदा भैंसों या बैलों और बकरों को यज्ञकुंड की धधकती आग में डाल दिया करते थे, जिससे यज्ञ के देवता प्रसन्न होकर हरप्रकार से कल्याण करते थे। आजकल भी पूर्वी भारत में ऐसा कभीकभार देखा जा सकता है। आदर्शवादी कहते हैं कि शाकाहार संपूर्ण आहार है। यदि ऐसा होता तो दुनिया से जानवरों की अधिकांश किस्में विलुप्त न हो गई होतीँ, क्योंकि आदमी के द्वारा अधिकांशतः उनका इस्तेमाल भोजन के रूप में ही हुआ। कहते हैं कि एक यज्ञ तो ऐसा भी है, जिसमें गाय को काटा जाता है, जबकि गाय को सनातन धर्म में अति पवित्र माना जाता है। यज्ञ की हिंसा को हल्का दिखाने वाले कई लोग यह अवैज्ञानिक तर्क भी देते हैं कि पुराने समय के ऋषि यज्ञ में मरने वाले पशु को अपनी शक्ति से पुनर्जीवित कर देते थे, पर आजकल किसी में ऐसी शक्ति नहीं है, इसलिए आजकल ऐसे यज्ञ आम प्रचलन में नहीं हैं। कई दार्शनिक किस्म के लोग कहते हैं कि यज्ञ में बलि लगे हुए पशु को स्वर्ग प्राप्त होता है। जब बुद्धिस्ट जैसे लोगों द्वारा उनसे यह सवाल किया जाता है कि तब वे स्वर्ग की प्राप्ति कराने के लिए यज्ञ में पशु के स्थान पर अपने पिता की बलि क्यों नहीं लगाते, तब वे चुप हो जाते हैं। सम्भवतः वे यज्ञ देवता कुंडलिनी के रूप में ही होते थे। ऐसा जरूर होता होगा, क्योंकि ऐसे हिंसक यज्ञ-यागों का वर्णन वेदों में है। काले तंत्र या काले जादू में इसी तरह मांस के हवन से कुंडलिनी शक्ति पैदा की जाती है, जिसे जिन्न भी कहते हैं। हम यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम नाजायज पशु हिंसा के सख्त खिलाफ हैं, और यहाँ प्रकरणवश ही तथ्यों को सामने रखा जा रहा है, किसी जीवन-पद्धति की वकालत के लिए नहीं। इमरान खान ने बुशरा बेगम से बहुत काला जादू कराया, पर बात नहीं बनी। इससे जुड़ी एक बात मुझे याद आ रही है। मेरा एक दोस्त मुझे एकबार बता रहा था कि मृत पशु के व्यवसाय से जुड़े किसी विशेष समुदाय के लोगों का एक शक्तिशाली देवता होता है। उसे वे गड्ढा कहते हैं। दरअसल हरवर्ष एक कटे हुए मृत बकरे को उस गड्ढे में दबा दिया जाता है। जिससे उसमें बहुत खतरनाक मांसखोर जीवाणु पनपे रहते हैं। यदि किसीका बुरा करना हो, तो उस गड्ढे की मिट्टी की मुट्ठी शत्रु के घर के ऊपर फ़ेंक दी जाती है। जल्दी ही उस घर का कोई सदस्य या तो मर जाता है, या गंभीर रूप से बीमार हो जाता है। विज्ञान के अनुसार तो उस मिट्टी से जीवाणु-संक्रमण फैलता है। पर मुझे इसके पीछे कोई घातक मनोवैज्ञानिक वजह भी लगती है। जिन्न क्या है, कुंडलिनी ही है। चीज एक ही है। यह तो साधक पर निर्भर करता है कि वह उसे किस तरीके से पैदा कर रहा है, और किस उद्देश्य के लिए प्रयोग में लाएगा। यदि यह सात्विक विधि से पैदा की गई है, और आत्मकल्याण या जगकल्याण के लिए है, तब उसे शक्ति या कुंडलिनी या होली घोस्ट या पवित्र भूत कहेंगे। यदि उसे तामसिक तरीके से पैदा किया

है, हालांकि उसे आत्मकल्याण और जगकल्याण के प्रयोग में लाया जाता है, तब इसे तांत्रिक कुंडलिनी कहेंगे। यदि इसे तामसिक या काले तरीके से पैदा किया जाता है, और इससे अपने क्षणिक स्वार्थ के लिए जगत के लोगों का नुकसान किया जाता है, तब इसे जिन्न या भूत या डेमन कहेंगे। अब्राहमिक धर्म वाले कई लोग जो कुंडलिनी को डेमन या शैतान कहते हैं, वे अपने हिसाब से ठीक ही कहते हैं। मैं ऐसा नहीं बोल रहा हूँ कि सभी लोग ऐसा कहते हैं। आपको हरेक धर्म में हर किस्म के लोग मिल जाएंगे। हमारे लिए सभी धर्म समान हैं। इस वैबसाईट में धार्मिक वैमनस्य के लिए कोई जगह नहीं ह। कुंडलिनी योग से जो शरीर में कंपन, सिकुड़न, नाड़ी-चालन आदि विविध लक्षण प्रकट होने लगते हैं, उसे वे शैतान का शरीर पर कब्जा होना कहते हैं। पर मैं उसे देवता का शरीर पर कब्जा होना कहूंगा। शैतान और देवता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उनके पास कुंडलिनी को वश में करने वाली युक्तियां व संस्कार नहीं हैं, इसलिये उनसे वह हिंसा, नुकसान, दंगे, जिहाद, धर्म परिवर्तन आदि करवाती है। हाल ही में जो देशभर में कई स्थानों पर रामनवमी के जुलूसों पर विधर्मियों के द्वारा हिंसक पथराव हुआ है, वह शक्ति से ही हुआ है। उस पर उन्हें कोई पछतावा नहीं, क्योंकि इसको उन्होंने महान मानवता का काम माना हुआ है, लिखित रूप में भी और सामूहिक तौर पर भी। हम मानते हैं कि कुंडलिनी शक्ति मानवता के लिए काम करती है, ये भी ऐसा ही मानते हैं, पर इन्होंने कुंडलिनी को धोखे में डाला हुआ है, मानवता को विकृत ढंग से परिभाषित करके। यह ऐसे ही है कि एक सांप घर के अंदर घुसा था चूहे का शिकार करने, पर शिकार सोया हुआ आदमी बन गया, क्योंकि चूहा सांप से बचने के लिए उसके बिस्तर में घुस गया। गजब का मनोविज्ञान है लगता है यह, जिस पर यदि ढंग से शोध किए जाएं, तो समाज में व्याप्त परस्पर वैरभाव समाप्त हो सकता है। शक्ति कुंडलिनी का ही पर्याय है, या यूँ कहो कि शक्ति कुंडलिनी से ही मिलती है, बेशक वह किसी को महसूस होए या न। उनके लिए तो कुंडलिनी शैतान ही कही जाएगी। पर सनातन धर्म में गुरु परम्परा, संस्कार आदि अनेकों युक्तियों से कुंडलिनी को वश में कर के उससे मानवता, सेवा, जगकल्याण, और मोक्ष संबंधी काम कराए जाते हैं। इसलिए सनातनिओं के लिए वही कुंडलिनी देवता बन जाती है। ऐसा होने पर भी, सनातन धर्म में भी बहुत से लोग कई बार कुंडलिनी के आवेश को सहन नहीं कर पाते। मैं एकबार ऊँचे हिमालयी क्षेत्रों में किसी प्रसंगवश रहता था। हम कुछ साथियों का मकान-मालिक बहुत अच्छा इंसान था। देवता पर बहुत ज्यादा आस्था रखने वाला था। हमेशा देवपूजा में शामिल होता था। उसके पूरे परिवार के संस्कार ऐसे ही पवित्र थे। मेरे एक रूममेट के साथ अक्सर उठता-बैठता था। एकबार उस मकान मालिक की कुंडलिनी शक्ति को पता नहीं क्या हुआ, वह ज्यादा ही खानेपीने लग गया, जिससे वह सम्भवतः कुंडलिनी को नियंत्रित नहीं कर पा रहा था। वह रोज मेरे रूममेट को साथ लेकर शराब पीता और पूरे दिन उसके साथ और कुछ अन्य लोगों के साथ ताश खेलता रहता। समझाने पर भी न समझे। उसकी बड़ी-बड़ी और लाली लिए आँखें जैसे शून्यता को ढूंढती रहती। वह अजीब सा और डरावना सा लगता। ऐसा लगता कि जैसे

उस पर देवता की छाया पड़ गई हो, पर उल्टे रूप में। मेरा रूममेट भी बड़ा परेशान। वह किसी के काबू नहीं आया पुलिस के सिवाय। बाद में माफी माँगने लगा। अपने किए पर बहुत शर्मिंदा हुआ। शराब तो उसने बिल्कुल छोड़ दी, और वह पहले से भी ज्यादा नेक इंसान बन गया। इससे जाहिर होता है कि वह देवता या कुंडलिनी के वश में था। इसीलिए वह मारपीट आदि नहीं कर रहा था। यदि मारपीट आदि बवाल मचाता, तो मानते कि वह भूतरूपी कुंडलिनी के वश में होता। उसकी कुंडलिनी को जरूरत से ज्यादा तांत्रिक ऊर्जा मिल रही थी, जिससे वह उसे नियंत्रित नहीं कर पा रहा था। यदि वह अपनी मर्जी से कर रहा होता तो बाद में माफी न मांगता, बहुत शर्मिंदा न होता, और प्रायश्चित न करता। ऐसे मैंने बहुत से अच्छे लोग देखे हैं, जिन्हे पता नहीं एकदम से क्या हो जाता है। वे तो खातेपीते भी नहीं। बिल्कुल सात्विक जीवन होता है उनका। लगता है कुंडलिनी को पर्याप्त ऊर्जा न मिलने से भी ऐसा होता है। यदि उनकी ऊर्जा की कमी को उच्च ऊर्जा वाली चीजों विशेषकर ननवेज या विशेष टॉनिक से पूरा किया जाए, तो वे एकदम से ठीक हो जाते हैं। इसीलिए कहते हैं कि शक्ति खून की प्यासी होती है। माँ काली के एक हाथमें खड़ग और दूसरे हाथ में खून से भरा कटोरा होता है। अगर ऊर्जा की कमी से कुंडलिनी रुष्ट होती है, तो ऊर्जा की अधिकता से भी। इसीलिए योग में संतुलित आहार व विहार पर बल दिया गया है। अपने व्यवसाय की खातिर मैं कुछ समय के लिए एक जंगली जैसे क्षेत्र में भी रहा था। वहां एक गांव में मैंने देखा था कि एक बुजुर्ग आदमी को प्रतिदिन मांस चाहिए होता था खाने को, बेशक थोड़ा सा ही। अगर उसे किसी दिन मांस नहीं मिलता था, तो उसमें भूत का आवेश आ जाता था, और वह अजीबोग़रीब हरकतें करने लगता था, गुस्सा करता, बर्तन इधरधर फ़ेंकता, और परिवार वालों को परेशान करता, अन्यथा वह दैवीय गुणों से भरा रहता था। कुछ तो इसमें मनोवैज्ञानिक कारण भी होता होगा, पर सारा नहीं। बहुत से लोग यह मानते हैं कि शक्ति से केवल लड़ाई-झगड़े जैसे राक्षसी गुण ही पनपते हैं, दैवीय गुण नहीं। पर सच्चाई यह है कि दया, प्रेम, नम्रता, सहनशीलता जैसे दैवीय गुणों के लिए भी शक्ति की जरूरत पड़ती है। अगर विष्ठा को ढोने के लिए ताकत की जरूरत होती है, तो अमृत को ढोने के लिए भी ताकत की जरूरत पड़ती है। यह अलग बात है कि शक्ति का स्रोत क्या है। पर यह भी सत्य है कि शक्ति का सबसे उत्कृष्ट स्रोत संतुलित आहार ही है, और वह ननवेज के बिना पूरा नहीं होता। हम यहाँ निष्पक्ष रूप से वैज्ञानिक तथ्य सामने रख रहे हैं, न कि किसी की जीवनपद्धति। भारत-विभाजन के कारण लाखों निर्दोष लोग मारे गए। विभाजन भी बड़ा अजीब और बेढंगा किया गया था। देश को तोड़ना और जोड़ना जैसे एक गुड्डे-गुडिया का खेल बना दिया गया। उसके लिए तथाकथित जिम्मेदार लोग तो बहुत उच्च जीवन-आदर्श वाले और अहिंसक थे। फिर सामाजिक न्याय, धार्मिक न्याय, बराबरी, हित-अहित, कूटनीति और निकट भविष्य में आने वाली समस्याओं का आकलन वे क्यों नहीं कर पाए। प्रथमदृष्ट्या तो ऐसा लगता है कि उनमें ऊर्जा की कमी रही होगी, और उनके विरोधी ऊर्जा से भरे रहे होंगे। तब ऐसे आदर्शवाद और अहिंसा धर्म से क्या लाभ। इससे अच्छा तो तब होता अगर वो अपनी ऊर्जा के लिए

छुटपुट मानवीय हिंसा को अपनाकर उस भयानक मानवघातिनी हिंसा को रोक पाते, और भविष्य को भी हमेशा के लिए सुरक्षित कर देते। समझदारों के लिए इशारा ही काफी होता है। इस बारे ज्यादा कहने की जरूरत नहीं है। हम किसी की आलोचना नहीं कर रहे हैं, पर तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं। विरोध नीतियों, विचारों और कामों का होता है, व्यक्तियों का नहीं। हम आदर्शवाद की तरफ भी कोई अंगुली नहीं उठा रहे हैं। आदर्शवाद उच्च व्यक्तित्व का आधारस्तम्भ है। यह एक अच्छी और मानवीय आदत है। कुंडलिनी जागरण की प्राप्ति कराने वाले कारकों में यह मूलभूत कारक प्रतीत होता है। हमारा कहने का यही तात्पर्य है कि दुनिया में, खासकर आज के कलियुग में अधिकांश लोग मौकापरस्त होते हैं और आदर्शवादी का नाजायज फायदा उठाने के लिए तैयार रहते हैं। इसलिए आदर्शवाद के साथ अतिरिक्त सतर्कता की जरूरत होती है। दक्षिण भारत में मछली उत्पादन बहुत होता है, समुद्रतटीय क्षेत्र होने के कारण। इसलिए वहाँ अधिकांश लोग मांसाहारी होते हैं। फिर भी वहाँ सनातन संस्कृति को बहुत मान-सम्मान मिलता है। इसकी झलक दक्षिण की फिल्मों में खूब मिलती है। मुख्यतः इसी वजह से आजकल वहाँ की फिल्में पूरी दुनिया में धूम मचा रही हैं। सम्भवतः उपरोक्त वृद्ध व्यक्ति की कुंडलिनी शक्ति ऊर्जा की कमी से ढंग से अभिव्यक्त न होकर भूत जैसी बन जाती थी। एकप्रकार से संतुलित आहार से उसके मन को शक्ति मिलती थी, क्योंकि कुंडलिनी मन ही है, मन का एक विशिष्ट, स्थायी, व मज़बूत भाव या चित्र है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जिससे मन को शक्ति मिलती है, उससे कुंडलिनी को भी खुद ही शक्ति मिलती है। कुंडलिनी को ही सबसे ज्यादा शक्ति मिलती है, क्योंकि कुंडलिनी ही मन का सबसे प्रभावशाली हिस्सा है। इसीलिए योग में संक्षेप में कहते हैं कि कुंडलिनी को शक्ति मिली, मन की बात नहीं होती। योग में कुंडलिनी से मतलब है, बाकि विस्तृत मन से कोई विशेष प्रयोजन नहीं। आप आदिवासियों के झुण्ड के सरदार को आसानी से वश में कर सकते हो, पूरे झुंड को नहीं। जैसे सरदार को वश में करने से पूरा झुंड वश में हो जाता है, उसी तरह कुंडलिनी को वश में करने से पूरा मन वश में हो जाता है। यूँ कह सकते हैं कि कुंडलिनी ही मन का मर्म है। अगर किसी की कुंडलिनी को पकड़ लिया, तो उसके पूरे मन को पकड़ लिया। तभी तो हरेक आदमी अपनी कुंडलिनी के बारे में छुपाता है। साम्प्रदायिक हिंसा ऐसे ही धार्मिक आवेश में होती है, और उसके लिए मन से पछतावा होने पर भी कोई माफी नहीं मांगता, क्योंकि धर्म में ही ऐसा लिखा होता है कि यह अच्छा काम है और जन्नत को देने वाला है। देवता तो उसे लाभ देना चाह रहा था, पर वह लाभ नहीं ले पा रहा था। उसका तनमन देवता के आवेश को सहन नहीं कर पा रहा था। इसलिये देवता उसके लिए भूत या डेमन बन गया था। इसी से बचने के लिए ही हठयोग के अभ्यास से तनमन को स्वस्थ करना पड़ता है, तभी कोई देव-कुंडलिनी को सहन और नियंत्रित करने की सामर्थ्य पाता है। यदि बंदर के हाथ उस्तरा लग जाए, तो दोष उस्तरे का नहीं है, दोष बंदर का है। इसी तरह, मैंने एकबार देखा कि एक देवता के सामने एक गुर (विशेष व्यक्ति जिस पर देवता की छाया पड़ती हो) जब ढोल की आवाज से हिंगरने या नाचने लगा, तो उसकी दिल के

दौरे से मौत हो गई। लोगों ने कहा कि उसके ऊपर देवता की बजाय भूत की छाया पड़ी। दरअसल उसका निर्बल शरीर देवता रूप कुंडलिनी के आवेश को सहन नहीं कर पाया होगा। इसीलिए कुंडलिनी योग के लिए उत्तम स्वास्थ्य का होना बहुत जरूरी है। योग की क्रिया स्वयं भी उत्तम स्वास्थ्य का निर्माण करती है। मेरे दादाजी पर भी देवता की छाया उतारी जाती थी। छाया या साया चित्र को भी कहते हैं। यिन-याँग गठजोड़ ही देवता है। उससे जो मन में कुंडलिनी चित्र बनता है, उसे ही देवता की छाया कहते हैं। जब ढोल की आवाज से देवता उनके अंदर नाचता था, तब उनकी साँसे एकदम से तेज हो जाती थीं। उनकी पीठ एकदम सीधी और कड़ी हो जाती थी, सिर भी सीधा, और वे अपने आसन पर ऊपर-नीचे की ओर जोर-जोर से हिलते थे। उस समय उनके दोनों हाथ अगले स्वधिष्ठान चक्र पर जुड़े हुए और मुट्ठीबंद होते थे। ऐसा लगता है कि उनकी कुंडलिनी ऊर्जा मूलाधार से पीठ से होते हुए ऊपर चढ़ रही होती थी। मैंने कभी उनसे पूछा नहीं, अगर मौका मिला तो जरूर पूछूंगा। उस समय कुछ पूछने पर वे हांफते हुए कुछ अस्पष्ट से शब्दों में बोलते थे, जिसे देवता की सच्ची आवाज समझा जाता था। उससे बहुत से काम सिद्ध किए जाते थे, और बहुत से विवादों को निपटाया जाता था। देवता के आदेश का पालन लोग तहेदिल से करते थे, क्योंकि वह आदेश हमेशा ही शुभ और सामाजिक होता था। 5-10 मिनट में देवता की छाया उतरने के बाद वे शांत, तनावमुक्त और प्रकाशमान जैसे दिखते थे। कई बार उसकी थकान के कारण वे दिन में ही नींद की झपकी भी ले लेते थे। कई बार वह देवछाया थोड़ी देर के लिए और हल्की आती थी। कई बार ज्यादा देर के लिए और बहुत शक्तिशाली आती थी। कई बार नाममात्र की आती थी। कुछेक बार तो बिल्कुल भी नहीं आती थी। फिर कुछ दिनों बाद वह प्रक्रिया दुबारा करनी पड़ती थी, जिसे स्थानीय भाषा में नमाला कहते हैं। साल में इसे 1-2 बार करना पड़ता था, खासकर नई फसल के दौरान। कई बार तात्कालिक विवाद को मिटाने के लिए इमरजेंसी अर्थात आपात परिस्थिति में भी देवता को बुलाना पड़ता था। देव-छाया जितनी मजबूत आती थी, उसे उतना ही शुभ माना जाता था।

वैसे जिन्न अच्छे भी हो सकते हैं, जो किसीका नुकसान नहीं करते, फायदा ही करते हैं। यह उपरोक्तानुसार संस्कारों पर और जिन्न को हैंडल करने के तरीके पर निर्भर करता है। यदि कुंडलिनी जैसी दिव्य शक्ति हमेशा शैतान हुआ करती, तो जिन्न कभी अच्छे न हुआ करते। इसका मतलब है कि कुंडलिनी शक्ति के हैंडलर पर काफ़ी निर्भर करता है कि वह क्या गुल खिलाएगी। सलत या नमाज ही कुंडलिनी योग है। इसमें भी वज्रासन में घुटनों के बल बैठा जाता है। कुछ अल्लाह का ध्यान किया जाता है, जिससे स्वाभाविक है कि माथे पर आज्ञा चक्र क्रियाशील हो जाएगा। तब आगे को झुककर माथे को अर्थात उस पर स्थित आज्ञा चक्र को जमीन पर छुआया या रगड़ा जाता है। उससे अज्ञाचक्र पर कुंडलिनी या अल्लाह का ध्यान ज्यादा मज़बूत होकर शरीर में चारों तरफ एक ऊर्जा प्रवाह के रूप में घूमने लगता है। फिर पीठ को ऊपर उठाकर आदमी फिर से

सीधा कर लेता है, और आँखें बंद रखता है। इससे वह घूमती हुई ऊर्जा बोतलनुमा शरीर में बंद होकर बाहर नहीं निकल पाती, क्योंकि आँख रूपी बोतल का ढक्कन भी बंद कर दिया जाता है। जरूरत पड़ने पर जब आदमी दुनियादारी में काम करने लगता है, तो वह कुण्डलीनिनुमा ध्यान बाहर आकर बाहरी दुनिया में दिखने लग जाता है, और उसे सहानुभूति देकर उसकी काम में मदद करता है, और उसे तनाव पैदा नहीं होने देता। फिर अगले सलत के समय ध्यान के बल से वह ध्यान चित्र फिर शरीर के अंदर घुस जाता है, जिसे वहाँ पूर्ववत फिर बंद कर दिया जाता है। आप समझ ही गए होंगे कि इसका क्या मतलब है। फिर भी मैं बता देता हूँ। सलत ही कुंडलिनी योग है। वज्रासन ही योगासन है। अज्ञाचक्र या माथा ही चिराग है। जमीन पर माथा रखना या आज्ञाचक्र के साथ मूलाधार चक्र का ध्यान ही चिराग को जमीन पर रगड़ना है। वैसे भी मूलाधार को जमीनी चक्र अर्थात जमीन से जोड़ने वाला चक्र कहा जाता है। दरअसल माथे को जमीन पर छुआने से आज्ञा चक्र और मुलाधार चक्र के बीच का परिपथ पूरा होने से दोनों आपस में जुड़ जाते हैं, मतलब यांग और यिन एक हो जाते हैं। उससे मन में अद्वैत और उससे प्रकाशमान कुंडलिनी चित्र का पैदा होना ही चिराग से चमकते जिन्न का निकलना है। पीठ और सिर का ऊपर की ओर बिल्कुल सीधा करके उसका शरीर में अंदर ही अंदर ध्यान करना ही उसको बोतल में भरना है। शरीर ही बोतल है। आँखों को बंद करना अर्थात इन्द्रियों के दरवाजों को बंद करना अर्थात इन्द्रियों का प्रत्याहार ही बोतल का मुँह ढक्कन लगाकर बंद करना है। ध्यान चित्र इन्द्रियों से ही बाहर निकलता है और बाहरी जगत की चीजों के ऊपर आरोपित हो जाता है। इसे बोतलनुमा शरीर में कैद रखा जाता है, अर्थात इसे चक्रोँ पर गोलगोल घुमाया जाता है, और जरूरत के अनुसार बाहर भी लाया जाता रहता है। बाहर आकर यह दुनियावी व्यवहारों व कामों में अद्वैतभाव और अनासक्ति भाव पैदा करता है, जिससे मोक्ष मिलता है। साथ में, भौतिक उपलब्धियां तो मिलती ही हैं। मोक्ष के प्राप्त होने को ही सबकुछ प्राप्त होना कह सकते है। इसीलिए कहते हैं कि जिन्न सबकुछ देता हैं, या मनचाही वस्तुएँ प्रदान करता है। पवित्र कुरान शरीफ में साफ लिखा है कि बिना धुएं की आग से जिन्न पैदा हुआ। सनातन धर्म भी तो यही कहता है कि जब यज्ञ की अग्नि चमकीली, भड़कीली और बिना धुएं की हो जाती है, तब उसमें डाली हुई आहुति से यज्ञ का देवता अर्थात कुंडलिनी प्रकट होकर उसे ग्रहण करती है, और तृप्त होती है। मैंने खुद ऐसा कई बार महसूस किया है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि जिन्न और कुंडलिनी एक ही चीज के दो नाम हैं। बुरे जिन्न से बचने के लिए अच्छे जिन्न को बढ़ावा देना चाहिए। अल्लाह या भगवान के ध्यान से और योग से अच्छा जिन्न साथ देता है, नहीं तो बुरा जिन्न हावी हो जाता है। मेरे साथ भी ऐसी ही दुविधा होती थी। मेरे ऊपर दो किस्म के जिन्न हावी रहते थे। एक जिन्न तो देवतुल्य, ऋषितुल्य, वयोवृद्ध, तेजस्वी, अध्यात्मवादी, कर्मयोगी, और पुलिंग प्रकार का था। दूसरा जिन्न भी हालांकि भूतिया नहीं था, पर भड़कीला, अति भौतिकवादी, विज्ञानवादी, प्रगतिशील, खूबसूरत, जवान और स्त्रीलिंग प्रकार का था। उसमें एक ही कमी थी। वह कई बार भयानक क्रोध करता था, पर मन

से साफ और मासूम था, किसी का बुरा नहीं करता था। मैंने दोनों किस्म के जिन्नों से भरपूर लाभ उठाया। दोनों ने मुझे भरपूर भौतिक समृद्धि के साथ जागृति उपलब्ध करवाई। समय और स्थान के अनुसार कभी मेरे अंदर पहले वाला जिन्न ज्यादा हावी हो जाता था, कभी दूसरे वाला। अब मेरी उम्र भी ज्यादा हो गई है, इसलिए मैं अब दूसरे वाले जिन्न का आवेश सहन नहीं कर पाता। इसलिए मुझे अब कुंडलिनी ध्यानयोग की सहायता से पहले वाले जिन्न को ज्यादा बलवान बना कर रखना पड़ता है। मेरा अनुभव इसी इस्लामिक मान्यता के अनुसार है कि लोगों की तरह ही जिन्न की जिंदगियां होती हैं। उनके लिंग, परिवार, स्वभाव आदि वैसे ही भिन्न-भिन्न होते हैं। उनकी उम्र होती है, शरीर की विविध अवस्थाएं होती हैं। वे वैसे ही पैदा होते हैं, बढ़ते हैं, और अंत में मर जाते हैं। मैंने दोनों जिन्नों को बढ़ते हुए महसूस किया, हालांकि धीमी रफ्तार से। अब तो मुझे लगता है कि पहले वाले जिन्न की उम्र पूरी होने वाली है। हालांकि मैं ऐसा नहीं चाहता। उसके बिना मुझे बुरा लगेगा। फिर मुझे किसी नए जिन्न से दोस्ती करनी पड़ेगी, जो आसान काम नहीं है। दोनों जिन्न मेरे सम्भोग से शक्ति प्राप्त करते थे। कुंडलिनी भी इसी तरह तांत्रिक सम्भोग से शक्ति प्राप्त करती है। कई बार तो वे खुद भी मेरे साथ यौनसंबंध बनाते थे। सीधा यौनसंबंध बनाते थे, ऐसा भी नहीं कह सकते, पर मुझे किसीसे यौनसंबंध बनाने के लिए प्रेरित करते थे, ताकि वे उससे शक्ति प्राप्त कर सकते। यदि यौन संबंध से यौन साथी को शक्ति न मिले पर उन जिन्नों को शक्ति मिले, तो यही कहा जाएगा कि जिन्नों से यौन संबंध बनाया, भौतिक यौनसाथी से नहीं। सामाजिक रूप में ऐसा कहते हुए संकोच और शर्म महसूस होती है, पर यह सत्य है। दूसरे वाले जिन्न से मुझे एकसाथ ही हर किस्म का रिश्ता महसूस होता था। एकबार तो पहले वाले जिन्न ने मुझे समलैंगिकता और दूसरे वाले जिन्न ने बलात्कार की तरफ भी धकेल दिया था, पर मैं बालबाल बच गया था। उस समय यौन शक्ति से छाए हुए वे मुझे मन की आँखों से बिल्कुल स्पष्ट महसूस होते थे, और कई दिनों तक मुझे आनंदित करते रहते थे। पहले वाला जिन्न जब मेरे अद्वैतपूर्ण जीवन, कर्मयोग और सम्भोग की शक्ति से अपने उत्कर्ष के चरम पर पहुंचा, तो मेरे मन में कुछ क्षणों के लिए जीवंत हो गया, जो कुंडलिनी जागरण कहलाया। दूसरे वाला जिन्न तो मेरे साथ काफी समय तक पत्नी की तरह भी रहा, उससे बच्चे भी हुए, फिर उसकी उम्र ज्यादा हो जाने से उसने मेरे साथ सम्भोग करना लगभग बंद ही कर दिया। कई बार तो ऐसा लगता था कि वे दोनों जिन्न पति-पत्नि या प्रेमी-प्रेमिका के रूप में थे, हालांकि तलाकशुदा की तरह एकदूसरे से नाराज जैसे लगते थे, और एकदूसरे की ज्यादतियों से बचाने के लिए मेरे पास बारीबारी से आते-जाते थे। इससे मैं संतुलित हो जाया करता था। यह सब मनोवैज्ञानिक अनुभव है, मन के अंदर है, बाहर भौतिक रूप से कुछ नहीं है। उन्होंने मुझसे कभी सम्पर्क नहीं किया। वे मेरे मन में ऐसे रहते थे जैसे किसी पुराने परिचित या दोस्त की याद मन में बसी रहती है। मुझे लगता है कि वे असली जिन्न नहीं थे, बल्कि जिन्न की छाया मात्र थे, अर्थात दर्पण में बने प्रतिबिम्ब की तरह। अगर असली होते, तो उनमें अपना अहंकार होता, जिससे वे मुझे परेशान भी कर सकते थे, और मेरी योगसाधना में विघ्न भी डाल

सकते थे। इसका मतलब है कि जिन्न या देवता की छाया ही योगसाधना में मदद करती है, उनका असली रूप नहीं। इसलिए यही कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति में देवता की छाया प्रविष्ट हुई है, असली देवता नहीं। यह अनुभव भी इस्लामिक मान्यता के अनुसार ही है। सनातन मान्यता भी ऐसी ही है, क्योंकि चीज एक ही है, केवल नाम में अंतर हो सकता है। सनातन मान्यता के अनुसार भूत होते हैं। जैसा यह भौतिक लोक है, वैसा ही एक सूक्ष्म लोक है। जैसे जैसे लोग भौतिक लोक में होते हैं, बिल्कुल वैसे ही सूक्ष्म लोक में भी होते हैं। जैसे-जैसे क्रियाकलाप इस स्थूल भौतिक लोक में होते हैं, बिल्कुल वैसे-वैसे ही सूक्ष्म आध्यात्मिक लोक में भी होते हैं। एकसमान समारोह, मित्रता, वैर, रोजगार, पशु-पक्षी और अन्य सबकुछ बिल्कुल एक जैसा। उस सूक्ष्म लोक के निवासियों को ही भूत कहते हैं। वे आपस में टेलीपेथी से सम्पर्क बनाकर रखते हैं। वे सबको महसूस नहीं होते। उन्हें या तो योगी महसूस कर सकते हैं, या फिर वे जिन पर उन भूतों का आवेश आ जाए। तांत्रिक योगी तो उन्हें वश में कर सकते हैं, पर साधारण आदमी को वे अपने वश में कर लेते हैं। योगी उन्हें वश में करके उन्हें योगसाधना के बल से देवता या कुंडलिनी में रूपान्तरित कर देते हैं। इसी को भूतसिद्धि कहते हैं। बुरे लोग उनसे नुकसान भी करवा सकते हैं।

यह भी लगता है कि अल्लादिन की कहानी शिवतंत्र या उस जैसी तांत्रिक मान्यता से निकली है। जिसने यह कहानी बनाई, वह गजब का ज्ञानी, तांत्रिक और जागृत व्यक्ति लगता है। सम्भवतः उसे यौन तंत्र को स्पष्ट रूप में सामने रखने में मृत्यु का भय रहा होगा, क्योंकि पुराने जमाने की तानाशाही व्यवस्था में, खासकर इस्लामिक व्यवस्था में क्या पता कौन कब इसका गलत मतलब समझ लेता, और जान का दुश्मन बन जाता। इसलिए उसने रूपक कथा के माध्यम से तंत्र को अप्रत्यक्ष रूप से लोगों के अवचेतन मन में डालने का प्रयास किया होगा, और आशा की होगी कि भविष्य में इसे डिकोड करके इसके हकदार लोग इससे लाभ उठाएंगे। एक प्रकार से उसने गुप्त गुफा में खजाने को सुरक्षित कर लिया, और रूपक कथा के रूप में उस ज्ञान -गुफा का नक्शा भूलभूलैया वाली पहेली के रूप में छोड़ दिया। फिल्मों में दिखाए जाने वाले ऐसे मिथकीय खोजी अभियान इसी रहस्यात्मक तंत्र विज्ञान को अभिव्यक्त करने वाली मनोवैज्ञानिक चेष्ठा है। इसीलिए वैसी फिल्में बहुत लोकप्रिय होती हैं। वज्र पर जहाँ यौन संवेदना पैदा होती है, उस बिंदु को चिराग कहा गया है, क्योंकि वहाँ पर योनि-रुपी जमीन से रगड़ खाने पर उसमें संवेदना-रूपी प्रकाशमान ज्योति प्रज्वलित हो जाती है। उस प्रकाशमान ज्योति पर कुंडलिनी रूपी जिन्न पैदा हो जाता है। बोतल चिराग के साथ ही रखी होती है। इससे वह कुंडलिनी-जिन्न बोतल के अंदर प्रविष्ट हो जाता है। नाड़ी-छल्ला ही वह बोतल है, जो वज्रशिखा की सतह पर संवेदना-बिंदु से शुरु होकर मुलाधार से होता हुआ पीठ में ऊपर चढ़ता है, और आगे के नाड़ी चैनल से होता हुआ नीचे आकर फिर से उस संवेदना-बिंदु से जुड़ जाता है। वज्र का वीर्यनिकासी-द्वार ही उस बोतल का मुँह है। तांत्रिक विधि से वीर्यपतन को रोककर वीर्यशक्ति को ऊपर

चढ़ाना ही जिन्न को बोतल में भरना है। वीर्यपात रोकने को ही बोतल के मुंह को ढक्कन से बंद करना कहा गया है। साँसों की शक्ति के दबाव से ही जिन्न बोतल के अंदर घूमता है। अंदर को जाने वाली सांस से वह बोतल के पिछले हिस्से से ऊपर चढ़ता है, और बाहर आने वाली सांस से बोतल की अगली दीवार को छूता हुआ नीचे उतरता है। अगर मूलाधार से लेकर सहसरार तक के पूरे शरीर को बोतल माना जाए, तो पीठ को बोतल की पिछली दीवार, और शरीर के आगे के हिस्से को बोतल की अगली दीवार कह सकते हैं। चक्रों को जोड़ने वाली मध्य रेखा को बोतल की दोनों मुख्य दीवारों की अंदरूनी सतह पर स्थित एक विशिष्ट राजमार्ग कह सकते हैं, जिस पर जिन्न दौड़ता है। चक्रों को जिन्न के विश्रामगृह कह सकते हैं। वज्र को बोतल की गर्दन कह सकते हैं। आश्चर्यजनक समानता रखने वाला रूपक है यह। इस बोतल-रूपक के सामने तो मुझे सनातनिओं का नाग-रूपक भी फीका लग रहा है। पर नाग-रूपक इसलिए ज्यादा विशेष प्रभावशाली हो सकता है, क्योंकि नाग जीवित प्राणी और कुदरती है, उसका जमीन वाला चौड़, चौड़ा फन, दोनों को जोड़ने वाला बीच वाला पतला भाग, और कमर का गड्ढा बिल्कुल मानव-शरीर की बनावट की तरह है। जब जैसा रूपक उपयुक्त लगे, वैसे का ही ध्यान किया जा सकता है, कोई रोकटोक नहीं।

बोतल का ढक्कन खोलकर जिन्न को बाहर निकलने देने का मतलब है कि नियंत्रित और तांत्रिक तरीके से वीर्यपात किया। जिन्न के द्वारा 'क्या हुक्म मेरे आका' कहने का मतलब है, जिन्न या कुंडलिनी का बाहरी जगत में स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होना। हालांकि जिन्न मन में ही होता है, पर वीर्य शक्ति के साथ बाहर गया हुआ महसूस होता है। फिर जिन्न के द्वारा आदमी के सभी कामों में मदद करने का अर्थ है, जिन्न का सभी कामों के दौरान एक विश्वासपात्र मित्र के रूप में अनुभव होते रहना। इससे दुनिया में अद्वैत और अनासक्ति का भाव बना रहता है, जिससे भौतिक सुखों के साथ आध्यात्मिक मुक्ति भी मिलती है। कुण्डलिनी रूपी जिन्न को शरीररूपी बोतल के अंदर कुण्डलिनी-योग-ध्यान की खुराक से लगातार पालते रहना पड़ता है। इससे वह शक्ति का संचय करता रहता है, और बाहर खुले में छोड़े जाने पर योगसाधक के बहुत से काम बनाता है। यह ऐसे ही है जैसे राजा लोग अपने अस्तबल में घोड़ों का पालन-पोषण बड़े समर्पण और प्यार से करवाते थे। उससे बलवान बने घोड़े जब बाहर खुले में निकाले जाते थे, तो बड़ी निष्ठा और समर्पण से राजा के काम करते और करवाते थे, शिकार करवाते थे, रथ खींचते थे, युद्ध में मदद करते थे, भ्रमण करवाते थे आदि।

पानी यिन है, और तनाव व भागदौड़ से भरा मनुष्य का तनमन याँग है। इसीलिए झील आदि के पास शांति मिलती है। वृक्ष का जड़ अर्थात अचेतन आकार यिन है, और उसमें जीवन याँग है। इसीलिए वृक्ष को देवता कहते हैं, और लोग अपने घरों के आसपास सुंदर वृक्ष लगाते हैं। मुलाधार यिन है, आज्ञा या सहस्रार चक्र यांग है। पत्थर आदि की चित्रविचित्र जड़ या मृत प्रतिमाऐं और मूर्तियां यिन है, और उनमें चेतन या जीवित देवता

का ध्यान याँग है। यिनयांग की सहायता से सिद्ध होने वाला दुनियादारी वाला व्यावहारिक योग ही क्रियाशील कुंडलिनीयोग है। दूसरी ओर, कई बार बैठक वाले कुंडलिनी योगी की कुंडलिनी उम्रभर घुमती रहती है, पर वह जागृत नहीं हो पाती, और अगर होती है, तो बड़ी देर से होती है। इसीको इस तरह से कहा गया है कि गणेश ने ब्रह्मांड की परिक्रमा पहले कर ली। गणेश का विवाह कर दिया गया। उसको सिद्धि और बुद्धि नाम की दो कन्याएँ पत्नियों के रूप में प्रदान कर दी गईं। इनसे उसे क्षेम और लाभ नाम के दो पुत्र प्राप्त होते हैं। दरअसल यिन-यांग गठजोड़ दुनियादारी से सम्बंधित है। यह अनेक प्रकार के विरोधी गुणों वाले लोगों को साथ लेकर चलने की कला है। नेतृत्व की कला है। इससे प्रेमपूर्ण भौतिक सम्बंध बनते हैं, दुनिया में तरक्की मिलती है। नए-नए अनुभव मिलते हैं। इन्हीं दुनियावी उपलब्धियों को सिद्धि और बुद्धि कहा गया है। जबकि बैठक वाला कुंडलिनी योगी दुनिया से विरक्त की तरह रहता है। इससे उसे दुनियावी भौतिक लाभ नहीं मिलते। इसीको कार्तिकेय का अविवाहित होकर रहना बताया गया है। ऐसा उसने नारद मुनि की बातों में आकर नाराज होकर किया। नारद मुनि ने उसके कान भरे कि शिवपार्वती ने उसके साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है, और उसे गणेश की तुलना में बहुत कम आंका है। इससे वह नाराज होकर अपने मातापिता के निवासस्थान कैलाश पर्वत को छोड़कर क्रौंच पर्वत को चला जाता है, और वहीँ स्थायी रूप से निवास करने लगता है। आज भी उत्तराखंड स्थित क्रौंच पर्वत पर कार्तिकेय का रमणीय मंदिर है। शिवपार्वती आज भी प्रेम के वशीभूत होकर साल में एकबार उससे मिलने आते हैं। तब वहाँ मेला लगता है। वास्तव में कुंडलिनी योगी का मन ही नारद मुनि है। जब वह देखता है कि तांत्रिक किस्म के शरीरविज्ञान-दार्शनिक लोग दुनिया में हर किस्म का सुख, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष एकसाथ प्राप्त कर रहे हैं, पर उसे न तो माया मिल रही है और न ही राम, तब वह अपनी तीव्र कुंडलिनी योगसाधना कम कर देता है। इस प्रकार से हम गणेश जैसे स्वभाव वाले लोगों को तांत्रिक कर्मयोगी भी कह सकते हैं। इसीलिए गणेश चतुर व्यापारियों का मुख्य देवता होता है। आपने भी अधिकांश व्यापार-प्रचारक वार्षिक कैलेंडरों पर गणेश का चित्र बना देखा ही होगा। और उनमें साथ में लिखा होता है, 'शुभ लाभ'। प्राचीन सभ्यताओं में इसीलिए देवीदेवताओं के प्रति भरपूर आस्था होती थी। पर बहुत से अब्रहामिक एकेश्वरवादियों ने उनका विरोध करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। आज भी आदिवासी जनजातियों में यह देवपूजन प्रथा विद्यमान है। हरेक कबीले का अपना खास देवता होता है। हिमालय के उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में मैंने खुद यह शक्तिशाली अद्वैत व कर्मयोग पैदा करने वाली प्रथा देखी है। हिमाचल का कुल्लू जिले का मलाणा गाँव तो इस मामले में विश्वविख्यात है। वहाँ सिर्फ देवता का प्रशासन काम करता है, किसी सरकारी या अन्य तंत्र का नहीं। उपरोक्तानुसार पत्थर आदि की चित्रविचित्र जड़ प्रतिमाऐं और मूर्तियां यिन है, और उनमें चेतन देवता का ध्यान याँग है। इस यिन -यांग के मिश्रण से ही सभी भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ मिलती हैं, हालांकि मिलती हैं कुंडलिनी के माध्यम से ही, पर रास्ता कर्मयोग व दुनियादारी वाला है। मतलब कि बैठक वाला कुंडलिनी योगी

ज्यादा समय दुनिया से दूर नहीं रह सकता। वह जल्दी ही हतोत्साहित होकर अपनी कुंडलिनी को सहस्रार से आज्ञा चक्र को उतार देता है। वहाँ वह बुद्धिपूर्वक भौतिक जीवन जीने लगता है, हालांकि यिन-यांग गठजोड़ अर्थात शिवपार्वती से दूर रहकर, क्योंकि उसे दुनियादारी की आदत नहीं है। साथ में, वह ज्यादा ही आदर्शवादी बनता है। यही उसका शिवपार्वती अर्थात परमात्मा से नाराज होना है। दरअसल शिवपार्वती गठजोड़ ही असली परमात्मा हैं। अकेले शिव भी पूर्ण परमात्मा नहीं, और अकेली पार्वती भी नहीं। सहस्रार ही कैलाश और आज्ञाचक्र ही क्रौंच पर्वत है, जैसा कि एक पिछले अध्याय में बताया गया है। शिव परमात्मा उसे अपनी तरफ आकर्षित करते रहते हैं, पुत्र-प्रेम के कारण। वैसे भी जीव शिव परमात्मा का पुत्र ही तो है। कई बार अल्प जागृति के रूप में उससे मिल भी लेते हैं। यही शिवपार्वती का प्रतिवर्ष उससे मिलने आना कहा गया है।

अध्याय-30

कुंडलिनी योग में सहायक शीतजल स्नान~कुंडलिनी जागरण के स्वघोषित दावे की पुष्टि के लिए जाँच में अहम

दोस्तों, मैं पिछले अध्यायों में बता रहा था कि कि कैसे सम्भोग योग पूरी तरह से शिवपुराण में उल्लिखित कार्तिकेय जन्म की प्रसिद्ध कथा पर आधारित है। कबूतर बने अग्निदेव ने कैसे शिवतेज को सप्तऋषि-पत्नियों के रूप में निरूपित चक्रौँ को देकर अपनी जलन को कम किया। वे ऋषिपत्नियां कड़ाके की ठंड के महीने में सुबह के ब्रह्म मुहूर्त में ठंडे पानी से नहाती थीं। दरअसल वे ठंड से काम्पती हुई ऋषिपत्नियां अग्निदेव के पास तपिश लेने गईं। अग्नि की चिंगारी के साथ शिवतेज उनके अंदर प्रविष्ट हो गया। होता क्या है कि ठंडे पानी से नहाते समय चक्रौँ की मांसपेशियों में ठंड से सिकुड़न पैदा हो जाती है जिससे पेट में ऊपर की तरफ खिंचाव लगता है। इससे स्वाधिष्ठान चक्र के निकट यौनाँग पर स्थित वीर्यतेज ऊपर की तरफ चढ़कर सभी सातों चक्रौँ में फैल जाता है। इससे प्रॉस्टेट का दबाव भी कम हो जाता है, या यूँ भी कह सकते हैं कि ऊर्जा की कमी से पेशाब को रोक कर रखने वाली मांसपेशियां ढीली पड़ जाती हैं, इसीलिए ठंडे पानी से नहाते समय बारबार और खुलकर पेशाब आता है। डर के समय भी लगभग यही प्रक्रिया होती है, इसीसे यह कहावत बनी है कि वह इतना डर गया कि उसकी पेंट गीली हो गई। दरअसल डर से मस्तिष्क में अंधेरा या शून्य सा छा जाता है, जो ऊर्जा को नीचे से ऊपर की ओर चूसता है। उस तेज की शक्ति से चक्रौँ पर मांसपेशियों की सिकुड़न और ज्यादा बढ़ने से उन पर गर्मी पैदा हो जाती है। यही ऋषिपत्नियों के द्वारा आग की तपिश लेना और उसके माध्यम से शिवतेज को प्राप्त करना है। इससे चक्रौँ पर रक्तसंचार बढ़ जाता है, जिससे वहाँ कुंडलिनी चित्र चमकने लगता है, क्योंकि जहाँ पर रक्त या वीर्य या प्राण है, वहीं पर कुंडलिनी है। दरअसल रक्त की अपेक्षा वीर्य तेज कुंडलिनी को बहुत अधिक शक्ति देता है। इसीलिए कहते हैं कि रक्त की हजारों बूंदों से वीर्य की एक बूंद बनती है। चक्र की सिकुड़न के साथ यदि स्वाधिष्ठान व मूलाधार चक्र की वीर्य जलन का ध्यान न किया जाए, तो उस चक्र पर कुंडलिनी चित्र नहीं बनता, सिर्फ सिकुड़न ही रहती है। इसीलिए कहते हैं कि कुंडलिनी मूलाधार में निवास करती है। इसी कुंडलिनी चित्र को ऋषिपत्नियों का गर्भस्थित बालक कहा गया है, क्योंकि जैसे वीर्य से गर्भ बनता है, उसी तरह कुंडलिनी चित्र भी बनता है। इसीलिए भगवान शिव देवी पार्वती द्वारा शापित कबूतर बने अग्निदेव को आश्वासन देते हुए कहते हैं कि वह उनके वीर्य तेज को सप्तऋषि पत्नियों को दे, जिससे उसकी जलन शांत हो जाएगी। आश्चर्य होता है शिवपुराण की इस नायाब और वैज्ञानिक तरीके से

कही गई कथा पर। जैसे सम्भोग योग से वीर्यतेज ऊपर चढ़ता है, वैसे ही ठंडे जल से स्नान से भी। इसीलिए सम्भोग योग और शीतजल स्नान दोनों क्रियाओं को एक जैसा दिखाया गया है। यानी सामाजिक रूप से शर्मनाक कारणों से ठंडे पानी के स्नान के रूप में यौन योग से ओतप्रोत कहानी को अच्छी तरह से बताया गया है। यह एक अच्छा विकल्प है। यह एक बुद्धिमान युक्ति है। हो सकता है कि जो भगवान शिव को बर्फीली पर्वत चोटियों में निवास करते हुए दिखाया गया हो और शिवलिंगम को लगातार बूँदबूँद गिर रहे पानी से नहाया जाता हो, और बरसात के मौसम के वर्तमान के जुलाई-अगस्त अर्थात श्रावण के महीने को भी इसी कारण से शिव-विशिष्ट महीना माना गया हो। स्वर्ग से नीचे गिरती हुई गंगा नदी शिव को स्नान कराते हुए ही धरा के ऊपर प्रविष्ट होती है। मैं यहाँ कुछ दार्शनिक जुगाली भी करना चाहूंगा। सम्भोग का प्राथमिक उद्देश्य कुंडलिनी जागरण लगता है, संतानोत्पत्ति तो द्वितीयक या सहचर उद्देश्य है सम्भवतः। संतान इस इनाम के तौर पर है कि फलां आदमी ने कुंडलिनी जागरण प्राप्त करके अपना जीवन सफल कर लिया है, अब वह अपने जैसी संतान को पैदा करके उसका जीवन सफल करने में भी मदद करे। इसका प्रमाण है, गृहस्थ आश्रम से पहले ब्रह्मचर्य आश्रम का होना। इसमें आदमी द्विज मतलब जागृत बन जाता था। ब्रह्मचर्य का मतलब ही वीर्य शक्ति को बर्बाद न करके ऊपर चढ़ाना है। यह अलग बात है कि यदि इस आश्रम अवस्था में कोई कमजोर आदमी कुंडलिनी जागरण को प्राप्त न कर पाए, तो गृहस्थ आश्रम में भी कुछ वर्षों तक सम्भोग योग की मदद ले सकता है। यह ऐसे ही है जैसे कोई कमजोर बच्चा अगली कक्षा में जाने के बाद भी पिछली कक्षा की कमी को पूरा करने के लिए अतिरिक्त समर्पित कोचिंग या प्रशिक्षण लेता है। इसे सुपर ब्रह्मचर्य या आपातकालीन ब्रह्मचर्य या एकस्ट्राआर्डिनरी ब्रह्मचर्य कह सकते हैं। जब से संतानोत्पत्ति सम्भोग का प्राथमिक उद्देश्य बना, तब से ही लोग कुंडलिनी जागरण को भी भूलने लगे और विश्व की जनसंख्या भी बेतरतीब बढ़ने लगी। मैं फेसबुक में पढ़ रहा था कि फलां आदमी ने तीस हजार लोगों को उनके पिछले जन्मों की याद दिला दी, और फलां आदमी ने दस हजार लोगों को। क्या किसी ने किसी को कुंडलिनी जागरण भी करवाया, इसकी कोई चर्चा नहीं। मुख्य काम पीछे, गौण काम आगे। इधर ये वर्तमान जीवन ही भुलाए नहीं भूलता, और उधर कुछ लोग गत जन्मों के जीवनों को भी याद कराने में लगे हैं। अजीब और हास्यास्पद विडंबना लगती है यह। मुझे तो यह भी लगता है कि आगे वाले चैनल को अर्धनारीश्वर के बाएं अर्थात स्त्री भाग और मेरुदण्ड वाले चैनल को दाएं अर्थात पुरुष भाग के रूप में दिखाया गया है। यब-युम आसन भी तो ऐसा ही होता है। सम्भवतः यब-युम आसन के प्रति लज्जा संकोच के कारण ही ऐसा दिखाया गया हो। वैसे भी फोटो वगैरह टू डिमेंशनल बैकग्राउंड पर थ्री डिमेंशनल यब-युम को दिखा भी नहीं सकते। पर मूर्ति में तो दिखा सकते थे। इसलिए लज्जा संकोच ही मुख्य वजह लगती है। ये दोनों चैनल जुड़कर एक होने की कोशिश करते हैं। इससे मूलाधार की शक्तिशाली कुंडलिनी ऊर्जा एक तरंग के रूप में ऊपर चढ़ती हुई और सभी चक्रोँ को भेदती हुई सहस्रार में प्रविष्ट हो जाती है, और मुड़कर वापिस नीचे नहीं

आती, क्योंकि आगे वाला कुंडलिनी चैनल पीछे वाले चैनल में मर्ज हो जाता है। मतलब दोनों चैनलों के जुड़ने से सुषुम्ना नाम का एक केंद्रीय चैनल खुल जाता है। सम्भवतः रीढ़ की हड्डी से थोड़ा आगे स्थित बायाँ अर्थात इड़ा चैनल है, और रीढ़ की हड्डी के थोड़ा पीछे मतलब पीठ की चमड़ी को छूता हुआ चैनल दायां अर्थात पिंगला है। रीढ़ की हड्डी के केंद्र में स्थित स्पाइनल कॉर्ड सुषुम्ना चैनल है। सम्भवतः यही यिन-यांग अर्थात स्त्री-पुरुष आकर्षण का मूलभूत वैज्ञानिक सिद्धांत है। वैसे बहूक्त बायाँ और दायां चैनल भी यथावत अस्तित्व में है। मैं तो बाएं चैनल को मेरुदण्ड के आगे खिसकाकर और दाएं चैनल को मेरुदण्ड के पीछे को खिसकाकर उन्हें अतिरिक्त आयाम प्रदान कर रहा हूँ।

सबको पता है कि जैसे ही चक्र सिकुड़न के माध्यम से गर्मी प्राप्त करते हैं, वैसे ही उनको वीर्यतेज भी प्राप्त हो जाता है। ऋषिपत्नियों ने वह तेज हिमालय को मतलब रीढ़ की हड्डी को दिया। ज़ब शरीर पर ठंडा पानी गिरता है तो योग-श्वासों के साथ उड्डीयान बंध खुद ही लगता है। इसमें पेट अंदर और ऊपर की तरफ भिंचता है। इससे चक्रों की जलन मेरुदण्ड को चली जाती है। मेरुदण्ड उस तेज को गंगा नदी मतलब सुशुम्ना नाड़ी को दे देता है। सुषुम्ना उसे किनारों पर उगे सरकंडों मतलब सहस्रार चक्र को देती है, जहाँ कार्तिकेय का जन्म मतलब कुंडलिनी जागरण या कुंडलिनी क्रियाशीलन होता है। यदि सुषुम्ना नाड़ी पूरी खुल जाए तो कुंडलिनी जागरण अन्यथा कुंडलिनी क्रियाशीलन होता है। मतलब कुंडलिनी चित्र मस्तिष्क में सजीव या वास्तविक भौतिक चित्र के जैसा बन जाता है। यही ठंडे पानी से स्नान का महत्त्व है, जिसका वर्णन हर धर्म में है। ईसाई धर्म के बैपटिस्म में भी सम्भवतः ठंडे पानी से सम्भव इसी शारीरिक क्रिया से मस्तिष्क में कुंडलिनी चित्र जीवंत हो जाता है, जिसे इनीशिएशन कहते हैं, जिससे आदमी आध्यात्मिक मुक्ति के पथ पर आरूढ़ हो जाता है। इसीलिए बैपटिस्म चमत्कारी असर दिखाता है अक्सर। गंगा नदी में स्नान के लिए श्रद्धालुओं की भीड़ इसीलिए लगी रहती है। गंगा नदी का पानी बर्फीला ठंडा होता है जिसमें नहाने से कुंडलिनी शक्ति आनंद पैदा करते हुए दौड़ती है। सनातनिओं में एक ऋषि पंचमी का व्रत होता है, जिसमें महिला को ठंडे पानी के झरने या तलाब में लगातार लम्बे समय तक नहाना पड़ता है, और पवित्र दाँतुन भी करते रहना पड़ता है। सम्भवतः दाँतुन करने से मस्तिष्क की अतिरिक्त ऊर्जा आगे के चैनल से नीचे उतरती रहती है, जिससे कुंडलिनी को घूमने में आसानी होती है, जिससे ठंड भी नहीं लगती। दरअसल मांसपेशियों की सिकुड़न और नाड़ी का चालन शरीर में गर्मी पैदा करके ठंड से बचाने की शरीर की कुदरती चेष्ठा है, कुंडलिनी लाभ तो सहलाभ अर्थात सेकण्डरी है। तिब्बती बुद्धिस्ट बर्फ की शिलाओं को अपने ऊपर रख कर पिघलाते हैं। इस मुकाबले में जो जितनी ज्यादा शिलाएं पिघलाता है, वह उतना ही बड़ा योगी माना जाता है। सबसे ज्यादा बर्फ की शिलाएं पिघलाने वाला विजयी घोषित किया जाता है। यह ध्यान शक्ति को मापने का अच्छा तरीका है। चक्रों पर कुंडलिनी ध्यान से वहाँ पर मांसपेशी की सिकुड़न से गर्मी पैदा होती है, जो बर्फ को पिघलाती है। मैं पिछले अध्याय में सोच रहा था कि काश किसी के कुंडलिनी जागरण

के स्वघोषित दावे को जाँचने का तरीका होता। चाह के कुछ न कुछ मिल ही जाता है। बर्फ की शिलाओं को शरीर पर पिघलाने वाला वही यह तरीका है। यह साधारण, अप्रत्यक्ष, कारगर और व्यावहारिक तरीका है। इसमें खून का सैंपल लेकर उसमें संभावित कुंडलिनी मार्कर को खोजने की जरूरत नहीं है। बेशक कुंडलिनी जागरण का इससे प्रत्यक्ष तौर पर पता न चलता हो, पर कुंडलिनी ध्यान की शक्ति को मापकर अप्रत्यक्ष तौर पर तो पता चल ही जाता है, क्योंकि कुंडलिनी जागरण से कुंडलिनी ध्यान शक्ति में एकदम से इजाफा होता है। यह अलग बात है कि कुंडलिनी योग के लम्बे ध्यान से कुंडलिनी ध्यान शक्ति में बिना जागरण के ही इजाफा हो जाता है। मुख्य चीज यही कुंडलिनी ध्यान शक्ति है, कुंडलिनी जागरण नहीं, ऐसा लगता है मुझे। हालांकि कुंडलिनी जागरण का अपना अलग ही शैक्षणिक और आधिकारिक महत्त्व है। इस जाँच तकनीक से कुंडलिनी जागरण का अंदाजा ही लगाया जा सकता है, उसकी पुष्टि नहीं की जा सकती। इस तकनीक में एक कमी और लगती है। यदि किसी योगी में पर्याप्त कुंडलिनी ध्यान शक्ति है, पर वह कमजोर है, तो सम्भवतः वह ज्यादा देर तक चक्रोँ की सिकुड़न नहीं बनाए रख पाएगा, ऊर्जा की कमी से। यह मेरा अपना अनुमान है, हो सकता है कि ऐसा न हो। पर आम लोगों को बिना अभ्यास के ऐसा नहीं करना चाहिए। ठंड भी लग सकती है। पहाड़ों की तरह ठंडे स्थानों में रहने वाले लोग कुंडलिनी शक्ति के कारण ही ज्यादा चुस्त होते हैं, ऐसा लगता है।

नई चीज को पुरानी चीज से जोड़ने से उसके प्रति लोगों की सकारात्मक सोच कुप्रभावित हो सकती है

मैं पिछले अध्याय में बता रहा था कि जहाँ तक मुझे लगता है, ओशो महाराज ने सम्भोग योग से संबंधित अपने दर्शन को पुरानी मान्यताओं से ज्यादा नहीं जोड़ा। इससे उनकी दार्शनिक चतुराई और निपुणता भी झलकती है। होता क्या है कि हर कोई पुरानी चीज से उबा हुआ जैसा होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। आप एकबार स्टेच्यु ऑफ़ यूनिटी घूम आओ, तो दुबारा वहाँ जाने से अच्छा किसी नई जगह को जाना लगता है। इसी तरह, लोगों का अक्सर पुरानी चीजों के प्रति लगाव नई और आधुनिक चीजों से कम होता है। हालांकि कुछ लोगों के साथ उल्टा भी होता है। वे बनी बनाई पुरानी मान्यताओं पर ज्यादा विश्वास करते हैं। उन्हें उनके रहस्योद्घाटन से विशेष लाभ मिल सकता है। कईयों का किसी विशेष धर्म या जीवनपद्धति से पहले ही विशेष पूर्वाग्रह या दुराग्रह बना होता है। अगर वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार खोजी गई तकनीक या दर्शन के लिए बारबार पुरानी या किसी विशेष पद्धति का हवाला दिया जाता रहेगा, तो उसकी नवीनता और रोचकता क्षीण होने लगेगी। इसलिए लगता है कि यह अच्छा रहेगा यदि ऐसा हवाला कम से कम और केवल संदर्भ मात्र के लिए दिया जाए। इससे नवीनता का लाभ भी मिलेगा, और नई पद्धति की प्रामाणिकता पर भी संदेह नहीं होगा। हाँ,

पुरानी पद्धतियों का वैज्ञानिक व अनुभव आधारित रहस्योद्घाटन निःसंकोचतापूर्वक किया जा सकता है। सम्भवतः इसीलिए महान चाइनीज दार्शनिक कन्फुसियस कहते थे कि नई परम्पराएं पुरानी परम्पराओं से जुड़ी होनी चाहिए।

अध्याय-31

गंगास्नान से जो पाप धुलते हैं, वे योग से ही धुलते हैं~ सहस्रार के लिए एक अद्‌भुत मार्ग

गंगा में स्नान करने से पाप धुलते हैं, ऐसा कहा जाता है। दरअसल ऐसा कुंडलिनी शक्ति के मूलाधार से सहस्रार की तरफ चढ़ने से होता है। कहते हैं कि उन पापों को वहाँ आने वाले ऋषिमुनि ग्रहण कर लेते हैं। इसका मतलब है कि जब मस्तिष्क में शक्ति के पहुंचने से वह बहुत शक्तिशाली हो जाता है, तब उसमें किसी देवता या गुरु का जो चित्र कुंडलिनी चित्र अर्थात ध्यान चित्र के रूप में उभरता है, उसमें उन तपस्वी लोगों का बहुत ज्यादा योगदान होता है। वही कुंडलिनी चित्र पापों को जलाता है, सीधा गंगास्नान नहीं। मतलब कि पापों का नाश गंगास्नान से हो रहे योग से ही होता है। यदि ध्यान चित्र नहीं बनेगा, तब मस्तिष्क की बेकाबू शक्ति अमानवीय कामों या लड़ाईझगड़े की तरफ भी जा सकती है। पुतिन बर्फीले पानी में आराम से नहा लेते हैं, पर कुंडलिनी जागरण के लिए नहीं, लड़ने के लिए। इसलिए योग के साथ ध्यान भी जरूरी है। मैं यह भी बता रहा था कि यदि कमजोरी या ठंड महसूस होए तो ठंडे पानी से नहीं नहाना चाहिए। इसी तरह यदि समय की कमी हो तो भी ठंडे पानी से नहीं नहाना चाहिए। कम से कम आधा घंटा तो चाहिए ही शीतजल स्नान के लिए। नहाते समय बीचबीच में मांसपेशियों की सिकुड़न के साथ कुंडलिनी शक्ति को घुमाते रहना पड़ता है, ताकि उससे गर्मी पैदा होती रहे और ठंड का असर कम होए। स्नान के एकदम बाद योग व व्यायाम कर लेना चाहिए ताकि जल्दी से जल्दी शरीर को पर्याप्त गर्मी मिल सके। शाम के समय अतिरिक्त समय भी ज्यादा होता है, और दिनभर की क्रियाशीलता से गर्मी भी चढ़ी होती है, इसलिए शाम को नहाया जा सकता है।

अध्याय-32

सनातन स्वस्तिक चिह्न का अध्यात्मवैज्ञानिक रहस्य~ स्वस्तिक का केंद्रीय बिंदु एक पूर्ण और संतुलित इंसान का प्रतिनिधित्व करता है

त्रिआयामी स्वस्तिक चिह्न में आगे की तरफ की छोटी डंडी यम है, और पीछे की तरफ की छोटी डंडी यब है। दोनों डंडियां सीधी खड़ी लम्बी डंडी से जुड़ी हैं, मतलब यब और युम एक होकर बढ़ी हुई जागृति का निर्माण कर रहे हैं। इसी तरह दो छोटी डांडियां शरीर के बाएं भाग के यब और शरीर के दाएं भाग के युम को दर्शाती हैं, क्योंकि वे दोनों इसी दिशा में थोड़ी लम्बी व तिरछी डंडी से आपस में जुड़ी हैं। यह भी बढ़ी हुई जागृति दिखाती है। फिर खड़ी और तिरछी दोनों लम्बी डंडीयां केंद्र में एक बिंदु पर आपस में जुड़ी हैं। इसको दोनों तरफ के यब-युम जोड़ों की बराबर शक्ति मिल रही है, इसलिए यह बिंदु सबसे शक्तिशाली है। इसका मतलब है कि अपने शरीर के अंदर के दाएं-बाएं भाग के यब-युम को संतुलित करने के साथ ही स्त्री-पुरुष जोड़े वाला अर्थात शरीर के आगे-पीछे के भागों वाला यब-युम भी संतुलित होना चाहिए। और दोनों किस्म के यब-युम जोड़े भी आपस में संतुलित होने चाहिए। यह अलग बात है कि क्या कोई अपने शरीर के अंदर ही स्त्री-पुरुष जोड़ा ढूंढ लेता है, तो कोई बाहर से किसी यौन साथी की सहायता लेता है।

अध्याय-33

नाड़ियों का जाल ही शिव पर लिपटे सर्प हैं~ नागों से भरा मानव शरीर

भगवान शिव पर लिपटे सर्प आदि को देखकर पार्वती की मां मैना डर गई थीं। दरअसल शिव एक महा योगी थे। उनके शरीर की हरेक नाड़ी जागृत थी, केवल सुषुम्ना ही नहीं। इससे वे हरेक नाड़ी में सरसराहट के साथ कुंडलिनी को महसूस करते रहते थे हमेशा। स्वाभाविक है कि उन सरसराहटों को अनुभव करते हुए उनके अंगों का स्वभाव व उनकी चाल भी सर्प की तरह हो गई हो, जिसे मैना महसूस कर पा रही हो। शायद योगी गोपीकृष्ण के साथ भी ऐसा ही होता था। उन्हें अपने शरीर की हरेक नाड़ी की गति महसूस होती थी। इससे वे परेशान भी हो गए थे। फिर वे उसके अनुसार ढल भी गए थे। इसी पर आधारित सुंदर रचना है शिवपुराण में, त्रिपुरासुर वध की, जो मैं निचले पैराग्राफ में लिख रहा हूँ, संक्षेप में।

अध्याय-34

त्रिपुरासुर राक्षस प्रकृति के तीन गुण हैं, और कुंडलिनी जागरण ही उनको मारना है~ एक शिव पुराण कथा का रहस्योद्‌घाटन

एक राक्षस का पुर सोने का, एक का चांदी का और एक का लोहे का था। ये क्रमशः सत्त्व, रजस और तमो गुण के प्रतीक हैं। राक्षस मतलब इन गुणों के साथ उठने वाली आसक्तिपूर्ण भावनाएँ। इनको मारने के लिए शिव मतलब आत्मा ने शरीर रूपी रथ बनाया, मंन्द्राचल मतलब मेरुदण्ड को धनुष बनाया, और वासुकि नाग मतलब सुषुम्ना नाड़ी को बाण बनाया। राक्षसों से युद्ध किया मतलब मूलाधार से कुंडलिनी शक्ति को योगसाधना से सुषुम्ना के रास्ते ऊपर चढ़ाया और उसे सहस्रार में जागृत किया। उससे प्रकृति के तीनों गुणों के प्रति सारी आसक्ति खत्म हो गई मतलब त्रिपुरारि राक्षस मर गए। इससे शरीर में बसने वाले देवता खुश हो गए क्योंकि वे शरीर के बंधन से मुक्त हो गए। कभी समय लगा तो इस पर और प्रकाश डालूंगा, पर मूल चीज यही है।

उज्जैन का महाकाल ज्योतिर्लिङ्ग

उज्जैन में महाकाल मंदिर में यह त्रिपुरासुर वाली घटना घटी थी, ऐसा कहते हैं। इसीलिए अभी हाल ही में निर्मित भव्य महाकाल कोरिडोर में इसको दर्शाती मूर्तियां और कलाकृतियाँ प्रमुखता से सबसे मुख्य स्थान पर लगाई गई हैं। त्रिपुरासुरों को मारने के कारण ही महादेव शिव को त्रिपुरारि भी कहते हैं।

अध्याय-35

क्या हम स्वाधिष्ठान चक्र के जागरण को बिमारी तो नहीं मान रहे? प्रोस्टेट संभोग शिश्न संभोग से बेहतर है

यहाँ पर बेनाइन प्रॉस्टेट हाइपरट्रॉफी मतलब बीएचपी या प्रॉस्टेट की जलन अर्थात इन्फलेमेशन का जिक्र हो रहा है। परमात्मा शिव ने पूर्वोक्त कार्तिकेय जन्म की कथा में कबूतर बने अग्निदेव को कहा था कि तेरी जलन ठंडे जल से स्नान करने वाली ऋषिपत्नियां हर लेंगी। उस जलन को ही विज्ञान की भाषा में प्रॉस्टेट इंफ्लेमेशन अर्थात प्रॉस्टेटाइटिस या बीएचपी नामक रोग कहते हैं। कहीं यही स्वाधिष्ठान चक्र का जागरण तो नहीं, जिसे शीतजल स्नान से व कुंडलिनी योग से ठीक किया जा सकता हो। वैसे स्वास्थ्य विशेषज्ञ भी मान रहे हैं कि ज्यादातर प्रॉस्टेट प्रॉब्लम चिंता या अवसाद से होती है, जिसे दूर करने के लिए योग एक रामबाण उपाय है। बात कुल मिलाकर वही है। ठंडे जल के स्पर्ष से वह जलन दूसरे चक्रौँ पर चली जाती है, मतलब वे जागृत हो जाते हैं। इसमें सबसे ज्यादा सम्भावना मणिपुर चक्र के जागृत होने की होती है, क्योंकि चक्र क्रमवार ही जागृत होते हैं। पर ऐसा भी नहीं हमेशा। यह जलन सीधी विशुद्धि चक्र और अनाहत चक्र को भी जा सकती है। उक्त कथा के अनुसार महादेव एक हजार वर्षों तक देवी पार्वती के साथ एक गुफा में विहार करते रहे, और अंततः उनका मूलाधार चक्र और फिर स्वाधिष्ठान चक्र जागृत हो गया। जब स्वाधिष्ठान चक्र जागृत हुआ, तब वे गुफा से बाहर आए मतलब आध्यात्मिक कामक्रीड़ा से विरत हुए। मेरे बोलने का मतलब है कि स्वाधिष्ठान चक्र के जागरण के रूप में जो कुदरत का तोहफा मिलता है, लोग उसे दूर करने के लिए इलाज करवाने भागते हों या उससे परेशान होते हैं, जबकि उसकी ऊर्जा अन्य चक्रौँ को देकर कुंडलिनी लाभ भी मिलता हो, और वह शांत भी रहता हो। ये मैं इसलिए भी कह रहा हूँ क्योंकि आजकल प्रॉस्टेट की उत्तेजना या जलन से प्राप्त प्रॉस्टेट आर्गेस्म प्राप्त करने की होड़ सी लगी है। बहुत से यंत्र और तकनीकें विकसित हो रही हैं इसके लिए। अनुभवी लोग बताते हैं कि पेनाइल आर्गेस्म के विपरीत प्रॉस्टेट आर्गेस्म बहुत ज्यादा चिरस्थायी होता है, और आनंद भी ज़्यादा देता है। पेनाईल आर्गेस्म तो स्खलन के कुछ क्षणों तक ही मौजूद रहता है। इसमें वाकई अध्यात्मवैज्ञानिक शोध की जरूरत है।

अध्याय-36

शिवपुराणोक्त अन्धकासुर कथा

एक बार भगवान शिव पार्वती के साथ काशी से निकलकर कैलाश पहुंचते हैं, और वहाँ भ्रमण करने लगते हैं। एकदिन शिव ध्यान में होते हैं कि तभी देवी पार्वती पीछे से आकर उनके मस्तक पर हाथ रखती हैं, जिससे शिव के माथे की गर्मी से उनकी अंगुली से एक पसीने की बूंद जमीन पर गिर जाती है। उससे एक बालक का जन्म होता है, जो बहुत कुरूप, रोने वाला और अंधा होता है। इसलिए उसका नाम अंधकासुर रखा जाता है। उधर राक्षस हिरण्याक्ष पुत्र न होने से बहुत दुखी रहता है। वह शिव को प्रसन्न करने के लिए घोर तप करता है, और उनसे पुत्र-प्राप्ति का वर मांगता है। शिव अंधक को उसे सौंप देते हैं। वह शिवपुत्र अंधक की प्राप्ति से अति प्रसन्न और उत्साहित होकर स्वर्ग पर चढ़ाई कर देता है, जिससे देवता स्वर्ग से भागकर धरती पर छिप कर रहने लगते हैं। वह धरती को समुद्र में डुबोकर पाताल लोक में छुपा देता है। फिर भगवान विष्णु देवताओं की सहायता करने के लिए वाराह के रूप में अवतार लेकर हिरण्याक्ष को मार देते हैं और धरती को अपने दाँतों पर रखकर पाताल से ऊपर उठाकर पूर्ववत यथास्थान रख देते हैं। उधर बालक अंधक जब अपने भाई प्रह्लाद आदि अन्य राक्षस बालकों के साथ खेल रहा होता है, तो वे उसे यह कह कर चिढ़ाते हैं कि वह अंधा और कुरूप है इसलिए वह अपने पिता हिरण्याक्ष की जगह राजगद्दी नहीं संभाल सकता। इससे अन्धक दुखी होकर भगवान शिव को खुश करने के लिए घोर तप करने लगता है। वह धुएं वाली अग्नि को पीता है, अपने मांस को काटकाट कर हवनकुण्ड में हवन करता है। इससे वह हड्डी का कंकाल मात्र बच जाता है। शिवजी उससे प्रसन्न होकर उसके मांगे वर के अनुसार उसे बिल्कुल स्वस्थ व आँखों वाला कर देते हैं, और कहते हैं कि वह केवल तभी मरेगा जब किसी महान योगी की पतिव्रता स्त्री को अपनी स्त्री बनाने का प्रयास करेगा। वर से खुश और दंभित होकर अन्धक उग्र भोगविलास में डूब जाता है, अनेकों कामिनियों के साथ विभिन्न रतिवर्धक स्थानों में रमण करता है, और अपनी आयु का दुरुपयोग करता है। वह साधुओं और देवताओं पर भी बहुत अत्याचार करता है। वे सब इकट्ठे होकर भगवान शिव के पास जाते हैं। शिव उनकी मदद करने के लिए कैलाश पर पार्वती के साथ विहार करने लगते हैं। एकदिन अन्धक के सेवक की नजर देवी पार्वती पर पड़ती है, और वह यह बात अन्धक को बताता है। अंधक पार्वती पर आसक्त होकर शिव को गंदा तपस्वी, जटाधारी आदि कह कर उनका अपमान करता है और कहता है कि उतनी सुंदर नारी उसी के योग्य है, न कि किसी तपस्वी के। फिर वह सेना के साथ शिव से युद्ध करने चला जाता है। उसे शिव का गण वीरक अकेले ही युद्ध में हरा कर भगा देता है, और उसे शिवगुफा के अंदर प्रविष्ट नहीं होने देता। फिर शिव पाशुपत मंत्र प्राप्त करने के लिए दूर तप करने चले जाते हैं। मौका देखकर अंधक फिर हमला करता है। पार्वती अकेली होती है गुफा में। उसे वीरक भी नहीं रोक पा रहा

होता है। डर के मारे पार्वती सभी देवताओं को सहायता के लिए बुलाती है, जो फिर स्त्री रूप में अस्त्रशस्त्र लेकर पहुंच जाते हैं। स्त्री रूप इसलिए क्योंकि देवी के कक्ष में पुरुष रूप में जाना उन्हें अच्छा नहीं लगता। घोर युद्ध होता है। अंधक का सैनिक विघस सूर्य चन्द्रमा आदि देवताओं को निगल जाता है। चारों ओर अंधेरा छा जाता है। हालांकि वे किसी दिव्य मंत्र के जाप से उसके मुंह में घूँसे मारकर बाहर भी निकल आते हैं। तभी शिव भी वहाँ पहुँच जाते हैं। उससे उत्साहित गण राक्षसों को मारने लगते हैं। पर राक्षस गुरु शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से सभी मृत राक्षसों को पुनर्जीवित कर देते हैं। शिव को यह बात शिवगण बता देते हैं कि शुक्राचार्य उनकी दी हुई विद्या का कैसे दुरूपयोग कर रहा है। इससे नाराज होकर शिव उसे पकड़ कर लाने के लिए नंदी बैल को भेजते हैं। नंदी राक्षसों को मारकर उसे पकड़कर ले आता है। शिव शुक्राचार्य को निगल जाते हैं। वह शिव के उदर में बाहर निकलने का छेद न पाकर चारों तरफ ऐसे घूमता है, जैसे वायु के वेग से घूम रहा हो। वह वहाँ से निकलने का वर्षों तक प्रयास करता है, पर निकल नहीं पाता। फिर शिव उसे शुक्र अर्थात वीर्य रूप में अपने लिंग से बाहर निकालते हैं। इसीलिए उनका नाम शुक्राचार्य पड़ा।

दरअसल संजीवनी विद्या उन्हें एक बहुत पुराने समय में शिव ने दी होती है। वह एक बहुत सुंदर स्थान पर शिव का लिंग स्थापित करते हैं। उस पर वे शिव की कठिन अराधना करते हैं। अग्निधूम को पीते हैं, और कठिन तप करते हैं। उससे शिव लिंग से प्रकट होकर उन्हें संजीवनी विद्या देते हैं, और वर देते हैं कि वे भविष्य में उनके उदर में प्रविष्ट होकर उनके वीर्य रूप में जन्म लेंगे। वे लिंग का नाम शुक्रेश और उनके द्वारा स्थापित कुएँ का नाम शुक्रकूप रख देते हैं। वे भक्तों द्वारा उस कूप में स्नान करने का अमित फल बताते हैं।

अंधकासुर कथा का कुंडलिनी-आधारित विश्लेषण

शुक्र मतलब ऊर्जा या तेज। शुक्र, ऊर्जा और तेज तीनों एकदूसरे के पर्याय हैं। शुक्राचार्य को निगल गए, मतलब योगी शिव ने खेचरी मुद्रा में जिह्वा तालु से लगाकर कुंडलिनी ऊर्जा को आगे के नाड़ी चैनल से नीचे उतारा, जिससे वीर्यशक्ति के रूपान्तरण से निर्मित कुंडलिनी ऊर्जा मूलाधार चक्र से पीठ की सुषुम्ना नाड़ी से होते हुए ऊपर चढ़ गई। वायु के वेग से वे इधरउधर भटकने लगे, मतलब साँसों की गति से कुंडलिनी ऊर्जा माइक्रोकोस्मिक औरबिट लूप में गोल-गोल घूमने लगी। शुक्राचार्य को बहुत समय तक घुमाने के बाद योगी शिव ने उन्हें वीर्य मार्ग से बाहर निकाल दिया, मतलब बहुत समय तक शक्ति को चक्रों में घुमाते हुए व उससे चक्रों पर इष्ट देव या गुरु आदि के रूप में कुंडलिनी चित्र का ध्यान करने के बाद जब वह शक्ति क्षीण होने लगी मतलब शुक्राचार्य शिथिल पड़ने लगे, तब उसे वीर्यरूप में बाहर निकाल दिया। उन्हें योगी शिव ने पुत्र रूप में स्वीकार किया, मतलब कि जिसे ओशो महाराज कहते हैं, 'संभोग से समाधि',

वह तरीका अपनाया। इस यौनतंत्र में सहस्रार चक्र के समाधि चित्र को स्खलन-संवेदना के ऊपर आरोपित किया जाता है। इससे वही बात हुई जैसी एक पिछले अध्याय में लिखी गई है कि गंगा नदी के किनारे पर उगी सरकंडे की घास पर शिववीर्य से बालक कार्तिकेय का जन्म हुआ, मतलब शुक्राचार्य ने कार्तिकेय के रूप में शिवपुत्रत्व प्राप्त किया। उपरोक्त कथा के ही अनुसार सबसे प्रसिद्ध, प्रिय व शक्तिशाली लिंग शुक्रलिंग ही माना जाएगा, क्योंकि यह पूरी तरह से असली है, अन्य तो प्रतीतात्मक ज्यादा हैं, जैसे कोई पाषाणलिंग होता है, कोई पारदलिंग, तो कोई हिमलिंग आदि। शुक्रकूप आसपास में एक ठंडे जल का कुआँ है, जो संभोगतंत्र में सहयोगी है, क्योंकि जैसा एक पिछले अध्याय में दिखाया गया है कि कैसे ठंडे जल से स्नान यौनऊर्जा को गतिशील व कार्यशील बनाने का काम करता है।

शुक्राचार्य जो राक्षसों को जिन्दा कर रहे थे, उसका यही मतलब है कि वीर्यशक्ति बाह्यगामी होने के कारण संसारमार्गी मानसिक दोषों, आसक्तिपूर्ण भावनाओं और विचारों को बढ़ावा दे रही थी। शिव ने नंदी को शुक्राचार्य को पकड़ कर लाने को कहा, इसका मतलब है कि नंदी अद्वैत भाव का परिचायक है क्योंकि वह एक ऐसा शिवगण है जिसमें बैल के रूप में पशु और गण के रूप में मनुष्य एक साथ विद्यमान है। वह एक यिन-यांग मिश्रण है। अद्वैत से कुंडलिनी शक्ति को मूलाधार से ऊपर चढ़ने में मदद मिलती है।

देवी पार्वती ने महादेव शिव की आँखें बंद कीं, इससे वे अंधे जैसे हो गए। इसको यह समझाने के लिए कहा गया है कि कोई भावी योगी अज्ञान वाली अवस्था में था, न तो उसे लौकिक व्यवहार का ज्ञान था, और न ही आध्यात्मिक ज्ञान। फिर वह इश्कविश्क़ के चक्कर में पड़ गया। उससे उसकी शक्ति तो घूमने लगी, पर वह बिना कुंडलिनी चित्र के थी। कुंडलिनी चित्र माने ध्यान चित्र आध्यात्मिक ज्ञान की उच्चावस्था में बनता है। आध्यात्मिक ज्ञान लौकिक ज्ञान व अनुभव के उत्कर्ष से प्राप्त होता है। ऐसा होने में जीवन का लम्बा समय बीत जाता है। ज्ञानविज्ञानरहित प्यार-मोहब्बत से क्या होता है कि आदमी यौन शक्ति को ढंग से रूपान्तरित और निर्देशित नहीं कर सकता, जिससे उसका क्षरण या दुरुपयोग होता है। वही दुरुपयोग अंधक नाम वाला पुत्र है। इसका सीधा सा अर्थ है कि अमुक भावी योगी ने शक्ति को घुमाया तो जरूर। ऐसा उक्त कथानक की इस बात से सिद्ध होता है कि पार्वती ने दोनों नेत्रों को एकसाथ बंद किया, मतलब यिन-यांग संतुलित हो गए। पर परिपक्वता की कमी से इस संतुलन से किंचित चमक रहे कुंडलिनी चित्र को समझ नहीं पाया और उसे जानबूझकर व्यर्थ समझ कर त्याग दिया। चमक बुझने से स्वाभाविक है कि अंधेरा छा गया, जिसे आँखों को बंद करने के रूप में दिखाया गया है। क्योंकि शक्ति से मस्तिष्क में जो उच्च स्पष्टता के साथ छवि बनती है, उसे ही पुत्र कहा जाता है, जैसे कि इस की एक अध्याय में सिद्ध भी किया गया था। बिना किसी भौतिक सहवास के असली या भौतिक पुत्र तो पैदा हो

ही नहीं सकता, वह भी मिट्टी-पत्थर से भरी जमीन के ऊपर या सरकंडों के ऊपर। क्योंकि इस अध्याय के भावी योगी के मस्तिष्क में उस शक्ति से अंधेरा ही घनीभूत हुआ, इसलिए उसे पुत्र अंधक के रूप में दिखाया गया। चूंकि अँधेरे से भरा व्यक्ति किसी को प्रिय व कार्यक्षम नहीं लगता, इसलिए इसे ऐसा दिखाया गया है कि वह अंधकासुर सबको अप्रिय था और उसके बालमित्र उसे राजगद्दी के अयोग्य बताकर उसका मजाक उड़ाते थे। स्वाभाविक है कि भावी योगी दुनिया में सम्मान, सुखसमृद्धि और यहाँ तक कि जागृति के रूप में सम्पूर्णता को प्राप्त करने के लिए भरपूर प्रयास करता है, क्योंकि उसमें बहुत शक्ति होती है, केवल स्थिर ध्यानचित्र की ही कमी होती है। उसे दुनिया में ठोकरें खाने के बाद इस कमी का अप्रत्यक्ष अहसास हो ही जाता है, इसलिए वह कुंडलिनी ध्यानयोग के लिए एकांत में चला जाता है। इसे ही ऐसे दिखाया गया है कि अंधक फिर वन में जाकर शिव या ब्रह्मा का ध्यान करते हुए घोर तप करता है। अपने मांस को टुकड़ों में काटकाट कर वह उन्हें अग्नि में होम करता रहता है। साथ में अग्निधूम का पान करता है। इसका मतलब है कि भावी योगी कठिन हठयोग करता है, जिससे उसकी अतिरिक्त चर्बी तो घुलती ही है, साथ में मांसल शरीर भी योगाग्नि से जलकर दुबला हो जाता है। इस दहन से जो कार्बन डायक्साइड गैस निकलती है, उसे ही धुआँ कहा है। क्योंकि योग में अक्सर सांस को अंदर रोक कर रखा जाता है, इसलिए उसे ही धुएं को पीना कहा गया है। जब वह इतना कमजोर हो जाता है कि वह हड्डी का ढांचा जैसा दिखने लगता है, तब भगवान शिव उसे दर्शन दे देते हैं। इसका मतलब है कि जब हठयोगाभ्यास करते हुए काफी समय हो जाता है, जिससे योगी को अपने सहस्रार चक्र में बढ़ी हुई सात्विकता के कारण अपना शरीर अस्थिपंजर की तरह हल्का लगने लगता है, तब कुंडलिनी जागृत हो जाती है। मतलब अदृश्य या सुप्त कुंडलिनी शक्ति मानसिक शिवचित्र के रूप में जागृत हो जाती है। अब शिव अंधक को बिल्कुल स्वस्थ व सुंदर बना देते हैं। ठीक है, कुंडलिनी जागरण से ऐसा ही अकस्मात और सकारात्मक रूपान्तरण होता है। अब वह शिव से वर मांगता है कि वह कभी न मरे। शिव कहते हैं कि ऐसा सम्भव नहीं। विश्व की रक्षा के लिए भी यह जरूरी है। अमरता पाकर तो कोई भी अत्याचारी बनकर दुनिया को तबाह कर सकता है, क्योंकि उसे रोकने व डराने वाला कोई नहीं होगा। इसलिए ब्रह्मा उससे कोई न कोई मौत का कारण चुनने को कहते हैं, बेशक वह असम्भव सा ही क्यों न लगे। इस पर ब्रह्मा कहते हैं कि जब वह माँ के समान आदरणीय महिला को पत्नि बनाना चाहेगा, वह तब मरेगा। अब ये तंत्र की गूढ़ बातें हैं, जिनके यदि रहस्य से पर्दा उठाया जाए, तो आम जनमानस को अजीब लग सकता है। तिब्बतन यौनतंत्र में गुरु की यौनसाथी उनकी अनुमति से उनके शिष्यों को तांत्रिक यौनकला प्रयोगात्मक रूप में सिखाती है। गुरुपत्नि को माँ के समान माना गया है। मतलब कि तांत्रिक यौनयोग सीखने के बाद अंधक अंधी दुनियादारी से उपरत होकर अपनी आत्मा या अपने आप में शांत हो जाएगा, मतलब वह एक प्रकार से मर जाएगा। बाद में हुआ भी वैसा ही, मरने के बाद उसे शिव ने अपना गण बना लिया, मतलब वह मुक्त हो गया। आम मृत्यु के बाद तो कोई मुक्त नहीं होता। इसका

एक मतलब यह भी है कि जब विवाह या सम्भोग के अयोग्य सम्मानित नारी से प्यार होता है, तब उसका रूप बारबार मन में आने लगता है, जिससे वह समाधि का रूप ले लेता है, जैसा कि प्रेमयोगी वज्र के साथ भी हुआ था। ब्रह्मा के वर को पाकर अन्धक राजा बन गया, और बहुत अय्याश हो गया। सुंदर व सुडोल शरीर तो उसे मिला ही था, इसलिए वह अनगिनत कामिनियों के साथ विभिन्न मनोहर स्थानों में रमण करते हुए अपना बहुमूल्य समय नष्ट करने लगा। इस यौन शक्ति के बल से वह बहुत पाप भी करने लगा। देवताओं को स्वर्ग से भगा कर वहाँ खुद राज करने लगा। जब कोई बुरे काम करेगा तो शरीर रूपी स्वर्ग में स्थित देवता दुखी होकर भागेंगे ही, क्योंकि देवताओं का मुख्य उद्देश्य है शरीर से अच्छे काम करवाना। अब मैं इससे जुड़ी हाल की घटना बताता हूँ और फिर अध्याय को खत्म करता हूँ क्योंकि नहीं तो यह बहुत लंबी होकर पढ़ने में मुश्किल हो जाएगी। अगले हफ्ते तक शेष कथा के रहस्य को उजागर करने की कोशिश करूंगा, क्योंकि अभी मैं लगभग इतना ही समझ सका हूँ। हो सकता है कि आप मेरे से पहले उजागर कर दें, यदि ऐसा है तो कमेंट बॉक्स में जरूर लिखना।

आफताब-श्रद्धा से जुड़ा बहुचर्चित लवजिहाद काण्ड

बहुचर्चित आफताब पूनावाला से संबंधित मर्डर मिस्ट्री उपरोक्त अंधक कथा से बहुत मेल खाती है। सूत्रों के अनुसार वह मुस्लिम युवक श्रद्धा नामक सनातन लड़की के साथ लिव इन रिलेशनशिप में था। वह डेटिंग ऐप के माध्यम से अपना घरपरिवार छोड़कर उसके साथ लम्बे अरसे से रह रही थी। कई मकान मालिकों को तो वह उसे अपनी पत्नि तक बता कर साथ रखता था, क्योंकि यहाँ के परिवेश में लिव इन रिलेशनशिप को अच्छा नहीं समझा जाता। चोरी छुपे उसके 20 अन्य सनातन लड़कियों के साथ भी प्रेमसंबंध थे। श्रद्धा को शायद यह बात पता चली होगी और वह उसे ऐसा करने से रोककर उससे शादी करना चाहती होगी। इसको लेकर झगड़े भी हुए और मारपीट भी। अंततः उसने उसका गला दबाकर हत्या कर दी और बिना अफ़सोस के उसके पेंतीस टुकड़े करके उन्हें फ्रिज में पैक कर दिया। धीरेधीरे करके वह उन्हें निकट के जंगल में फ़ेंकता रहा। छः महीने बाद श्रद्धा के पिता द्वारा लिखी शिकायत के बाद पुलिस उसे पकड़ सकी। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि आज की तथाकथित आधुनिक महिलाओं को प्रसन्न करने के लिए कैसे आफताब की तरह शातिर, बेईमान, नशेड़ी, धूम्रपानी, मांसभक्षी, हिंसक और धोखेबाज बनना पड़ता है, हालाँकि ऐसे अतिवाद को कोई सभ्य व पढ़ालिखा समाज कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता, जिसमें मानवता का हनन होता हो। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि बहुत से सनातनिओं द्वारा शिवपुराण का कहीं गलत अर्थ तो नहीं निकला जा रहा, या बिना जानेबूझे कहीं वैसी विकृत सोच अवचेतन मन में तो नहीं बैठी हुई है। पुराण से प्राप्त आम धारणा के अनुसार महादेव शिव बिना कुलपरम्परा वाले एक भूतिया किस्म के आदमी थे, जिनको पति रूप में पाने के लिए पार्वती कई जन्मों तक घरपरिवार को छोड़कर भटकती रही।

पति-पत्नि के परस्पर प्रेम को परवान चढ़ाने के लिए कुछ हद तक ऐसा पागलपन ठीक भी है, पर वह भी कुछ जरूरी शर्तों के साथ ही पूरा सफल होता है, और वैसे भी अति तो कहीं भी अच्छी नहीं है, ख़ासकर उस कौम के व्यक्ति के साथ तो बिल्कुल भी संबंध अच्छा नहीं है, जिनके तथाकथित लवजिहाद से जुड़े जालिमपने और जाहिलियत के उदाहरण आए दिन मिलते रहते हैं। सब पता होते हुए भी बारम्बार गलती करना तो ऐसा लगता है कि या तो परिवार में बच्चों को सही व संस्कारपूर्ण शिक्षा नहीं दी जा रही या ऐसी लड़कियों के ऊपर जादूटोना कर दिया गया है, या यह सनातनिओं के पवित्र और ज्ञानविज्ञान से भरे शास्त्रों और पुराणों को बदनाम करने की एक सोचीसमझी और बहुत बड़ी साजिश चल रही है। कई लोग सख्त कानून की कमी को भी मुख्य वजह बता रहे हैं। कुछ लोग विकृत दूरदर्शन, ऑनलाइन व बॉलीवुड कल्चर को भी बड़ी वजह मानते हैं। कई लोग लिव इन रिलेशनशिप और डेटिंग एप्स को दोष दे रहे हैं। इससे सनातन पुरुषों को भी शिक्षा लेनी चाहिए और महिलाओं की अपेक्षाओं पर खरा उतरने की कोशिश करनी चाहिए। जिसके अंदर ध्यान-कुंडलिनी चित्र नहीं है, यदि वह भी यौनतंत्र का अभ्यास करे, तो उसका हाल भी अंधक जैसा हो सकता है, जैसा आपने ऊपर पढ़ा, फिर यदि जिसको यौनतंत्र का कखग भी पता नहीं, यदि वह यौनसंबंधों के मामले में मनमर्जी करे, तो उसका उससे भी कितना बुरा हाल हो सकता है, यह उपरोक्त हाल की घटना से प्रत्यक्ष देखने को मिल रहा है।

अध्याय-37
कुंडलिनी योग को ही गंगा अवतरण की कथा के रूप में दिखाया गया है

अश्वमेध यज्ञ साक्षीपन साधना या विपासना का अलंकारिक शैली में लिखा रूप प्रतीत होता है

दोस्तों, सनातन दर्शन में गंगा के अवतरण की एक प्रसिद्ध कथा आती है। क्या हुआ कि राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे। एक बार वे अश्वमेध यज्ञ करने लगे। यज्ञ के अंत में यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया। देवराज को डर लगा कि अगर राजा सगर का वह सौवां अश्वमेध यज्ञ सफल हो गया तो सगर को उसका इंद्र का पद मिल जाएगा। इसलिए उसने घोड़े को चुराकर पाताल लोक में कपिल मुनि के आश्रम के बाहर बाँध दिया। सगरपुत्रों ने समझा कि घोड़े को कपिल मुनि ने चुराया था। इसलिए वे उन्हें अपशब्द कहने लगे। इससे जब कपिल मुनि ने आँखें खोलीं तो वे उनसे निकले तेज से खुद ही भस्म हो गए। फिर इससे दुखी होकर राजा सगर कपिल मुनि से क्षमा मांगने लगे और अपने पुत्रों के उद्धार का उपाय पूछने लगे। फिर उन्होंने गंगा नदी से उनका उद्धार होने की बात कही। फिर इतना बड़ा काम कोई नहीं कर सका। सगर के बाद की कई पीढ़ियों के बाद जन्मे भागीरथ ने ब्रह्मा से वरदान में माँ गंगा को माँगा और शिव से उसे जटा में धारण करने की प्रार्थना की। उनकी इच्छा पूरी हुई और गंगा नदी ने उन भस्मित सगर पुत्रों की राख के ऊपर से गुजर कर उनका उद्धार किया।

गंगा नदी के जन्म की कथा का कुंडलिनीविज्ञान आधारित विश्लेषण

राजा सगर संसार-सागर का प्रतीक है। मतलब संसार में आसक्त आदमी। साठ हजार पुत्र हजारों इच्छाओं व भावनाओं के प्रतीक हैं। अश्वमेध यज्ञ का मतलब इन्द्रियों का दमन है। मेध का मतलब बलि या वध होता है। अश्व की बलि मतलब इन्द्रियों की बलि। अगर बाह्य इन्द्रिय रूपी अश्व की बलि अवचेतन मन रूपी हवनकुण्ड में दी जाए और उससे दबे हुए विचारों को उघाड़ने के रूप में अग्नि प्रज्वलित की जाए तो स्वाभाविक है कि उससे मुक्ति रूपी स्वर्ग मिलेगा। उस यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं क्योंकि पूरे शरीर को देवताओं ने ही बनाया है और वे ही उसे नियंत्रित करते हैं, जैसे कि आँख को सूर्य देव, भुजाओं को इंद्र आदि। इससे परमात्मा-निर्देशित देवताओं का उद्देश्य पूरा होता है, क्योंकि बारबार के जन्ममरण आदि के दुःख से जीव को मुक्ति दिलाकर उसे

अपना सर्वोत्तम पद प्रदान करना ही जीवविकास के पीछे मुख्य वजह प्रतीत होती है। इस उद्देष्य की पूर्ति से देवताओं को शक्ति मिलती है। इसीलिए कहा गया है कि यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं और वर्षा आदि उचित समय पर करवाकर धनधान्य में वृद्धि करते हैं। प्रत्यक्ष लाभ यह तो होता ही है कि लोगों के बीच आपसी मनमुटाव नहीं रहता और एकदूसरे से प्रेम और सहयोग बना रहता है, जिससे सकारात्मक विकास होता है। एकबार ऐसा यज्ञ करने से काम नहीं चलता। यज्ञ पूरी उम्र भर लगातार करते रहना पड़ता है। यह अवचेतन मन बहुत गहरे और आकर्षक कुएँ की तरह है, जिससे बाहर निकला विचारों का कचरा फिर से उसमें गिरता रहता है, हालांकि फिर ऊपर ही रहता है, और बारम्बार के प्रयास से स्थायी रूप से बाहर निकल जाता है। हो सकता है कि किसी वार्षिक उत्सव की तरह साल में एक बार विचारों के कचरे को विस्तार से बाहर निकालने की जरूरत हो। उसे अश्वमेध यज्ञ कहते हों। इसीलिए सौ साल की पूरी उम्र में सौ यज्ञ हुए। सौवां यज्ञ न होने से जीवन के अंतिम वर्ष में पैदा हुए विचारों और भावों का कचरा अवचेतन मन में दबा रह जाता हो, जो आदमी को मुक्त न होने देता हो। हमारी दादी माँ हमें एक दंतकथा सुनाया करती थी। एक स्वर्ग को जाने वाली रस्सी थी। उस पर सावधानी से चलते हुए लोग स्वर्ग जाया करते थे। एक बार एक बुढ़िया एक योगी को उस पर जाते हुए देख रही थी। उसने योगी को आवाज लगाई कि उसे भी साथ ले चल। योगी को उस पर दया आ गई और उसका हाथ पकड़कर उसे भी रस्सी पर चलाने लगा। पर योगी ने एक शर्त रखी कि वह पीछे मुड़कर अपने भाई-बंधुओं को उससे बिछड़ने के दुःख में रोते-बिलखते नहीं देखेगी। अगर उसने पीछे देखा तो उसका संतुलन बिगड़ जाएगा और वह वापिस धरती पर गिर जाएगी। बुढ़िया ने उसकी शर्त मान ली। पर रास्ते में उससे रहा नहीं गया, और जैसे ही उसने नीचे को देखा, वह नीचे गिर गई, पर योगी बिना उसकी तरफ देखे आगे निकल लिए। ऐसी दंतकथाओं के बहुत गहरे और ज्ञानविज्ञान से भरे अर्थ होते हैं।

मन की सफाई तो अंततः विपासना से ही होती है, जो एक शांत किस्म का ध्यानयोग है

वैसे कुंडलिनी जागरण, आत्मज्ञान वगैरह-वगैरह से मुक्ति नहीं मिलती। इनसे तो विचारों या कर्मों के दबे कचरे की सफाई में मदद भर मिलती है, अगर कोई लेना चाहे तो। अगर कोई न लेना चाहे तो अलग बात है। इसीलिए आजकल कुंडलिनी जागरण जैसे मस्तिष्क झकझोरने वाले अनुभव का ज्यादा प्रचलन व महत्त्व नहीं रह गया है, अगर सच कहूँ तो। वैसे भी आज के व्यस्त, तकनीकी और अध्ययन से भरे युग में दिमाग़ पर पहले से ही बहुत दबाव है। वह और कितना दबाव झेलेगा जागृति के नाम पर। अधिकांश लोगों को एकांत व शांति तो नसीब होना बहुत मुश्किल है। अत्यधिक मस्तिष्क दबाव से कहीं पार्किंसन, अलजाइमर जैसे लाइलाज मस्तिष्क रोग हो गए तो।

पर ये मेरे नहीं कुछ अन्य योगियों के विचार हैं। दरअसल ऐसा होता नहीं अगर अपनी सहनशक्ति की सीमा के अंदर रहकर और सही ढंग से ध्यानयोग या कुंडलिनी जागरण किया जाए। ध्यान से हमेशा लाभ ही मिलता है। यह पैराग्राफ कुछ अन्य लोगों के विचारों को परखने के लिए लिख रहा हूँ। सही अर्थों में आजकल तो शांत विपश्यना अर्थात साक्षीभाव साधना का युग है। वैसे विपासना भी एक ध्यान ही है, शांत, सरल, स्वाभाविक व धीमा ध्यान। अगर भैंस खुद ठीक रस्ते पे जा रही है तो उसे डंडे क्यों मारने भाई। कचरा ही साफ करना है न, तो सीधे जाके कर लो, टेढ़ेमेढ़े रास्ते से क्यों भागना। बाहर स्थित विचारों का कचरा कभी कभार अगर दिख भी जाए तो भी वह शुद्ध ही होता है क्योंकि उससे लगाव या क्रेविंग पैदा नहीं होता। यह भी कह सकते हैं कि विपासना से आदमी शांत, तनावमुक्त और हल्का हो जाता है, जिससे खुद ही उसका मन कुंडलिनी ध्यान को करता है। उससे और कुंडलिनी जागरण से विपासना में और मदद मिलती है, बदले में विपासना से कुंडलिनी ध्यान और ज्यादा मजबूती प्राप्त करता है। इस तरह से विपासना और कुंडलिनी ध्यान साधना एकदूसरे को बढ़ाते रहते हैं।

ध्यानयोग या ध्यान यज्ञ ही असली यज्ञ है, और इन्द्रियों का दमन ही पशुबलि है

इन्द्रियों को शास्त्रों में घोड़े या पशु की उपमा दी जाती है। पशुपति अर्थात इन्द्रियों का पति भगवान शिव का ही एक नाम है। जैसे पशु का झुकाव आंतरिक आत्मा की बजाय बाहरी दुनिया की तरफ होता है, उसी तरह बाह्य इन्द्रियों का भी। आदमी की उम्र सौ साल होती है। उसके बाद मृत्यु मतलब स्वर्ग की प्राप्ति। स्वर्ग को जीते जी प्राप्त नहीं किया जा सकता। मुक्ति तो देवराज इंद्र के लिए भी स्वर्ग है। इसीलिए इस परम स्वर्ग की प्राप्ति को इंद्र अपना अपमान मानता है कि कोई कैसे उससे और उसके द्वारा नियंत्रित तीनों लोकों से ऊपर उठ सकता है। हालांकि देवताओं के साथ इंद्र भी आदमी की मुक्ति से बल प्राप्त करता है, पर यह अहंकार जो है न, वह अपना भला-बुरा कब देखने देता है। सौवें घोड़े को पाताल में बाँधने का अर्थ है कि इंद्र ने इन्द्रियों की शक्ति को मूलाधार के अंधकार भरे क्षेत्र में स्थापित कर दिया। शरीर इंद्र के द्वारा संचालित है। शरीर की अतिरिक्त शक्ति कुदरती तौर पर खुद ही मूलाधार को चली जाती है, इसीलिए इंद्र से इसका नाम जोड़ा गया है। इतना तो सबको पता ही है कि नाभि चक्र को चली जाती है, इसीलिए जब कोई काम और तनाव न हो तो बहुत भूख लगती है और खाना भी अच्छे से पचता है। उससे शरीर में और शक्ति बढ़ती है। वह वहाँ से स्वाधिष्ठान चक्र को उतरती है क्योंकि शक्ति की चाल की दिशा ऐसी ही है। वहाँ अगर उससे यौनता से संबंधित काम लिया गया तो वह पीठ से दुबारा ऊपर चढ़कर पूरे शरीर में आनंद के साथ फैल जाती है या बाहर निकल कर बर्बाद हो जाती है। अगर वह काम भी नहीं लिया गया तो वह मूलाधार को उतरकर वहीं पड़ी रहती है। अगर कभी थकान

व तनाव देने वाला खूब काम किया जाए तो वह वहाँ से पीठ से होते हुए संबंधित थके हुए अंग तक पहुंच कर उसकी मुरम्मत करती है, नहीं तो वहीं सोई रहती है। मूलाधार में शक्ति का सोया हुआ होना इसलिए भी कहा गया होगा क्योंकि जब हम मन में नींद-नींद का लगातार उच्चारण करते हैं तो शक्ति आगे के चक्रों से नीचे जाते हुए महसूस होती है और वापिस ऊपर नहीं चढ़ती। अगर चढ़ती है, तो एकदम से नीचे उतर जाती है। अगर शक्ति को नीचे आने में रुकावट लग रही हो, तो मस्तिष्क से गले तक तो आ ही जाती है। इसके साथ एकदम से शांति और राहत महसूस होती है, और ऐसा लगता है कि मस्तिष्क दाब और रक्तचाप एकदम से कम हुआ। हरेक चक्र में शक्ति काम करती है, पर मूलाधार में आमतौर पर नहीं, क्योंकि वह शक्ति का शयनकक्ष है। वहाँ शक्ति को जगा कर करना पड़ता है। हरेक चक्र के साथ विभिन्न अंग जुड़े हैं। वैसे तो मूलाधार के साथ भी गुदामार्ग जुड़ा है, पर वह स्वाधिष्ठान से भी जुड़ा है। मुझे लगता है कि मूलाधार वाले सभी काम स्वाधिष्ठान चक्र भी कर लेता है। जागृति का स्थान मस्तिष्क है, इसलिए स्वाभाविक है कि शक्ति मस्तिष्क से जितना ज्यादा दूर होगी, वह वहाँ उतनी ही ज्यादा सोई हुई होगी। शास्त्रों में नाभि चक्र को यज्ञ कुंड भी कहा जाता है जहाँ भोजन रूपी आहुति जलती रहती है। इसका यह मतलब नहीं कि बाहरी या भौतिक स्थूल यज्ञ की जरूरत नहीं। दरअसल बाहरी यज्ञ भीतरी कुंडलिनी यज्ञ को प्रेरित भी करता है। समारोह आदि में भौतिक हवन यज्ञ करते हुए मुझे कुंडलिनी की क्रियाशीलता महसूस होती है। हाँ इतना जरूर किया जा सकता है कि भौतिक यज्ञ के नाम पर भौतिक संसाधनों का बेवजह दुरुपयोग न हो।

शक्ति नीचे से ऊपर चढ़ती है, पर अवचेतन मन का निवास मूलाधार और स्वाधिष्ठान पर होने के कारण वह सहस्रार से नीचे जाते हुए दिखाई गई है

मूलाधार में कपिल मुनि का आश्रम मतलब वहाँ मूलाधर चक्र का पवित्र अधिष्ठाता देवता है। उसे अपशब्द कहना मतलब मूलाधार को अपवित्र मानना। सगर का साठ हजार पुत्र उसे ढूंढने भेजना मतलब आदमी द्वारा अपनी खोई हुई शक्ति अर्थात इन्द्रिय शक्ति अर्थात कुंडलिनी शक्ति को प्राप्त करने के लिए हजारों इच्छाओं व भावनाओं को खुले छोड़ देना मतलब संसार में हर तरफ अपना डंका बजाने की कोशिश करना। शास्त्र कहते हैं कि जैसे जंगल में भटकने वाले को जल्दी रत्न मिल जाता है, उसी तरह दुनिया में भटकने वाले को जल्दी ही मूलाधार और उसमें सोई शक्ति मिल जाती है। यह बहुत बड़ी शिक्षा है, जिसके अनुसार दुनिया में भटकते हुए थकने के बाद आदमी बाह्य इन्द्रियों से ऊबकर अवचेतन मन में डूबने लगता है। पर यह तभी होता है अगर आदमी अद्वैत व अनासक्ति के साथ दुनिया में जीवनयापन कर रहा हो, नहीं तो दुनिया के लोग उसका अवचेतन मन में भी पीछा नहीं छोड़ते और उसे वहाँ से भी बाहर खींच लाते हैं

और उसे ध्यानसाधना नहीं करने देते। इससे साफ है कि आम आदमी को आध्यात्मिक तरक्की के लिए अद्वैत और अनासक्ति का भाव बना के रखना बहुत ज्यादा जरूरी है। जैसे इस कथा में पाताल समुद्र से नीचे है और समुद्र से होकर ही वहाँ तक रास्ता जाता है, उसी तरह मूलाधार चक्र भी सभी दुनियावी (शास्त्रों में संसार को भी समुद्र कहा गया है) चक्रोँ के नीचे है, और पाताल की तरह ही सुषुप्त लोक जैसा है। तभी तो अवचेतन कह रहे इसको। वहाँ मुनि कपिल को देखना मतलब सांख्ययोग व जैन धर्म के मूल प्रवर्तक को ध्यान रूप में देखना। जैनी मुनि भी दिगंबर अर्थात नग्न अवस्था में रहते हैं। मुनि को अपशब्द कहते हुए उन पर चोरी का इल्जाम लगाना मतलब उनको पता चलना कि इस ध्यान चित्र ने ही शक्ति को नीचे खींच कर अपने पास कैद किया है। किसी चीज का अपमान करके आदमी उससे भरपूर फायदा नहीं उठा सकता।अगर मूलाधार को छि-छि करते रहोगे, तो उस पर कुंडलिनी छवि का ध्यान करके उसे जगाओगे कैसे। उस छवि पर ही अगर ऐसा इल्जाम लगाओगे कि इसने मेरी सारी शक्ति छीन ली है, तो उसे और शक्ति कैसे दोगे। अतिरिक्त या अन्यूजड शक्ति तो उसमें जाएगी ही, अनजाने में और वहाँ सुषुप्त पड़ी रहेगी। वह शक्ति वहाँ तभी अवचेतन मन को उघाड़ पाएगी, यदि उसे ऐसा करने का मौका दोगे और उसके साथ सहयोग करोगे। तभी तो आपने देखा होगा कि सेक्सी किस्म के लोग बहुत गहराई से देखने और सोचने वाले होते हैं। यह इसलिए क्योंकि उनके मन में ज्यादा कचरा नहीं होता। वे अपनी मूलाधार स्थित यौन शक्ति से मन के कचरे को लगातार साफ करते रहते हैं, और दूसरी तरफ साफसुथरे होने का और यौनता से दूरी रखने का दिखावा करने वाले अंदर से अवचेतन मन के कचरे से भरे होते हैं। सेक्सी आदमी स्पष्टवादी और तेज दिमाग लिए होते हैं। उनका ध्यान शरीर के दूसरे क्षेत्रों की बजाय मूलाधार क्षेत्र में ज्यादा टिका होता है। हालांकि चेहरा और मूलाधार आपस में जुड़े होते हैं। मुनि की दृष्टि रूपी क्रोधाग्नि से उन साठ हजार पुत्रों का भस्म होना मतलब मन के सभी विचारों और भावनाओं का मूलाधार में शक्ति के साथ सो जाना। मतलब कुंडलिनी शक्ति अवचेतन मन को साथ लेकर सुषुप्तावस्था में चली गई। सगर वंश में कई पीढ़ियों के बाद भागीरथ नामक एक महापुरुष हुआ जो गंगा को लाने में स्मर्थ हुआ जिसने सभी सगरपुत्रों को जीवित करके मुक्त कर दिया मतलब व्यक्ति कई जन्मों के बाद इस काबिल हुआ कि सुषुम्ना को जागृत करके कुंडलिनी जागरण को प्राप्त कर सका जिससे अवचेतन मन (पाताल लोक समतुल्य) में दबे हुए विचार और भावनाएं आनंद, अद्वैत व आनंद के साथ अभिव्यक्त होते गए और ब्रह्म में विलीन होते गए। भागीरथ ने घोर तपस्या की मतलब कुंडलिनी योग किया। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर वर दिया मतलब कुंडलिनी सहस्रार में क्रियाशील हो गई। सहस्रार चक्र भी कमल की तरह है और ब्रह्मा भी कमल पर बैठते हैं। कैलाश पर रहने वाले शिव ने गंगा को अपनी जटाओं में धारण किया मतलब सुषुम्ना नाड़ी में बहती हुई चेतना रेखा सहस्रार में समाहित हो जाती है। सहस्रार चक्र बालों से भरे हुए सिर के अंदर ही होता है। कई जगह सहस्रार को कैलाश पर्वत की उपमा दी जाती है। वह गंगा स्वर्ग लोक से आई मतलब सुषुम्ना में बहती हुई

शक्ति से सहस्रार चक्र दिव्यता अर्थात दिव्य लोक के साथ जुड़ जाता है जिसे कुंडलिनी जागरण के दौरान का अनुभव कहते हैं। दरअसल अवचेतन मन का स्थान भी मस्तिष्क ही है, पर क्योंकि वह मुलाधार से ऊपर आती सुषुम्ना-शक्ति से जागता है, इसलिए कहा जाता है कि वह मूलाधार चक्र में शक्ति के साथ सुषुप्तावस्था में फंसा हुआ था। इसी तरह अगर अवचेतन मन को ध्यान लगाकर उघाड़ने लगो तो मूलाधार और सुषुम्ना क्रियाशील होने लगते हैं। मतलब ये तीनों आपस में जुड़े हैं। इसीलिए इस मिथकीय कहानी में कहा गया है कि गंगा मतलब सुषुम्ना शक्ति स्वर्ग मतलब जागृति के सर्वव्यापी व सर्वानन्दमयी अनुभव से कैलाश मतलब मस्तिष्क को आई, वहाँ से नीचे हिमालय मतलब रीढ़ की हड्डी से उतरते हुए महासागर अर्थात दुनिया अर्थात विभिन्न चक्रोँ से गुजरते हुए पाताल लोक मतलब मूलाधार चक्र में पहुंची। होता उल्टा है दरअसल, मतलब शक्ति नीचे से ऊपर चढ़ती है। फिर कहते हैं कि भागीरथ गंगा के साथ-साथ चलता रहा, और जहाँ भी उसका मार्ग अवरुद्ध हो रहा था, वहाँ-वहाँ वह उस अवरोध को हटा रहा था। यह ऐसे ही है जैसे आदमी बारीबारी से चक्रोँ पर ध्यान लगाते हुए शक्ति के अवरोधों को दूर करता है। चक्र-ब्लॉक ही वे अवरोधन हैं। तथाकथित अंतर्राष्ट्रीय भगोड़े इस्लामिक विद्वान और आतंकवाद के आरोपों से घिरे जाकिर नईक जैसे लोगों को यह जरूर फॉलो करना चाहिए, क्योंकि वह सनातन शास्त्रों के मिथकीय पक्ष को तो उजागर करके दुष्प्रचार से उन्हें बदनाम करने की कोशिश करते हैं, पर उनके वैज्ञानिक पक्ष से अपरिचित हैं।

अध्याय-38
राजा सगर के मन की अनगिनत वासनाएं ही उनके साठ हजार पुत्र हैं

मित्रों, मैं पिछले अध्याय में बता रहा था कि गंगा नदी का अवतरण कैसे हुआ। राजा सगर के साठ हजार पुत्र हजारों वासनाओं के प्रतीक हैं। सगर का मतलब संसार सागर मतलब शरीर में डूबा हुआ आदमी। हरेक जीवात्मा अपने शरीर रूपी संसार का राजा ही है। सारा संसार इस शरीर में ही है। सागर शब्द से ही सगर शब्द बना है। कहते हैं कि राजा सगर की पत्नि के गर्भ से एक घड़े जैसी आकृति पैदा हुई थी। उसमें चींटियों की तरह साठ हजार बच्चे थे। वे बाहर निकलकर बढ़ते गए और कालांतर में साठ हजार पूर्ण मनुष्य बन गए। मस्तिष्क भी तो घड़े जैसा ही है, जिसमें बहुत सूक्ष्म वासनाएं हजारों की संख्या में रहती हैं। इन्द्रियों के माध्यम से वे बाहर निकलकर चित्रविचित्र अनेकों रचनाओं व भावनाओं का निर्माण करती हैं, मतलब पूर्ण विकसित मनुष्य की तरह हो जाती हैं। मनुष्य क्या है, भावनामय रूप की एक विशेष अवस्था ही तो है। अनगिनत अवस्थाएं मतलब अनगिनत मनुष्य। महारानी गांधारी से भी इसी तरह सौ कौरव पुत्रों का जन्म हुआ था। हो सकता है कि इसके पीछे भी ऐसा ही कोई रहस्य छुपा हो। प्राइमरी स्कूल की शुरुआती कक्षाओं के दिनों की बात है। एक हिंदी कविता थी, 'कौरव सौ थे पांडव पांच, सगे भाइयों की संतान; पांडव वीर धरम के रक्षक, कौरव को था धन अभिमान'। मैं कक्षा के सभी बच्चों को समझाने की कोशिश करता कि किसी के सौ पुत्र होना असम्भव है, इसलिए 'सौ' की बजाय यह शब्द 'सो' है, मतलब 'जो थे सो थे', पर सभी बच्चे कहते कि गुरुजी ने 'सौ' ही कहा है। मैं उन्हें कहता कि उनसे सुनने में गल्ती हुई है। जब मैंने अपने तरीके से अध्यापक के बोलने पर कविता पढ़ी, तब उन्होंने मुझे सही किया। मुझे आश्चर्य हुआ पर उन्होंने उसकी वैज्ञानिक वजह नहीं बताई, और न ही मैंने पूछने की हिम्मत की। इतना गहरा विश्वास होता था ऐसी कथाओं पर, हालांकि ऐसा नहीं था कि कोई उसकी देखादेखी असल में भी सौ पुत्र पैदा करने की कोशिश करने लग जाता। हालांकि ऐसी कथाओं का जनसंख्या बढ़ाने में योगदान हो भी सकता है। ऐसी कथाओं में मानसिक छवियों को पुत्र रूप में दर्शाने का प्रचलन रहा है शास्त्रों में। यह अध्यात्मविज्ञान की दृष्टि से सही भी है क्योंकि जिस वीर्य से पुत्र की प्राप्ति होती है वही एक ऊर्जावान या जागृत विचार भी उत्पन्न कर सकता है। हो सकता है कि यदि हम उनके रहस्य समझ जाते, तो वे हमारे मन में वह मनोवैज्ञानिक सस्पेंस बना के न रखतीं, जो आदमी को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता रहता है।

अध्याय-39

कुण्डलिनी योग ही भगवान विष्णु के वराह अवतार के रूपक के रूप में वर्णित किया गया है

दोस्तों, कहते हैं कि पुराने युग में राक्षस हिरण्याक्ष धरती को चुरा के ले गया था और उसे समुद्र के अंदर गहराई में छिपा दिया था। इससे सभी देवता परेशान होकर ब्रह्मा को साथ लेकर भगवान विष्णु के पास गए और उनसे सहायता का वचन प्राप्त किया। तभी ब्रह्मा की नाक से एक छोटा सा सूअर निकला। दरअसल भगवान विष्णु ने ही उस वराह का रूप धारण किया हुआ था। वह देखते ही देखते बड़ा होकर समुद्र में घुस गया। वहाँ उसने गहराई में छुपे दैत्य हिरण्याक्ष को देख लिया और उससे युद्ध करने लगा। देखते ही देखते उसने हिरण्याक्ष को मार दिया और वेदों समेत धरती को अपने मुंह के दोनों किनारों वाली लंबी और पैनी दो दाढ़ें आगे करके उन पर गोल धरती को बराबर संतुलित करके टिका दिया। फिर वे समुद्र के ऊपर आए और उन्होंने धरती को यथास्थान स्थापित कर दिया। फिर भी वराह भगवान शांत नहीं हो रहे थे। उनको भगवान शिव ने एक अवतार लेकर शांत किया।

वराह अवतार कथा का योग आधारित रहस्यात्मक विश्लेषण

नासिका पर और विशेषकर नासिका से अंदरबाहर आतीजाती साँस पर ध्यान देने से शक्ति केंद्रीय रेखा में सुषुम्ना नाड़ी की सीध में आ जाती है। कहते हैं कि नासिका से बाहर जाती साँस से होकर ही वराह बाहर निकला। बाहर जाती साँस पर ध्यान देने से शक्ति आगे वाले चैनल से नीचे उतरती है, और सभी चक्रों को भेदते हुए मूलाधार में पहुंच जाती है। यही वराह का समुद्र के नीचे पाताल लोक में पहुंचना है। अगर उसे पाताल लोक की बजाय समुद्र ही मानें तो भी संसार सागर का सबसे निचला पायदान मूलाधार ही है, क्योंकि विभिन्न चक्रों में ही सारा संसार बसा हुआ है। सम्भवतः इसलिए भी समुद्र कहा गया हो क्योंकि वीर्यरूपी जल के भंडार मूलाधार क्षेत्र के अंतर्गत ही आते हैं, जिसमें सारा संसार के रूप में दबा सा पड़ा होता है। हिरण्याक्ष का मतलब द्वैतभाव रूपी अज्ञान। हिरण्य मतलब सोना, अक्ष मतलब आंख। जिसकी नजर में सुवर्ण अर्थात समृद्धि के प्रति आदरभाव है, और उसके पीछे द्वैत भाव से अंधा सा होकर पड़ा हुआ है, वही हिरण्याक्ष है। उससे कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार के अँधेरे में छुप अर्थात सो जाती है। मतलब जो मन के विचारों की शक्ति है, वह अवचेतन विचारों के रूप में

अव्यक्त होकर मूलाधार में दब जैसी जाती है। यही तो कुंडलिनी है। उस मानसिक संसार के साथ वेद भी मूलाधार में दब जाते हैं, क्योंकि शुद्ध व सत्त्वगुणी आचार-विचार ही तो वेदों के रूप में हैं। शक्ति मूलाधार पर पहुँचने के बाद पीठ से होते हुए वापिस ऊपर मुड़ने लगती है। शक्ति इड़ा और पिंगला, ज्यादातर इड़ा नाड़ी से ऊपर चढ़ने की कोशिश करती है, क्योंकि इसमें अवरोध कम होता है। कई बार शक्ति इड़ा और पिंगला में कुछ क्षणों के लिए प्रत्येक में बारीबारी से झूलने लगती है। ऐसे में आज्ञा चक्र पर भी ध्यान बनाकर रखने से शक्ति बीचबीच में कुछ क्षणों के लिए सुषुम्ना में भी ठहरती रहती है। इड़ा और पिंगला ही वराह के मुंह के दोनों किनारों वाले दो नुकीले दाँत हैं। सुषुम्ना नाड़ी या आज्ञा चक्र ही उन दोनों दांतों के ऊपर संतुलित करके रखी हुई गोल पृथ्वी है। चक्र भी गोल ही होता है। सुषुम्ना को पृथ्वी इसलिए कहा गया है क्योंकि दुनिया के सारे अनुभव मस्तिष्क में ही होते हैं, बाहर कहीं नहीं, और सुषुम्ना नाड़ी से होकर ही मस्तिष्क को शक्ति संप्रेषित होती है। वराह कुण्डलिनी-पुरुष अर्थात ध्यान-छवि है। यह भगवान विष्णु का ध्यान ही है। उसको भी विष्णु की तरह ही शंख, चक्र, गदा, पद्म के साथ चतुर्भुज रूप में दिखाया गया है।इसीलिए कहा है कि भगवान विष्णु ने वराह रूप में अवतार लिया। रूपक के लिए वराह को इसलिए भी चुना गया है क्योंकि सूअर ही जमीन को खोदकर गहराई में भोजन के रूप में छिपी अपनी शक्ति की तलाश करता रहता है। सूअर को पृथ्वी इसीलिए प्यारी होती है। इसीलिए उसे लाने वह समुद्र में भी घुस जाता है। मूलाधार में सोई हुई या दबी हुई धरती अर्थात मन रूपी शक्ति को पाने के लिए वह इड़ा और पिंगला रूपी दांतों के साथ उस शक्ति को वहाँ पर टटोलता और खोदता है। फिर उसको सुषुम्ना रूपी संतुलन देकर जल के बाहर ले आता है, और उसे अपने पूर्ववत असली स्थान पर स्थापित कर देता है। जल से बाहर ले आता है माने नाड़ी के शिखर पर उससे बाहर सहस्रार में पहुंचा देता है, क्योंकि नाड़ी भी जल की तरह ही बहती है। उसका असली स्थान मस्तिष्क का सहस्रार ही है, क्योंकि वही सभी अनुभवों का केंद्र है। सुषुम्ना नाड़ी भी सीधी मूलाधार से सहस्रार को जाती है। इससे अवचेतन मन में दबे हुए विचार फिर से अनुभव में आने लगते हैं, और आनंदमयी शून्य-आत्मा में विलीन होने लगते हैं। मतलब अवचेतन विचारों के रूप में सोई हुई शक्ति जागने लगती है। यह विपासना ही तो है। विपासना मस्तिष्क के किसी भी हिस्से में हो सकती है, सहस्रार को छोड़कर, क्योंकि इसके लिए कम शक्ति चाहिए होती है। होती सहस्रार में ही है, पर कम ऊर्जा के कारण बाहर जान पड़ती है। जिस विचार में जितनी कम शक्ति होती है, वह सहस्रार से उतना ही दूर प्रतीत होता है। वैसे भी आत्मा का स्थान सहस्रार में ही बताया गया है। सहस्रार में केवल कुण्डलिनी चित्र का ही ध्यान किया जाता है, जोकि किसी मूर्ति या गुरु या पारलौकिक देह आदि के रूप में होता है। यह चित्र लगभग असली भौतिक रूप की तरह महसूस होता है अभ्यास से, इसीलिए इसके लिए विपासना की अपेक्षा काफी ज्यादा शक्ति लगती है। यदि कोई किसी आम लौकिक आदमी या औरत के रूप की छवि को सहस्रार में जागृत करने लगे, तब तो वह रात को ही नींद में चलता हुआ उसके पास पहुंच जाएगा। तब ध्यान कैसे होगा। फिर सभी

देवता और ऋषिगण प्रसन्न होकर वराह भगवान की हाथ जोड़कर स्तुति करते हैं। वैसे भी इन सभी का उद्देष्य जीवमात्र को जन्ममरण रूपी दुःख से दूर करना ही है, जो सहस्रार चक्र में ही संभव है, इसीलिए खुश होते हैं। शिवजी के द्वारा वराह को शांत करने या मारने का मतलब है कि योगी कुण्डलिनी का भी मोह छोड़कर शिव के जैसा अद्वैतवान तांत्रिक बन गया। वैसे भी सिद्धांत यही है कि ज्ञान अर्थात कुण्डलिनी जागरण होने के बाद या वैसे भी अद्वैतमय तंत्र ही सर्वोच्च समझ अर्थात सुप्रीम अंडरस्टेंडिंग है, जिसे ओशो महाराज भी अपनी एक पुस्तक 'tantra- a supreme understanding' के रूप में दुनिया के सामने स्पष्ट करते हैं।

अध्याय-40

कुण्डलिनी योग से ही मोरनी मोर के आँसू पीकर गर्भवती हो जाती है

दोस्तो, कुछ बिमारियां विशेषकर आनुवंशिक रोग आदमी को **महामानव** बनने की तरफ ले जाती हुई लगती हैं। मैंने खुद देखा है कि जो अपने जीवन के बाद के दौर में उन बिमारियों से प्रभावित होने होते हैं, वे जिंदगी के शुरुआती दौर में बहुत ज्यादा तेज दिमाग़ वाले होते हैं। मतलब कि वे **जागृति** के बहुत करीब होते हैं। कई तो जागृत भी हो जाते हैं। शायद उनकी जो शक्ति शरीर के किसी सिस्टम की नाकामी से बच कर अतिरिक्त रूप से जमा हो जाती है, वह बुद्धि को बढ़ाने और उससे जागृति पैदा करने में खर्च हो जाती है। वैसे लोग आम समाज से थोड़ा हट कर लगते हैं। वे सबके बीच में अलग ही चमकते हैं। उनका व्यवहार भी सबसे अलग व विशेष जैसा होता है, और काम भी। निसंदेह वे आकर्षक तो होते ही हैं। उनसे दोस्ती करने के लिए बहुत से लोग लालायित जैसे रहते हैं। दोस्ती करके उन्हें बहुत लाभ भी मिलता है, हालांकि यह उनके अजीब स्वभाव के कारण कई बार मुश्किल हो सकता है। इसी तरह पिछले अध्याय में इस संभावना पर बात हो रही थी कि क्या कुण्डलिनी योग से मृत या मरता हुआ शरीर पुनः जीवित हो सकता है। मुझे लगता है कि अगर शक्ति को सही ढंग से घुमाते हुए शरीर के बीमार हिस्सों पर सही से केंद्रित किया जाता रहे, तो ऐसा हो भी सकता है। पर इसके लिए बहुत समय और सूक्ष्म योग तकनीकें चाहिए। यह बहुत सूक्ष्म विज्ञान है। मैंने ऑटोबियोग्राफी ऑफ ए योगी और अन्य कई जगह एक सत्य घटना पढ़ी थी कि ज्यादा खाना खाने वाली एक बहू अपनी सास के ताने से दुखी होकर एक सुनसान जगह पर बैठी थी जब एक योगी ने उसे **कंठकूप** पर प्राण शक्ति को केंद्रित करने वाला योग सिखाया, जिसके बाद उसे कभी खाना खाने की जरूरत ही नहीं पड़ी। गले के गड्ढे में कोई भी शक्ति को केंद्रित कर सकता है, पर वह सूक्ष्म तकनीक किसी को पता नहीं जिससे वह प्रभाव पैदा हो। किसी का सिर भारी हो जाएगा, किसी को **सिरदर्द** होएगा आदि। सबसे बड़ी बात कि विश्वास कैसे होगा कि प्रभाव पैदा हो गया है। क्योंकि प्रभाव होने पर भी आदमी डर के मारे जबरदस्ती खाता ही रहेगा कि कहीं वह भूखा न मर जाए। ऐसा ही सभी विद्याओं के मामले में होता है, जब आदमी को विश्वास नहीं होता या उसे पता ही नहीं चलता कि उसे विद्या आ गई है। इसीलिए जानकीर **गुरु** की जरूरत पड़ती है। अब जैसे प्रेमी जोड़ा एकदूसरे के अंदर शक्ति का संचार करता है, वैसे ही कोई निपुण योगी मृत शरीर में भी शक्ति का संचार कर सकता है, सिद्धांत तो यही कहता है। शायद यही **मृतसंजीवनी विद्या** का आधार हो।

कई लोग छोटी-छोटी बातों की वजह से दोस्ती तोड़ने या ठुकराने पर आ जाते हैं, जिससे वे अपने लाभ से वँचित रह जाते हैं। उदाहरण के लिए, एकदिन मेरे एक फेसबुक

मित्र ने एक अध्याय शेयर की, जिसमें इस अवैज्ञानिक पर शास्त्रीय बात का मजाक बनाया हुआ था कि मोर के आँसू पीकर मोरनी गर्भवती हो जाती है। ऐसा प्रवचन करने वाली एक **साध्वी** की खिल्ली भी उड़ाई हुई थी। बिना तर्कवितर्क के **दुष्प्रचार** करने की उनकी आदत ही बन गई थी। मैंने उन्हें इसका **अध्यात्मवैज्ञानिक** स्पष्टीकरण दिया। मैंने कहा कि भाई, ऐसी कथाओं के बहुत मनोरंजक और ज्ञानवर्धक आध्यात्मिक अर्थ होते हैं, इन्हें कृपया भौतिक दुनिया से न जोड़ें। मोर बादल को देखकर नाचता है। मतलब वह **अवसाद** के माहौल में भी खुश रहना जनता है। मोर एक योगी की तरह है। संभवतः इसीलिए **योगीश्वर भगवान श्रीकृष्ण** मोरमुकुट पहनते थे। मतलब मोर ने दुःख या अवसाद के आंसू को गिरने दिया। उसने उन्हें रोका नहीं। अवसाद की मनोस्थिति को अभिव्यक्त होने दिया। अवसाद के विचारों को तनिक उमड़ने दिया। मोरनी यहाँ बुद्धि और मोर आत्मा का प्रतीक है। मोर मतलब आत्मा अंधेरारूपी अवसाद को अनुभव कर रहा है। उस आँसू मतलब अभिव्यक्त कटु विचारों की शक्ति को बुद्धि ने ग्रहण कर लिया, और उससे सुंदर व शक्ति से भरे विचारों के रूप में पुत्र को पैदा किया। **शास्त्रों** में मन के सशक्त व सुंदर विचारों को पुत्र कहने का प्रचलन है। कुण्डलिनी चित्र सबसे सुंदर विचार है, इसलिए उसे सर्वश्रेष्ठ पुत्र या **कार्तिकेय** का रूप दिया है। सबसे अच्छे तरीके के अनुसार बुद्धि ने कुण्डलिनी योग करने का निर्णय लिया। इससे बुरे विचारों की शक्ति चमकीले कुण्डलिनी चित्र को लग गई, जिससे अवसाद का अंधेरा खत्म हो गया, और साथ में सम्भवतः **कुण्डलिनी जागरण** भी मिला। जो कुण्डलिनी योगी नहीं था, उसकी बुद्धि ने कलापूर्ण ढंग से आदमी से ऐसी क्रियाएं करवाईं, जिनसे सुन्दर विचार उमड़ते हैं, जैसे कि लेखन, चित्रकारी, संगीत-वादन, अभिनय आदि। इससे भी अवसाद के धूमिल विचारों की शक्ति इन सुंदर विचारों को लग गई। मतलब साफ है कि अवसाद के गुब्बारे को फूटने देना चाहिए, उसे अंदर बंद करके नहीं रखना चाहिए। मेरे साथ भी एकबार ऐसा ही हुआ था, जब मेरे सामने संसार के बहुत से रास्ते बंद हो गए थे। नया काम कुछ था नहीं, इसलिए पुराने विचार मोर के आँसू की तरह उमड़ रहे थे। फिर मैंने **तांत्रिक** कुण्डलिनी योग से उन विचारों की शक्ति कुण्डलिनी चित्र को दे दी। मित्र ने उक्त स्पष्टीकरण के बारे में कोई विचार-चर्चा नहीं की, बल्कि फ्रेंडलिस्ट से ही बाहर हो गया। इससे तो पूरी तरह से सिद्ध हो जाता है कि मेरा निरुत्तर करने वाला विश्लेषण सटीक था। दुष्प्रचार करने वाले इसी तरह जुबानी फायर करके गायब हो जाते हैं। आपकी क्या राय है?

अध्याय-41
कुंडलिनी योगी नृसिंह भगवान रूपी ध्यानचित्र की मदद से हिरण्यकशिपु रूपी अहंकार व तांत्रिक पापों को भस्म करके प्रह्लाद रूपी आत्मबुद्धि की रक्षा करता है

प्रिय पाठको, पिछले अध्याय में मोर कैसे योगी बना हुआ था। **योगी का पिछला एनर्जी चैनल नर मोर है, तो अगला चैनल मोरनी है**। अवसाद से भरे माहौल में मूलाधार की शक्ति से उसके मस्तिष्क में बहुत से दोषपूर्ण विचार बनते हैं, क्योंकि शक्ति को व्यय होने का और रास्ता नहीं मिलता। उन्हीं विचारों अर्थात आंसुओं को वह **खेचरी मुद्रा** के रूप में उल्टी जीभ को मुंह के अंदर के नर्म तालु से छुआ कर पीता है। वही आंसू फ्रंट चैनल से नीचे उतरते हुए चक्रों पर विशेषकर **नाभि चक्र** पर कुण्डलिनी चित्र का रूप ले लेते हैं, मतलब **मोरनी गर्भवती** हो जाती है।

पुराणों की एक कथा के अनुसार **हिरण्यकशिपु** नामक एक राक्षस ने **ब्रह्मा** से वरदान मांगा कि न वह मनुष्य के द्वारा न पशु के द्वारा, न दिन में न रात में, न आकाश में और न धरातल पर, न घर के अंदर न बाहर, और न अस्त्र से और न ही शस्त्र से मारा जा सकेगा। हिरण्यकशिपु भगवान **विष्णु** को अपना कुलशत्रु मानता था। परंतु उसका बेटा **प्रह्लाद** विष्णुभक्त था। हिरण्यकशिपु ने उसे बहुत समझाया पर जब वह नहीं माना तो उसने उसे मारने के बहुत से प्रयास किए। एकबार उसने लोहे का खंबा लाल गर्म करवाया और प्रह्लाद को उससे चिपकने को कहा। प्रह्लाद ने एक चींटी को उस पर रेंगते हुए देखा तो बिना डरे उस खंबे को गले लगा लिया। तभी उससे एक विचित्र जीव निकला, जिसका मुंह शेर का था परंतु वह नीचे से आदमी था। उसका नाम **नृसिंह** था। उसने हिरण्यकशिपु को संध्या के समय, घर के दरवाजे पर ले जाकर, अपनी गोद में उठाकर अपने नखों से मार डाला।

हिरण्यकशिपु **तांत्रिक पाप** का प्रतीक भी है। तांत्रिक **पंचमकार** पापरूप ही तो हैं। पापरूपी शक्ति का रुझान भौतिक दुनिया की तरफ ज्यादा होता है। इसलिए वह आदमी को **अध्यात्म** की तरफ नहीं जाने देती। पर **गुरुकृपा** से आदमी का रुझान अध्यात्म की ओर हो जाता है। इसीको कथा में ऐसे कहा गया है कि पाठशाला के गुरु ने प्रह्लाद को अध्यात्म की तरफ मोड़ा। फिर हिरण्यकशिपु ने उस गुरु को हटा कर

छलकपट से भरी भौतिक शिक्षा देने वाला नया गुरु रख लिया। पर प्रह्लाद का स्वभाव नहीं बदला। मतलब साफ है कि **अंधी शक्ति** सच्चे गुरु से भी दूर ले जाने की कोशिश करती है, पर अगर सच्चे गुरु से थोड़ा सा भी संपर्क स्थापित हो जाए, तो वह कामयाब नहीं हो पाती। परिणामस्वरूप अध्यात्म की तरफ झुके हुए इन तांत्रिक पापों से आदमी की **सुषुम्ना** क्रियाशील हो जाती है। यही हिरण्यकशिपु द्वारा लाल गर्म लोहे का खंबा बनाना है। योगी द्वारा ध्यानचित्र को इसके साथ जोड़ना ही उसका इससे आलिंगन करना है, क्योंकि आदमी का अपना रूप भी वही होता है, जिसका वह हरपल **ध्यान** कर रहा होता है। ध्यानचित्र के जागने मतलब नृसिंह भगवान के प्रकट होने से अन्य सभी पापों के साथ कुण्डलिनी साधना की सफलता के लिए किए गए वे तांत्रिक पाप भी नष्ट हो जाते हैं। यही नृसिंह के द्वारा हिरण्यकशिपु का वध है। संध्या के समय उस जलते खम्बे से नृसिंह का प्रकट होना मतलब अन्य समय की अपेक्षा उस समय सुषुम्ना ज्यादा क्रियाशील होकर सहस्रार में ध्यान चित्र को जागृत जैसा करती है। सक्रिय सुषुम्ना नाड़ी ही वह दहकता लाल लौह स्तंभ है। सुषुम्ना भी रीढ़ की हड्डी के अंदर रहती है, जो लोहे की तरह कठोर है। क्योंकि कुंडलिनी चित्र को कई लोग **भूतिया** जैसा डरावना मानते हैं, क्योंकि उसका भौतिक अस्तित्व नहीं होता, इसीलिए उसको डरावने नृसिंह का रूप दिया गया है। ध्यान चित्र न मनुष्य होता है और न ही पशु। इसको ऐसे समझ सकते हैं कि जब **हनुमान**, **गणेश** जैसे अर्धमानुष रूपों का ध्यान किया जाता है, तब ध्यानचित्र सबसे ज्यादा अभिव्यक्त होता है। वह न अंदर होता है और न ही बाहर। इसका मतलब है कि ध्यानचित्र कोई भौतिक वस्तु नहीं है, बल्कि केवल एक **काल्पनिक चित्र** है। वह न दिन में अच्छे से बनता है और न रात को, बल्कि संध्या के समय कुंडलिनी योग करते हुए बनता है। वह हिरणयकाशीपु को गोद में उठाकर उसके पेट को नख से फोड़ता है, मतलब मूलाधार व **स्वाधिष्ठान** से **अवचेतन** और **अचेतन** मन के रूप में दबे **अहंकार** को ऊपर उठाकर उन्हें चक्रौँ पर प्रकट करके समाप्त करता है, मतलब यह विपासना साधना ही है। **सहस्रार चक्र में यह अहंकार पूरा अभिव्यक्त जैसा बना रहता है, और मूलाधार में सोया हुआ सा रहता है, इसलिए दोनों ही स्थानों पर मरने को नहीं आता। यह बीच वाले चक्रों में ही अर्धजागृत या अर्धसुशुप्त सा रहता है, इसलिए बीच में ही मरने को आता है। विपासना साधना के साक्षीभाव का भी तो यही सिद्धांत है**। यह शक्ति के द्वारा चक्रभेदन ही है। पहले अवचेतन मन रूपी धरातल से सुषुप्त विचारों और वासनाओं को प्राण शक्ति से जगा कर चक्रों पर अभिव्यक्त किया जाता है, फिर चक्रों पर प्राण के प्रवाह से उनका भेदन किया जाता है। दरअसल भेदन या नाश तो उन **वासनाओं व संस्कारों** का होता है, पर भेदन चक्रों का माना जाता है। क्योंकि पेट का **नाभि चक्र** सबसे प्रमुख होता है, इसलिए हिरण्यकशिपु का पेट फाड़ने की बात कही गई है। क्योंकि ज्यादातर योगी चक्रस्थान पर अंगुली का नख वाला सिरा रख कर नख से चक्र की तीव्र चुभन वाली संवेदना से या कम से कम अंगुली रखकर ध्यान को मजबूत करते हैं, इसीलिए कहा गया है कि नरसिंह ने हिरण्यकशीपु को नख

से फाड़ा। इसमें जो संतुलित या बीच वाली अवस्थाओं में हिरणकशिपु का वध है, वह यही बताता है कि **संगम अर्थात यिनयाँग** वाली अवस्था में ही सुषुम्ना क्रियाशील होती है। **अहंकार को न कोई मनुष्य मार सकता है, और न कोई पशु। उसे किसी भी अस्त्र–शस्त्र से नहीं मारा जा सकता। उसे न तो पूरी तरह बाहर अर्थात बाह्यमुखी होके मारा जा सकता है, और न ही पूरी तरह अंदर अर्थात अंतर्मुखी होकर, बल्कि दोनों के उपयुक्त मिश्रण से ही मारा जा सकता है।** कुण्डलिनी योगी को जो पीठ में अर्थात सुषुम्ना में रेंगती जैसी हल्की संवेदना महसूस होती है, उससे उसे कुण्डलिनी जागने बारे विश्वास हो जाता है, जिससे वह योगाभ्यास में लगा रहता है, और सुषुम्ना को क्रियाशील करके कुण्डलिनी जागरण प्राप्त कर लेता है। इसीको ऐसे कहा गया है कि प्रह्लाद को उस **जलते लोहस्तंभ** पर एक कीड़ी रेंगते हुए दिखी, जिससे आश्वस्त होकर उसने उसे गले लगा लिया, जिससे नृसिंह भगवान प्रकट हुए।

अध्याय-42

कुण्डलिनीछवि ही भगवान वामन का अवतार लेकर, जागृत होकर और अहंकाररूपी राजा बलि को पाताललोक भेजकर पूरी सृष्टि पर कब्जा कर लेती है

दोस्तों, धर्म का शास्त्रीय मतलब है लाइफस्टाइल। जिसका लाइफस्टाइल कट्टर है, वह पिछड़ जाता है। नोकिया ने समय के साथ बदलाव नहीं किया। साथ में, यह निष्कर्ष भी निकला था कि जिन बहुत से लोगों को मनोरोगी समझकर उनके ऊपर दवाईयों से, शोषण से या सामाजिक बहिष्कार से उन्हें दबाया जाता है, वे दरअसल जागृति के रोगी होते हैं। काश कि मनोविज्ञान कुंडलिनी के लक्षणों और मनोरोग या मूर्खता के लक्षणों के बीच अंतर कर पाता। मुझे लगता है कि यह अंतर कर पाना पश्चिमी सभ्यता जैसी संस्कृति के लिए कठिन है, पर पूर्वी संस्कृति वालों को तो इसका अनुभव प्राचीन काल से ही है। खैर, आपने देखा होगा, पिछले अध्याय में शेर कैसे योगी बना था। वैसे तो सिंघासन नाम का एक योगासन भी होता है। वैसे भी कुंडलिनी योगी को अजगर या ड्रेगन जैसा रूप दिया गया है, जिसका मुंह भी शेर की तरह खुला हुआ है। योग सांसों का खेल है, और शेर भी सांसों की ताकत से दहाड़ता है और अपने चेहरे को खतरनाक बना लेता है। सनातन पुराणों में इसी तरह की एक दंतकथा आती है कि वामन भगवान ने तीन पग में सारी धरती माप ली थी। दरअसल तीन कदम सत्त्व, रज और तम, तीन गुणों के प्रतीक हैं। इड़ा नाड़ी देवी अदिति है, और पिंगला नाड़ी देवी दिति है। पिंगला दुनियावी भेद बुद्धि और अहंकार को बढ़ाती है, मतलब राक्षसी द्वैत भाव, रजोगुण व तमोगुण को बढ़ाती है। पर इड़ा नाड़ी शांति, तनावरहित्य, अद्वैतभाव व सत्वगुण जैसे दैवीय भाव पैदा करती है। इसीलिए कहते हैं कि अदिति सभी देवताओं की मां है और दिति सभी राक्षसों की मां। कश्यप मुनि की ये दोनों पत्नियां थीं। कश्यप ब्रह्मा के पुत्र थे। ब्रह्मा मन ही है। क्योंकि मन ही सारे संसार को रचता है। वह कमल पर बैठता है, सहस्रार रूपी कमल पर। जब आत्मा का स्थान सहस्रार बताया जाता है, तो मन का भी यही हुआ क्योंकि दोनों आपस में जुड़े हैं, एक के बिना दूसरा नहीं। ऋषि कश्यप अवचेतन मन है, क्योंकि वह मन से ही पैदा होता है। वह मूलाधार में रहता है। क का मतलब जल होता है, और श्य शयन शब्द से बना है, मतलब जल में सोने वाला। जल

वीर्य द्रव और रीढ़ की हड्डी में बहने वाले सेरेब्रोस्पाइनल फ्लूड के रूप में है, और अवचेतन मन को सोए हुए आदमी के रूप में दिखाया गया है, क्योंकि इसमें ही सभी भावनाएं दबी–सोई रहती हैं। यह अवचेतन मन मूलाधार व स्वाधिष्ठान चक्रों जैसे गहरे व अंधेरे गड्ढों जैसे स्थानों में रहता है। जब इसके जागते हुए भावों या विचारों को अद्वैत भाव अर्थात इड़ा नाड़ी का साथ मिलता है, तब वे भाव देवता बन जाते हैं, पर जब द्वैत भाव अर्थात पिंगला नाड़ी का साथ मिलता है, तब वे राक्षस बन जाते हैं। ये जागते विचार ही कश्यप और अदिति या दिति के पुत्र हैं। अदिति और दिति के रूप में क्रमशः इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ ही उसकी दो पत्नियां हैं, क्योंकि वह इन्हीं की मदद से पुत्ररूप में जागता है, मतलब शक्तिमान होता है। मानसिक कुंडलिनी छवि ही वामन भगवान है। यह सभी विचाररूपी पुत्रों में श्रेष्ठ है, इसलिए इसे भगवान विष्णु का अवतार कहा गया है। एकदम मस्त मनोविज्ञान है। ब्रह्मा मूल मन है। वास्तव में वही किस्म किस्म की सांसारिक रचनाएं जैसे घर, बाग, सड़क, पुल आदि बनाता है। वह सीधा विचाररूपी पुत्रों को पैदा नहीं करता। वह पहले अवचेतन मनरूपी कश्यप मुनि को पैदा करता है। उसीसे विचाररूपी पुत्र बनते हैं। आपने भी देखा होगा कि अगर आप दुनिया में कुछ काम न करो तो सीधे कोई मजबूत विचार नहीं बनेंगे। काम करने से उसकी यादें अवचेतन मन में समा जाती हैं, जो बाद में शक्तिशाली विचारों के रूप में उमड़ती रहती हैं। पिंगला नाड़ी के अधिकार क्षेत्र में आने वाला बायां मस्तिष्क राक्षसराज बलि के अधिकार में है, इड़ा–शासित दायां मस्तिष्क देवताओं के अधिकार में है। राजा बलि अहंकार है। अहंकार बलवान ही होता है। बलि नाम उसको इसलिए भी दिया हुआ लगता है क्योंकि अहंकार अपनी ताकत को बनाए रखने के लिए जीवों की बलि लेता है, हिंसा करता है। कुण्डलिनी छवि इड़ा के प्रभाव से बनती है। वैसे तो इड़ा और पिंगला दोनों संतुलित रूप में होनी चाहिए, क्योंकि दोनों का अस्तित्व एकदूसरे पर निर्भर है, पर इड़ा तुलनात्मक रूप से ज्यादा प्रभावी होनी चाहिए। इड़ा नाड़ी के प्रभाव में आदमी शांत, तनावरहित, अच्छी भूख व अच्छे पाचन से सम्पन्न हो जाता है। इसी चैन की अवस्था में शुभ विचार के रूप में कुण्डलिनी चित्र मन में डेरा डालता है, मतलब देवमाता अदिति से वामन भगवान का जन्म होता है। देखने को तो वह एक छोटा सा अकेला मानसिक चित्र है, इसीलिए उसे बौना कहा है। वह राजा बलि से ब्रह्माण्ड में अपने लिए सिर्फ तीन पग भूमि मांगता है। एक मानसिक छवि कितना स्थान लेगी। हरेक मानसिक वस्तु की तरह वह ध्यानचित्र भी तीन गुणों से ही बना है, सत्त्व, रज और तम। यही तीन पग हैं। आदमी का अहंकार रूपी बलि उसे उतनी जगह भी दे देता है, और सोचता है कि उससे उसका क्या नुकसान होगा। अहंकार बहुत बलशाली होता है। वह दुनिया के बड़े से बड़े काम करता है। छोटे से एकमात्र कुण्डलिनी चित्र को वह मजाक में लेता है। रीढ़ की हड्डी शंख है। इसका शंख जैसा ही रूप है, सिर के भाग में चौड़ी और निचले भाग में पतली। इसमें स्थित मेरुदंड या सुषुम्ना नाड़ी ही शंख के अंदर की ड्रेन या नाली है। नाड़ी शब्द नदी शब्द से ही बना है। उस ड्रेन में बहने वाला जल ही कुंडलिनी शक्ति की संवेदना है। शक्ति भी जल प्रवाह की तरह बहती है। क्योंकि

इसमें कुण्डलिनी ध्यान या संकल्प मिश्रित होता है, इसलिए इसे संकल्पजल कहा गया है। ध्यान को ही संकल्प कहते हैं। सनातन धर्म में हरेक धार्मिक अनुष्ठान के दौरान शंख या अर्घे (पूजा का एक विशेष बर्तन) या आचमन से जल गिराते हुए संकल्प किया जाता है, मतलब उस अनुष्ठान के कारण, विधि, पुरोहित, और फल अर्थात उद्देश्य के बारे में कुछ क्षणों के लिए गहरा ध्यान किया जाता है। यज्ञ में बैठे हुए बलि ने शंख से जल गिराते हुए वामन भगवान को तीन कदम भूमि देने का संकल्प लिया था। संभवतः जल गिराने से कुण्डलिनी शक्ति बहने लगती है, क्योंकि दोनों में समानता है, जिससे ध्यान मजबूत होता है। अरघे या शंख से जल की गिरती धारा के साथ कुण्डलिनी शक्ति भी फ्रंट चैनल से नीचे की ओर बहने लगती है, जिसके दबाव से वह बैक चैनल में से गुजरते हुए पीठ से ऊपर चढ़ जाती है, और अपने साथ मूलाधार की अतिरिक्त व विशेष कुण्डलिनी शक्ति भी ले जाती है। कुण्डलिनीसंकल्प रूपी वामन, पतली मेरुदंड रूपी सुषुम्ना–शंख में, बह रहे शक्तिरूपी संकल्पजल की मदद से योगसाधना से बढ़ता ही रहता है, और अंत में जागृत होकर सम्पूर्ण सृष्टि को व्याप्त कर लेता है। यही तीन पग से तीनों लोकों को मापना है। इससे अहंकार खुद ही अवचेतन रूपी पाताल लोक में दब जाता है। जिसे ऐसे कहा गया है कि तीसरा पग वामन ने बलि के सिर पर रखा। यह कथा आने वाली अगली अध्याय में भी जारी है।

अध्याय-43

कुंडलिनी वामन भगवान बनके शुक्राचार्य की द्वैतरूपी आंख फोड़ती है

दोस्तों, पिछले अध्याय को जारी रखते हुए, वह बलिरूपी अहंकार वामन को मजबूरन आने देता है, और उसे अंदेशा भी हो जाता है कि वह कुंडलिनी जागरण के बाद बच नहीं सकता। वैसे महिमा ऐसे गाई गई है कि राजा बलि सबसे बड़ा दानवीर था, जिसने अपना भावी नाश जानते हुए भी वामन को तीन पग जमीन दान में दी। हरेक जीव राजा बलि की तरह परम दानवीर होता है। वह यह जानकर कि कुंडलिनी योग से उसका अहंकार नष्ट हो जाएगा, उसका असीमित भौतिक संसार नष्ट हो जाएगा, फिर भी वह कभी न कभी जरूर कुंडलिनी साधना करता है। जब आदमी राजा बलि की तरह अच्छे कर्मों में लगा होता है, तब कभी न कभी भगवान विष्णु उसका भला करने एक ध्यानचित्र के रूप में उसके पास आते हैं। वे मित्र, प्रेमी, गुरु या देवता किसी भी रूप में हो सकते हैं। गुरु को भी तो भगवान का ही रूप समझा जाता है। वैसे भी हर किसी के लिए अपना प्रेमी भगवान ही होता है। उदाहरण के लिए मान लो कि किसी पुरुष की जिंदगी में एक स्त्री का प्रवेश होता है। पुरुष के बीसों कारोबार होते हैं, और सैंकड़ों रिश्ते। उनके कारण उसके मन में अनगिनत विचारचित्र बने होते हैं। इसलिए वह उस स्त्री को हल्के में ले लेता है, और सोचता है कि उसके विस्तृत भौतिक संसार के सामने एक स्त्री कुछ भी नहीं है। वह उसे अपने मन में जगह बनाने देता है, मतलब वह उससे जुड़े भाव या सत्त्वगुणरूपी पहले कदम, गति या रजोगुणरूपी दूसरे कदम, और अंधकार या तमोगुणरूपी तीसरे कदम को अपने मनरूपी साम्राज्य में पड़ने देता है। पर धीरेधीरे उसका उसके प्रति प्यार बढ़ता रहता है, और समय के साथ वह उसके मन में ज्यादा से ज्यादा जगह घेरती रहती है। आखिर में वह उसके पूरे साम्राज्य में फैल जाती है, और फिर जागृत होकर आदमी के राजाबलिरूपी अहंकार को खत्म ही कर देती है। कुंडलिनी योग में भी ऐसा ही होता है। इसका मतलब है कि योग और प्रेम के बीच में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं है। राजा बलि भी बहुत बड़ा यज्ञ मतलब अच्छा काम ही कर रहा था। आदमी को पता चल जाता है कि वह ध्यानचित्र के चक्कर में पड़कर बावला प्रेमी या योगी या प्रेमयोगी या प्रेमरोगी बन जाएगा, फिर भी वह उसे अपनाता है, और आगे बढ़ाता है। उसने कुण्डलिनी जागरण के माध्यम से एक कदम से मतलब सत्वगुण से सारा स्वर्ग कब्जे में कर लिया। स्वर्ग सतोगुण प्रधान होता है। क्योंकि कुंडलिनी जागरण के समय तीनों गुण अनंत हो जाते हैं, इसीलिए कहा गया है कि कुंडलिनी या वामन से तीनों लोक पूरी तरह से व्याप्त हो गए मतलब भर गए। दूसरे कदम मतलब रजोगुण से कुण्डलिनी चित्र पूरी धरती में फैल गया, क्योंकि धरती रजोगुणप्रधान है। तमोगुणरूपी तीसरे कदम से अहंकार व उससे जुड़े कर्मविचार मूलाधार के अँधेरे

अवचेतन अर्थात पाताल में चले जाते हैं। क्योंकि तमोगुण किसी को मारकर या नष्ट करके ही बनता है, इसलिए वह अहंकार और उससे पोषित मानसिक सृष्टि को नष्ट करने से बनता है। पाताल लोक के द्वारपाल के रूप में भगवान विष्णु के स्थित हो जाने का मतलब है कि ध्यानचित्र कुंडलिनीयोग के माध्यम से उन राक्षसों को अर्थात अवचेतन में दबे विचारों को ऊपर अर्थात मस्तिष्क या स्वर्ग की तरफ जाने देकर शुद्ध करता रहता है, ताकि सब देवता ही बन जाएं। साथ में, विष्णुस्वरूप ध्यानचित्र को कुंडलिनी योग से स्वाधिष्ठान और मूलाधार चक्रों पर केंद्रित किया जाता रहता है, जिससे उनमें दबी हुई राक्षसरूपी भावनाएं उजागर होकर उसके संपर्क में आने से शुद्ध बनी रहती हैं, जिससे वे योगी को बंधन में नहीं डाल पातीं, मतलब राक्षस देवताओं को परेशान नहीं कर पाते, क्योंकि शरीर में ही सभी देवता बसे हुए हैं। वैसे भी स्वाधिष्ठान चक्र को इमोशनल बैगेज मतलब भावनाओं की गठरी कहते हैं।
यज्ञ में बलि के पुरोहित बने हुए राक्षसगुरु शुक्र आचार्य पहले बलि को बहुत समझाते हैं कि वह वामन पर भरोसा न करे क्योंकि वह तीन कदमों में ही उसका सबकुछ छीन लेंगे। पर जब बलि नहीं मानता तो शुक्राचार्य संकल्पजल गिरा रहे शंख के सुराख़ में घुस जाते हैं, पर वामन उसमें कुशा डालकर उसकी आंख फोड़ देते हैं? एक बात और, क्योंकि शंख भी जीव की पीठ पर होता है, और रीढ़ की हड्डी की तरह ही उसे सुरक्षा देता है, इससे भी पक्का हो जाता है कि सुषुम्ना नाड़ी को ही शंख कहा गया है। साथ में, शंख का आकार भी एक फन उठाए नाग या ड्रेगन के जैसा ही होता है, जिसकी समानता मेरुदंड व उसमें स्थित सुषुम्ना के साथ की जाती है। एक अनुभवी कुलपुरोहित कभी भी अपने यजमान को अध्यात्म के बीहड़ में नहीं खोने देना चाहता, बेशक उससे यजमान का फायदा ही क्यों न हो। उसे पता होता है कि अगर यजमान को सत्य का पता चल गया तो उसे ठगकर उससे यज्ञ आदि कर्मकांड के नाम पर पैसा ऐंठना आसान नहीं रहेगा। हालांकि अपनी जगह पर कर्मकाण्ड सही है और जागरण के लिए महत्त्वपूर्ण सीढ़ी है, पर मंजिल मिलने पर कौन सीढ़ी की परवाह करता है। वैसे भी वह भौतिकवादी गुरु है। शुक्राचार्य अर्थात भौतिक विज्ञानवादी व्यक्ति या गुरु द्वारा शुक्र अर्थात वीर्य को बाहर बहा कर सुषुम्ना के शक्ति प्रवाह को ब्लॉक करना ही शंख में घुसना है। वामन का उसको कुशा डंडी द्वारा खोलना ही योगी द्वारा कुण्डलिनी ध्यानचित्र के माध्यम से मूलाधार से शक्ति को ऊपर चढ़ाना है। यह मूलाधार से लेकर सहस्रार तक फैली हुई संवेदना की रेखा जैसी होती है जो रीढ़ की हड्डी में होती है। यह झाड़ू या कुशा की सींक जैसी पतली फील होती है। यही सुषुम्ना जागरण है। अगर संभोग से पहले पीठ की विशेषकर मेरुदंड की ढंग से मालिश करवा ली जाए, तो यह संवेदना रेखा आसानी से और आनंद के साथ महसूस होती है। फिर वीर्य शक्ति आसानी से ऊपर चढ़ती है, जिससे संभोग बहुत आनंदमय और आध्यात्मिक बन जाता है। यौनांगों का दबाव भी एकदम से खत्म हो जाता है। आदमी अक्सर ऐसा कुंडलिनीजनित आनंद के लालच से प्रेरित होकर करता है, इसीलिए मिथक कथा में कहा गया है कि वामन ने ऐसा किया। इससे शुक्राचार्य की आंख फूटना मतलब कुण्डलिनी के प्रभाव

से वीर्यशक्ति की द्वैत दृष्टि अर्थात दोगली नजर नष्ट होना है। जब वीर्यशक्ति द्वैत से भरे संसार की तरफ न बहकर अद्वैत से भरी आत्मा की तरफ बहेगी, तो स्वाभाविक है कि वीर्यशक्ति की दोगली नजर नष्ट होगी ही। बलि या अहंकार पाताल को चला जाता है, मतलब कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी व्यक्त अर्थात प्रकाशमान जगत का अहंकार नहीं कर सकता क्योंकि उसने सबसे अधिक प्रकाशमान कुंडलिनी जागरण का अनुभव कर लिया है। इसलिए वह स्थूल जगत से उपरत सा होकर अपने सूक्ष्म शरीर के रूप में अव्यक्त अन्धकार सा बन जाता है। यही उसका पातालगमन है। हालांकि सूक्ष्म शरीर के धीरे-धीरे स्वच्छ होने से स्वच्छ होता रहता है। इसे ही ऐसे कहा गया है कि भगवान विष्णु उसके द्वारपाल के रूप में पहरा देते हैं।

अध्याय-44

कुंडलिनी शक्ति ही राक्षस वृत्रासुर को इंद्र-वज्र बन कर मारती है

मित्रो, पिछले अध्याय में हमने देखा कि कैसे शुक्राचार्य के रूप में सांसारिक बुद्धि बलि के रूप में बने जीवात्मा को जागृति से वंचित रखना चाहती है। बहुत सुंदर कथा है। ऐसी ही एक सुंदर व योगरहस्यात्मक कथा वृत्रासुर वध की पुराणों में आती है। देवताओं ने दैत्य वृत्रासुर को मारने के लिए दधीचि ऋषि की अस्थियों से वज्र बनाया था। वृत्र शब्द वृत्ति शब्द से बना लगता है। इसका मतलब है मन के संकल्प। चित्त में वृत्ति होती है। चित्त मतलब उन विचारों का संग्रह जो पहले कभी आए थे, और अब याददाश्त में जमा हैं। इसीलिए याद आने को चेता आना भी कहते हैं। उनको कुंडलिनी जागरण ही क्षीण या पंगु कर सकता है। ऐसा लगता है कि कुंडलिनी जागरण मेरुदंड में स्थित सुषुम्ना के क्रियाशील होने से ही मिल सकता है, अन्यथा नहीं। वृत्रासुर वज्र प्रहार से मरा, मतलब मेरुदंड में सुषुम्ना के जागने से ही कुण्डलिनी जागरण हुआ। उसको ऐसे कहा गया है कि वज्र के साथ विश्वकर्मा ने एक बाण भी बनाया। वज्र का आकार दंडवत कहा गया है। रीढ़ की हड्डी भी दंडवत ही होती है। तीर का नाम ब्रह्मशिर है, मतलब वह ब्रह्मरंध्र तक जाता है, जो सिर के सिरे मतलब शिखर पर है। यह तीर सुषुम्ना नाड़ी ही है। दधिचि ऋषि की हड्डियों से विश्वकर्मा ने और भी बहुत से अस्त्र बनाए थे। मतलब कि योगासन हड्डियों की सहायता से ही संभव हो पाते हैं। हड्डियों के विभिन्न जोड़ ही हमें विभिन्न आसन लगाने में मदद करते हैं। फिर उन आसनों से शरीर में उर्जा संचरण होता है, जो शक्ति को जगाने में मदद करता है। वह वृत्रासुर सभी देवताओं को परेशान करता था। इसका मतलब है कि मन की चंचलता व बेचैनी से शरीर का चयापचय गड़बड़ा जाता है, और उसमें विभिन्न रोग घर कर जाते हैं। शरीर देवताओं से ही तो बना है। विश्वकर्मा का शाब्दिक अर्थ होता है, विश्व के सभी कार्य करने वाला, मतलब विश्व को बनाने वाला। सारा विश्व शरीर में ही तो बसा हुआ है। कथा में कहा गया है कि रीढ़ की हड्डियों से वज्र और ब्रह्मशिर नाम का तीर बनाया। यह भी कहा गया है कि इंद्र ने सुरभि को बुलाकर उससे अस्थियों को चटवाया और फिर विश्वकर्मा को उनसे वज्र के निर्माण की आज्ञा प्रदान की। शिवजी के तेज से वृद्धि को प्राप्त इंद्र उस वज्र को उठाकर बड़े वेग से वृत्रासुर पर क्रोध करके इस प्रकार दौड़े, मानो रुद्र यम की तरफ़ दौड़ रहे हों। इसके बाद उन इंद्र ने भलीभांति सन्नद्ध होकर शीघ्रता से उस वज्र के द्वारा उत्साहपूर्वक पर्वतशिखर के समान वृत्रासुर का सिर काट दिया। यह अलंकारिक भाषाशैली है। शिवजी के तेज से, मतलब तंत्र की सहायता से, क्योंकि शिव ही तंत्र के आदिप्रवर्तक हैं। यह कुंडलिनी जागरण की ऊर्जावान अवस्था का ही वर्णन है। क्योंकि चित्तवृत्तियां

सिर में ही पैदा होती हैं, इसीलिए वृत्रासुर का सिर काटने की बात कही है। यह कथा अगली अध्याय में भी जारी है।

जब सभी देवता मिलजुल कर काम करते हैं, तो ऐसा कहा जाता है कि इंद्र ने वह काम किया, क्योंकि इंद्र ही देवताओँ का राजा है। कुंडलिनी योग शरीर के सभी अंगों मतलब सभी देवताओं के मिलेजुले प्रयास से ही संपन्न होता है। इसीलिए कहा है कि इंद्र ने वृत्रासुर को मारा। मुझे लगता है कि सुरभि गाय के द्वारा चटाना खेचरी मुद्रा को कहा गया है, जिसमें उल्टी जीभ नरम तालु के साथ छुआई जाती है। क्योंकि सिर रीढ़ की हड्डी के साथ सीधा जुड़ा है, इसलिए वज्र का ही हिस्सा है। इससे ही ऊर्जा नाड़ी लूप में आसानी से घूमती है। उसके बाद वज्रनिर्माण शुरु होता है, मतलब रीढ़ की हड्डी में उर्जा के दौड़ने का आभास होने लगता है।

विश्वकर्मा ने बनाया, मतलब वह निर्माण वैज्ञानिक सिद्धांत से अपने आप होता है, उसे कोई आदमी नहीं बनाता। बस, अपनेआप होने के लिए अनुकूल परिस्थितियां तैयार करनी पड़ती हैं। विश्व भी अपनेआप ही बनता है। इसी अपनेआप होने को सजाने के लिए विश्वकर्मा का नाम दिया गया है।

अध्याय-45
कुंडलिनी की सहायता के बिना देवता भी कामयाब नहीं हो पाते

पिछले अध्याय को जारी रखते हुए, बुद्धिस्म में तंत्र वाली शाखा को वज्रयान नाम इसीलिए दिया गया है। प्रेमयोगी वज्र नाम भी इसीलिए पड़ा है। उसकी साधना में मूलरूप में तो प्रेमयोग ही है, पर उसमें तंत्र का भी अच्छा योगदान है। देवताओं ने वृत्रासुर के साथ लंबे अरसे तक युद्ध किया था। परंतु वे उसे हरा न सके थे। अंत में वे हार मानते हुए अपने अस्त्रशस्त्र दधिचि मुनि के आश्रम के निकट छोड़कर भाग गए। इसका मतलब है कि देवताओं ने दुखों के विचारों से बचने के लिए आदमी के शरीर में हाथपैर, आंखें, कान, मस्तिष्क आदि अनेकों अंग लगाए। पहले आदमी कीटाणुविषाणु की तरह एककोशिकीय जीव होता था। वह तो दुःख से भरी अवस्था ही थी। उस दुःख को दूर करने के लिए देवताओं ने कई युगों तक उस प्राथमिक जीव का विकास किया। अंत में मनुष्य शरीर बना। इतनी मेहनत के बाद भी दुखों का अंत कहां हुआ। उल्टा वह बढ़ने ही लगा। आज विज्ञान जितनी ज्यादा तरक्की कर रहा है, प्रकृति से उतनी ही ज्यादा छेड़छाड़ बढ़ रही है, जिससे जानमाल की तबाहियां भी बढ़ रही हैं। प्राकृतिक आपदाएं बढ़ रही हैं। हत्या, लूटपाट आदि अपराध बढ़ रहे हैं। मन के मुख्य पांच दोष काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर और उनसे पैदा होने वाले अनगिनत मानसिक विकार जैसे कि अवसाद, अकेलापन, हिंसा, स्वार्थभाव आदि बढ़ ही रहे हैं। मतलब दुखों के पहाड़ के रूप में वृत्रासुर का ही हमला हो गया। मजबूरन देवताओं ने हाथ खड़े कर दिए। दधिचि मुनि यहां आत्मा को कहा गया है। उसके आश्रम के निकट देवताओं ने हथियार छोड़ दिए, मतलब उन्होंने शरीर के सभी अंग निर्मित कर दिए, क्योंकि शरीर ही आत्मा के सबसे निकट है। देवताओं ने हार मान ली, मतलब इंद्रियों व अंगों के बल से चित्त का अहंकाररूपी परम दुख या शत्रु कभी नष्ट नहीं हो सकता था, यह पूरी तरह से सिद्ध हो गया था, छोटेमोटे शारीरिक व मानसिक दुख बेशक दूर हो जाते। यह परम दुख ही वृत्रासुर राक्षस था। शिव के वरदान से ही दधीचि मुनि की अस्थियां वज्रतुल्य बनी थीं। मतलब कि शिवप्रदत्त योग से हड्डियों में, विशेषकर रीढ़ की हड्डी में इतनी लोच व जीवंतता थी कि उसमें कुंडलिनी ऊर्जा आसानी से प्रवाहित हो सकती थी। वज्रपात बिजली गिरने को कहते हैं। उससे कठोर चट्टान भी टूट जाती है, और साथ में उसमें बिजली भी प्रवाहित होती है। इसी तरह रीढ़ की हड्डी की सुषुम्ना नाड़ी में प्रकाशमान ऊर्जारेखा का दौड़ना ही बिजली गिरने के समान है, और उससे अहंकार का नष्ट होना ही चट्टान के टूटने जैसा है। अहंकार ही दुनिया की सबसे कठोर वस्तु है, जिसे तोड़ना सबसे कठिन है।

कहते हैं कि ऋषि दधिचि की सुवर्चा नाम की एक पत्नी भी थी। जब देवता ब्रह्मा के पास सहायता मांगने गए थे, तब उन्होंने ही उन्हें दधीचि से अस्थियां मांगने की सलाह दी थी। सुवर्चा अंदर वाले कक्ष में थी, और देवता बाहर वाले कक्ष में बैठे दधीचि से उनकी हड्डियां मांग के ले गए। दधीचि ने योगसमाधि लगा कर शरीर छोड़ दिया और वे ब्रह्म में विलीन हो गए। जब सुवर्चा को पता चला तो वह बहुत क्रोधित हुई, और उसने देवताओं को श्राप दिया। उस समय सुवर्चा गर्भवती थी। ऋषि की वीर्यशक्ति से उसे दूसरे शिव के समान महान पुत्र प्राप्त हुआ। उसका नाम पिप्पलाद था। सृष्टि के मूल निर्माता तो ब्रह्मा ही हैं। उन्हें पता है कि देवता जितना मर्जी जोर लगा लें, पर वे आध्यात्मिक अज्ञान को नहीं मिटा सकते। यह भी उन्हें पता था कि योगी के मेरुदंड में स्थित सुषुम्ना में ऊर्जाप्रवाह से जब कुंडलिनी जागरण होगा, उसी से वह मर सकता है। जागृति से अज्ञान तो मिटेगा ही, अहंकार भी मिटेगा। अहंकार ही मनुष्य का अपना साधारण या लौकिक अनुभव वाला रूप होता है। जब अहंकार ही नहीं, तब मनुष्य का अस्तित्व भी कैसे रह सकता है। इसी को ऐसा कहा है कि दधीचि मुनि खुद शरीर छोड़कर चले गए। दरअसल अहंकार तो जागृति से पहले ही खत्म हो चुका होता है। तभी तो जागृति का अनुभव होता है। जरा भी अहंकार रहने से जागृति का अनुभव कैसे हो सकता है, क्योंकि दोनों एकदूसरे के बिल्कुल विपरीत हैं। तांत्रिक योगसाधना से जब योगी का अहंकार नष्टप्राय हो जाता है, तभी जागृति की असली शुरुआत होती है। अहंकार खत्म होने से योगी के मस्तिष्क में सांसारिक कचरा भी कम से कम रहता है, जिससे कुंडलिनी को जागृत होने के लिए पर्याप्त नाड़ी शक्ति उपलब्ध हो जाती है। ऋषि दधीचि की पत्नि जो सुवर्चा है, वह दरअसल बुद्धि है। अहंकार के नष्ट हो जाने से आदमी का रूपांतरण जैसा हो जाता है। रूपांतरण से पुराने विचार और स्मरण भुने बीज की तरह नष्टप्राय जैसे हो जाते हैं। पर वह प्रकाशमान बुद्धि या सद्‌बुद्धि बनी रहती है, जो अच्छे रास्ते पर लगाती है। पुराने अनुभव भी याद रहते ही हैं। संस्कृत शब्द वर्चस का अर्थ प्रकाशमान होता है। उसने देवताओं को श्राप दिया, मतलब तब शरीर देवताओं के अधीन रहकर मनमाना आचरण नहीं करता, बल्कि सद्‌बुद्धि के दिशानिर्देशन में रहकर युक्तियुक्त व्यवहार ही करता है। आदमी के रूपांतरण के बाद जो उसकी नई, जागृत व देवतुल्य अवस्था आती है, उसे ही पुत्र पिप्पलाद कहा गया है। वह रुद्र अर्थात शिव की तरह तंत्रात्मक अवस्था होती है, इसीलिए उसे रुद्रावतार कहा गया है।

कुंडलिनीजागरण के रूप में ब्रह्मास्त्र के दुष्प्रभावों से शैवास्त्र या पाशुपत अस्त्र ही बचा सकता है

दोस्तो, महाभारत में अश्वत्थामा नाम का एक महान व्यक्ति चरित्र है। उनको भगवान शिव का अवतार कहा गया है। वे गुरु द्रोणाचार्य के पुत्र थे। द्रोणाचार्य कौरवों और पांडवों के गुरु थे। वे सभी विद्याओं में प्रवीण थे, पारलौकिक ब्रह्मविद्या में भी। वे ब्राह्मण थे, और उस समय असली ब्राह्मण उसीको समझा जाता था, जिसे ब्रह्मविद्या आती थी। नाम के ब्राह्मण तो बहुतेरे होते थे। ब्रह्मविद्या कुंडलिनीविद्या का ही पर्याय है, क्योंकि दोनों से ब्रह्मरूप जागृति की प्राप्ति होती है। द्रोणाचार्य के पास सबसे बड़ा युद्धास्त्र माने ब्रह्मास्त्र भी था। ब्रह्मास्त्र में पूरी सृष्टि को जलाने की क्षमता होती है, नाभिकीय हथियार की तरह। द्रोणाचार्य ने वह अतिगुप्त ब्रह्मास्त्रविद्या सिर्फ अपने पुत्र अश्वत्थामा को प्रदान की थी, अपने सर्वप्रिय शिष्य अर्जुन को भी नहीं। जब कौरव हार गए, तब उससे हताश और दुखी दुर्योधन ने अश्वत्थामा से मदद मांगी। वह भी अपने प्रिय मित्र की मांग को ठुकरा नहीं सका। वह रात के अंधेरे में पांडवगृह से पांच सोए हुए पुरुषों को पांडव समझ कर उनके सिर काट कर ले गया। दरअसल वे पांडवों के पांच पुत्र थे। द्रौपदी के विलाप से गुस्से से भरकर अर्जुन श्रीकृष्ण के साथ रथ पे बैठकर उसका पीछा करने लगे। अश्वत्थामा डरकर भाग गया और उसने अर्जुन पर ब्रह्मास्त्र अर्थात ब्रह्मशिर अस्त्र चला दिया। उससे सारी सृष्टि को खतरा पैदा हो गया। उसकी तेज चमक से सृष्टि जलने लग पड़ी। उससे सभी दिशाओं में प्रचंड तेज पैदा हो गया। अपने प्राणों पर आई हुई आपत्ति को देखकर अर्जुन दुखी हुए और उनका तेज नष्ट हो गया। श्रीकृष्ण भी उस अस्त्र को नहीं रोक पा रहे थे। उसे रोकने की विद्या अश्वत्थामा ने अपने पिता से नहीं सीखी थी। अश्वत्थामा भी अपनी गलती महसूस कर रहा था, पर कुछ नहीं कर पा रहा था। उसे श्रीकृष्ण समेत सबने बहुत लताड़ा कि जब उसे ब्रह्मास्त्र को रोकना नहीं आता था, तब उसने उसे क्यों चलाया। फिर श्रीकृष्ण की सलाह से अर्जुन ने भगवान शिव का ध्यान करते हुए उनके द्वारा प्रदत्त शैवास्त्र अर्थात पाशुपत अस्त्र को चला कर उसे शान्त किया। उससे होने वाला नुकसान टल गया, हालांकि वह उत्तरा के गर्भ को जलाने की कोशिश कर रहा था पर श्रीकृष्ण ने उसे पाशुपत अस्त्र के प्रयोग तक बचा लिया था।

उपरोक्त कथा का अध्यात्मवैज्ञानिक विश्लेषण

पहली बात, साथ के एक श्लोक में इस ब्रह्मास्त्र को वही ब्रह्मशिर तीर भी कहा गया है, जिसको ऋषि दधिचि के मेरुदंड से बना कर उससे दैत्य वृत्रासुर को मारा गया था। हाल की पुरानी पोस्ट में हमने सिद्ध किया था कि वह जागृत सुषुम्ना रूपी शक्तिरेखा है। दूसरा,

अश्वत्थामा एक ज्ञानी ब्राह्मण था, जिसको उसके वेदपारंगत पिता द्रोणाचार्य ने सारी शिक्षादीक्षा दी थी। ब्राह्मण का काम वेदों के अध्ययन व अध्यापन का होता है, अस्त्रशस्त्रों से उनको क्या लेना देना। अगर कोई कहे कि बेशक लड़ना क्षत्रियों का काम था, पर लड़ाई करना सिखाना ब्राह्मणों का काम होता था, तो यह बात कुछ जंचती नहीं। जो खुद ही लड़ना न जाने, वह औरों को क्या लड़ना सिखाएगा। मुझे तो उनके लिए प्रयुक्त यह अस्त्रशस्त्रों की भाषा अलंकारिक लगती है। ऐसा इसलिए भी किया गया होगा ताकि ऐसा न हो कि यौद्धा क्षत्रिय अहंकार में आकर ब्राह्मणों के नियंत्रण में न रहें। वैसे भी बुद्धि को सबसे बड़ा अस्त्र माना गया है, क्योंकि बुद्धिकौशल से बड़े से बड़ा युद्ध भी जीता या टाला जा सकता है, और बुद्धि ब्राह्मण के पास बहुतेरी होती है। महाभारत का युद्ध भी मुझे मानसिक युद्ध लगता है। काफी समय पहले अखबारों और सोशल मीडिया में कुरुक्षेत्र के मैदान में महाभारत युद्ध के रेडियोधर्मी विकिरण होने की खबरें पढ़ी थीं। लिखा था कि फलां वैज्ञानिकों ने जांच की तो टेस्ट पॉजिटिव निकले। पता नहीं मनगढ़ंत बातों को कैसे सच की तरह पेश कर देते हैं, कहां से वैज्ञानिक लाते हैं, और कहां पे जांच करा देते हैं। गहराई से पता करने पर पता चला कि इसकी कोई वैज्ञानिक पुष्टि नहीं हुई है, और इसे अभी तक माइथोलॉजी ही माना गया है। यह अलग बात है कि इसे पूरी तरह जुठलाया नहीं जा सकता, क्योंकि जो भीतर सूक्ष्म रूप में हो रहा है, वही बाहर भी स्थूल रूप में हो रहा है। ब्रह्मास्त्र मन के सूक्ष्म संसार को नष्ट करता है, और नाभिकीय हथियार बाहर स्थित बिल्कुल उसी रूप वाले स्थूल संसार को। वास्तव में सबकुछ सूक्ष्म ही है। शायद आम आदमी के अंदर अध्यात्म के प्रति जिज्ञासा बढ़ाने के लिए ही ऐसी अर्धसत्य जैसी कथाएं गढ़ी जाती हैं। एक बात और, अगर पुराणों में वर्णित युद्ध असली भौतिक युद्ध होते, तो हिंदु कौम सबसे लड़ाकी कौम होती, पर ऐसा नहीं है, बल्कि इसका बिल्कुल उलटा लगता है। हिंदु तो आज सिमटते दिख रहे हैं। साथ में, सूर्यास्त से सूर्योदय तक युद्ध को बंद रखा जाता था। जीवनयुद्ध में ही ऐसा होता है, जब दिन में लोग काम करते हैं, और रात्रि को सो जाते हैं। इन सबसे यही जाहिर होता है कि वे युद्ध मन के दोषों के खिलाफ कुंडलिनी शक्ति द्वारा शरीर में ही लड़े जाते थे। उन्हें रोचक बनाने के लिए ही उन्हें बाहर और असली की तरह दिखया गया है। यह अलग बात है कि जैसा शरीर के अंदर होता है, उसके बाहर भी वैसा ही होता है। दुर्योधन मतलब मुश्किल से युद्ध में जीता जाने वाला व्यक्ति मुझे अहंकार का प्रतीक प्रतीत होता है। कौरव सौ भाई थे। कहावत भी प्रचलित है कि फलां में सौ दुर्गुण हैं। मैं महाभारत के इतिहासरूप होने से भी इनकार नहीं कर रहा हूं। हो सकता है कि दोनों ही बातें सही हों। इससे भी यही जाहिर होता है कि ब्रह्मास्त्र जागृत सुषुम्ना ही है। अश्वत्थामा ने उसे अर्जुन पर चलाया, मतलब अपनी दृष्टि के शक्तिपात से वह अर्जुन के अंदर कुंडलिनी जागृत करने लगा। वैसे भी अश्वत्थामा जागृत व्यक्ति था। इसका प्रमाण उसके माथे की मणि है। दरअसल वह जागृत आज्ञा चक्र अर्थात खुली हुई तीसरी आंख है। अचानक कुंडलिनी जागृत होने से वैसी ही बेचैनी होगी, जैसी वर्षों तक अंधेरी गुफा में रहने वाले आदमी को एकदम बाहर धूप में निकालकर होती है। उससे सभी दिशाओं में प्रचंड तेज पैदा हो गया, मतलब

अर्जुन के मस्तिष्क में चारों ओर चमक छा गई, क्योंकि मस्तिष्क के अंदर ही सारा ब्रह्मांड है। जागृति के समय अजीब सी अनहोनी का डर तो लगता ही है, हालांकि वह सामान्य डर से अलग होता है। वह आनंद, प्रकाश और सुकून से भरा होता है। साथ में नष्ट होते अहंकार मतलब खत्म होते अपने व्यक्तित्व के कारण आसन्न मृत्यु के जैसा आभास भी हो सकता है। यह आभास भी मृत्यु से अलग और प्रकाशपूर्ण व सत्तापूर्ण होता है। आदमी को लग सकता है कि वह किसी शान्त दिव्यलोक या मुक्तिलोक की ओर जा रहा है। इससे अर्जुन दुखी हुए और उनका तेज नष्ट हो गया। दरअसल अहंकार का तेज नष्ट हुआ, ब्रह्मतेज तो बढ़ रहा था। लड़ाई तो अहंकार का तेज करता है, ब्रह्मतेज तो सबकुछ भुलाकर संन्यासी सा बनाता है। समझ लो कि अर्जुन को कुंडलिनी जागरण हुआ या वह उसकी तरफ़ बढ़ा। उससे उसके ऊपर कुंडलिनी जागरण के सहदोष मतलब साईड इफैक्ट पैदा हुए। इन्हीं का अलंकरिक वर्णन हो रहा है। जीवन एक युद्ध ही है। अगर आदमी कुंडलिनी के बोझ से दबेगा, तो जीवनयुद्ध में कैसे लड़ेगा, दुर्योधनरूपी अहंकार को कैसे मारेगा। समस्या यह है कि अश्वत्थामा जैसा शुद्ध और सात्विक ब्राह्मण इतनी ऊर्जा कहां से लाए, जो उन कुंडलिनीदोषों को नष्ट करवा सके। वह उस समय कुंवारा लड़का था, इसलिए गुरु द्रोणाचार्य ने उसे शक्तिस्रोत तांत्रिक तकनीकें नहीं सिखाई थीं। पर विवाहित अर्जुन ने भगवान शिव से वे वामाचारी तकनीकें पहले ही सीख ली थीं, जिनको शैवास्त्र या पाशुपत अस्त्र का नाम दिया गया है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उनकी याद दिलाई। अश्वत्थामा शिव का अवतार था, क्योंकि वह दुर्गुण रूपी कौरवों का साथ दे रहा था। शिव भी तो बाहर से देखने पर दुर्गुणी तांत्रिक ही लगते हैं। वे हमेशा ही राक्षसों के पक्ष में रहते हैं, पर जब देवता उन्हें मनाते हैं, तो देवताओं के पाले में आ जाते हैं। भोले हैं न। उन्हें हरकोई आसानी से गुमराह भी कर सकता और मना भी सकता है। पांडवों ने कृष्ण के साथ मिलकर सजा के तौर पर उसके माथे से मणि निकाल दी थी। इसका मतलब है कि अगर कोई शैवतंत्र के समुचित ज्ञान के बिना शिव के जैसा बनने की कोशिश करेगा, वह जागृत होकर भी मार्गभ्रष्ट हो जाएगा। यह उसके लिए मृत्युदंड के समान ही है। द्रोणाचार्य ने ब्रह्मास्त्र विद्या अपने शिष्यों को क्यों नहीं सिखाई, और सिर्फ अपने पुत्र अश्वत्थामा को ही क्यों सिखाई। लौकिक विद्या में तो इसका उल्टा होता है, मतलब अध्यापक अपने विद्यार्थियों को तो सबकुछ सिखा सकता है, पर अपने पुत्र को कुछ भी नहीं सिखा पाता, उसके लिए अलग से ट्यूशन रखवानी पड़ती है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि वह पारलौकिक योगविद्या थी। वह किसी के सिखाने से कम समझ आती है, पर अपने वर्तमान परिवार और पूर्वजों की निरंतर संगति और संस्कारों से बिना सिखाए खुद ही सीखने में आ जाती है। एक बात और, भौतिक अस्त्र ऐसा तो नहीं करता कि महिला को नुकसान पहुंचाए बिना उसके गर्भ में पल रहे बच्चे तक पहुंच जाए। हां, नाभिकीय हथियार के विकिरण ऐसा कर सकते हैं। पर उससे तो अनगिनत औरतों के गर्भ को नुकसान पहुंचता है, सिर्फ अकेली चुनी हुई महिला के गर्भ को नहीं। कुंडलिनी को डीएनए प्रभावित करने वाला कहते हैं। क्योंकि वे सभी एक ही परिवार के सदस्य थे, इसलिए सभी के डीएनए आपस में जुड़े थे। क्योंकि गर्भस्थ

शिशु सबसे ज्यादा कोमल होता है, इसलिए उसका डीएनए सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ। उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि चारों ओर गहरी और जलाने वाली चमक है, जिसे भगवान कृष्ण अपने सुदर्शन चक्र से शांत कर रहे थे। दरअसल जब कुंडलिनी शक्ति मस्तिष्क में पहुंचती है, तो उसके दुष्प्रभावों से बचाने के लिए उसके बीच में खुद ही एक ध्यानचित्र प्रकट हो जाता है। संभवतः उसके रूप में ही श्रीकृष्ण थे। श्रीकृष्ण ही इसलिए क्योंकि वे ही उसके परिवार के सबसे नजदीकी, सबसे प्रिय और सबसे सम्माननीय थे।

महाभारत को पांचवां वेद कहते हैं। वेद में परम तत्त्व का अनुभवात्मक व गूढ़ वर्णन है। उसी को पुराणों और महाभारत में सरल किया गया है, माईथोलोजिकल कथाओं से। उनमें भौतिक विज्ञान का क्या काम। हालांकि स्थूल भौतिक जगत के अंदर भी वही है, जो मन और आत्मा के अंदर है, पर मुख्य फोकस मन, आत्मा और उससे जुड़े शरीर के पहलुओं पर रखा गया है। कृष्ण आत्मा है। पांच पांडव उनके पांच प्राण हैं। यह श्रीकृष्ण ने खुद भी कहा है। अर्जुन मुख्य प्राण है। सैकड़ों किस्म के दुनियावी व पापी विचार सौ कौरव भाई हैं। वे लगातार प्राणों की शक्ति को हरते रहते हैं। वे उन्हें आत्मा से दूर रखना चाहते हैं। कृष्ण का सबसे प्रिय मित्र अर्जुन है। प्राण ही आत्मा से मिलने के लिए ऊपर उठता है। प्राण सांसों को शक्ति देता है। वही आत्मा के सबसे निकट रहता है। इसीलिए जागृति के समय सांस शांत जैसी हो जाती है। सांसों के बल से ही शक्ति ऊपर चढ़ती है। अश्वत्थामा ने अर्जुन पर ब्रह्मास्त्र चलाया मतलब योग ने प्राण को जागृति के लिए उकसाया। सात चक्र पांडवों के सात पुत्र हैं। प्राणों से ही चक्र क्रियाशील होते हैं। पांच पुत्रों को अश्वत्थामा ने मार दिया मतलब सैंकड़ों बुराईयों के बीच फंसी हुई योग आदि के रूप वाली अच्छी सांसारिक क्रियाशीलता ने पांच चक्रों का भेदन कर दिया। वैसे भी भौतिक क्रियाशीलता से सबसे अधिक दबाव मूलाधार चक्र पर ही पड़ता है, क्योंकि यह कमर के जोड़ के करीब होता है। योग से यह दबाव ज्यादा हो जाता है, क्योंकि इसमें हम ज्यादा झुकते हैं, ज्यादा समय के लिए झुकते हैं, और सांस रोककर झुकते हैं। पिछले स्वाधिष्ठान चक्र की जो उभरी हुई हिप बोन की हड्डी होती है, के बिल्कुल साथ लगता ऊपर की तरफ़ एक गड्ढा सा होता है, मुझे तो वही असली मूलाधार लगता है, या मूलाधार के साथ उसका सीधा सम्बन्ध होता है। उसमें गहरी मालिश करने से यौनानंद जैसी तेज संवेदना की अनुभूति होती है जो ऊपर की ओर चढ़ती है। पाण्डवों के पुत्रों में अभिमन्यु और घटोत्कच बचे रहे मतलब सबसे ऊपर के दो मुख्य चक्रों का भेदन नहीं हुआ। इसीलिए अर्जुन से कुंडलिनी के लक्षण झेले नहीं गए। अब इसे मनगढ़ंत बनाई हुई कहानी कहो या महाकाव्य लेखक ऋषि के द्वारा बनाई गई असली योग कहानी, पर बनी अच्छी और तथ्यात्मक है।

इस कथा का एक दूसरा पक्ष भी है। द्रौण एक पर्वत का नाम भी है। द्रोणाचार्य मतलब पर्वतों को नियंत्रित करने वाले आचार्य। वैसे भी उन्होंने द्रौण पर्वत पर तपस्या की थी। अस्थियों को पर्वत ही कहा गया है कई स्थानों पर। योग आदि अस्थियों से ही होते हैं।

इसीलिए तो अश्वत्थामा योगसाधना को कह रहा हूं। जब योग से चक्रों का भेदन हुआ, तो उनमें दबी हुईं भावनाएं बाहर निकलकर विलुप्त हो गईं, मतलब पूरी तरह मर गईं। इसी से उनकी माता बुद्धि मतलब द्रौपदी दुख से रोने लगी, क्योंकि उसीके कार्यों की बदौलत वे भावनाएं निर्मित हुई थीं। आत्मा कृष्ण के साथ प्राण अर्जुन भी इससे उद्विग्न जैसे हो गए और वे योग को रोकने मतलब अश्वत्थामा को पकड़ने के लिए दौड़े। पर तब तक सुषुम्ना जागृत हो गई थी, मतलब उसने ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया था। वैसे भी सहस्रार चक्र को ब्रह्मरंध्र भी कहते हैं। अश्वत्थामा दुर्योधन की ही मित्रता निभा रहा था, क्योंकि स्वार्थ से भरी दुनियादारी से जब आदमी थक या ऊब जाता है, तब खुद ही योग अपनाता है। प्राण उस जागृत कुंडलिनी के तेज को झेल नहीं पाया, इसलिए उसने उसे माथे को मलते हुए आज्ञाचक्र तक नीचे उतार दिया। फिर वह पता नहीं कहां विलीन हो गई। यही अश्वत्थामा के माथे से मणि निकालना है। जागृति के बाद आदमी बच्चे की तरह बनकर नया जन्म सा महसूस करता है। यही अश्वत्थामा का पूर्ण मुंडन है। अगर ब्रह्मास्त्र भौतिक अस्त्र होता तो उसकी चमक व अन्य प्रभाव सभी को महसूस होते, पर वह सिर्फ अर्जुन को ही महसूस हुआ, क्योंकि वह उसके अंदर था। कृष्ण तो साक्षात आत्मापरमात्मा हैं, उन्हें उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि वे हमेशा जागृत ही हैं। शैवास्त्र तो दुनियादारी वाला आसक्त जैसा मन है। तंत्र के पंचमकार सबसे बड़ी दुनियादारी है। उसका ध्यान या दर्शन करके वह शैवास्त्र चल पड़ा जिससे ब्रह्मास्त्र शान्त हो गया। हो सकता है कि आसपास कोई स्त्रियों आदि का नाचगाना या समारोह चल रहा हो। उनकी तरफ ध्यान देते ही शैवास्त्र चल पड़ा हो। दरअसल आज्ञा चक्र और सहस्रार चक्र भी क्रियाशील हो जाने चाहिए, तभी कुंडलिनी जागरण अच्छी तरह से झेला जा सकता है। आज्ञाचक्त के क्रियाशील होने से बुद्धि के प्रकट और अप्रकट जटिल विचार भस्मीभूत हो जाते हैं। इसी तरह सहस्रार चक्र के क्रियाशील होने से वहां पर रक्तसंचार बढ़ जाता है, जिससे जागृति का दबाव झेला जा सके। साथ में, क्रियाशील व दबे हुए अनर्गल दृश्य विचार भी भस्म हो जाते हैं।

अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु था और उसका पुत्र परीक्षित था जो उत्तरा के गर्भ में श्रीकृष्ण को देख रहा था। वह बाहर आकर भी सबमें कृष्ण की परीक्षा करता रहता था, इसीलिए उसका नाम परीक्षित पड़ा। अभिमन्यु का शाब्दिक अर्थ है, बहुत क्रोध। दरअसल प्राणों से ही क्रोध अभिव्यक्त होता है। वह क्रोध दुर्योधन जैसी कपटी दुनियादारी की तरफ़ था। पर वह ऊपरऊपर की सोच के अंदर दबा था, गहरी सोच के अंदर नहीं। मतलब अर्जुन उनसे ऊपरऊपर से नफरत करता था, गहराई में नहीं। उत का शाब्दिक अर्थ है ऊपर, और तरा का मतलब तैरने वाली। इससे क्रोध की शक्ति कुंडलिनी ध्यानचित्र के रूप में रूपांतरित हो रही थी। इसी से कृष्णरूप ध्यानचित्र परीक्षितरूपी नवजीव को महसूस हो रहा था। नया जीव इसलिए क्योंकि ध्यानचित्र से जीव रूपांतरित होकर नया सा बन जाता है। फिर वह रूपांतरित व्यक्ति बड़ा होकर भी उसी ध्यानचित्र को हर जगह ढूंढता और परखता रहता था, क्योंकि वह बहुत आनंदकारी और हितैषी होता है।

जब वह मन में ही सूक्ष्म रूप में इतना अच्छा है, तब भौतिक रूप में कितना ज्यादा अच्छा होगा। पर भौतिक रूप की अपनी बाध्यताएं होती हैं। इसलिए वह कहीं नहीं मिलता। आदमी हर जगह परीक्षा ही करता रह जाता है। हरेक आदमी खासकर जागृत आदमी परीक्षित है।

एक बात और, जिस चक्रव्यूह में अभिमन्यु घुसा था, उसमें सात तहें थीं। एक तो नाम भी चक्र, और गिनती भी शरीर के चक्रों के बराबर। दोनों ही एक के ऊपर एक परत के रूप में होते हैं। मूलाधार चक्र अपने तक ही सीमित है, स्वाधिष्ठान चक्र उसको भी कवर करता है आदि। इस तरह ऊपर वाला चक्र नीचे वालों को भी समेटता है। सहस्रार सभी चक्रों को कवर करता है। जब आदमी किसी पर क्रोध के कारण चक्रसाधना में घुसता है, तब वह अंदर तो घुस पाता है, पर बाहर नहीं निकल पाता, क्योंकि साधना के प्रभाव से क्रोध खत्म हो जाता है। ध्रुव अपनी सौतेली मां के प्रति क्रोध से भरकर ही भगवान विष्णु को खोजने निकला था, पर जब वे मिल गए, तब उसका क्रोध खत्म हो गया और उसे वही मां बहुत प्रिय लगने लगी। शायद भगवान राम के साथ भी ऐसा ही हुआ, इसीलिए उनका बुरा चाहने वाली सौतेली मां उन्हें सबसे प्रिय लगती थीं।

कुंडलिनीयोग पर्यावरण संरक्षण के लिए विशेष महत्त्व रखता है

जब अर्जुन पाशुपत अस्त्र के लिए भगवान शिव की तपस्या कर रहे थे, तब दुर्योधन का भेजा मूक दैत्य एक सुअर का रूप धारण कर वहां आया। वह पर्वतों के शिखरों को तोड़ता हुआ, अनेक वृक्षों को उखाड़ता हुआ तथा विविध प्रकार के अर्थहीन शब्द करता हुआ उसी मार्ग से जा रहा था, जहां अर्जुन था। उसको देखकर अर्जुन शिव का स्मरण करने लगा। शिव उसे मारने के लिए भीलराज बनके आए। अर्जुन और शिव के बीच वह शूकर अद्भुत शिखर की तरह लग रहा था। दोनों ने एकसाथ बाण चलाया। शिवजी का बाण पूंछ में घुसकर मुख से निकलकर शीघ्र ही पृथ्वी में विलीन हो गया। अर्जुन का बाण (शायद मुख में प्रविष्ट होकर) पूंछ से निकलकर भूमि पर पार्श्वभाग में गिर गया। शूकर उसी समय मर कर गिर गया।

उपरोक्त मिथक कथा का स्पष्टीकरण

दुर्योधन मतलब अहंकार अर्जुनरूपी कर्मयोगी जीवात्मा से इतना काम करवाता है कि उसकी इड़ा और पिंगला नाड़ियां क्रियाशील हो जाती हैं, मतलब अर्जुन का शरीर ही शूकररूप हो जाता है। मूलाधार ही उसकी पूंछ है। इड़ा और पिंगला उसके किनारे वाले दो नुकीले दांत हैं। द्वैत के जंगल में भटकते मन के विविध विचार उसका मुखभाग है। केवल भटकता हुआ मन ही पर्वतों को तोड़ सकता है, शरीर नहीं। मूक गूंगे को कहते हैं। क्योंकि भटकता मन आदमी को कभी नहीं कहता कि वह उसका दुश्मन है और उससे लड़ने आया है, पर धोखे से हमला करता रहता है, इसीलिए उसे मूक दैत्य कहते हैं। जैसे जीवात्मा और परमात्मा के बीच में मन एक पहाड़ की तरह भासता है, वैसे ही वह शूकर भास रहा था। इड़ा और पिंगला नाड़ियों के बारीबारी से क्रियाशील होने से आदमी इतना क्रियाशील हो जाता है कि जैसे वह पहाड़ तोड़ने को तैयार होए। इड़ा के क्रियाशील होने पर वह दुनिया के काम पागलपन जैसे से भरकर ताबड़तोड़ ढंग से करता है, और पिंगला के चालू होने से वह सुस्ता के सो जाता है। नींद से जागकर तरोताजा होकर फिर से लूट खसूट जैसे पापकर्म करने दौड़ पड़ता है। वह इसी अंधेरे और प्रकाश के द्वैत के बीच झूलता रहता है, और उनके बीच वाली सुषुम्ना नाड़ी की साम्य या अद्वैत अवस्था को नहीं देख पाता। भारतीय जंगली सूअर का रंग भी काले और भूरे रंग का मिश्रण है, जो द्वैत को दर्शाता है। पशु की तरह मूर्खता से भरकर घटिया और पर्यावरणघाती काम करता रहता है। आजकल का आदमी ऐसा ही तो है। क्रियाशीलता पर ब्रेक ही नहीं है। अंधे की तरह हर कहीं सिर मार रहा है। जमीन को खोखला कर रहा है। वनों का सफाया कर रहा है। हवा, जमीन और जल को प्रदूषित

करके उसमें आनंद और मस्ती के साथ लोट रहा है। ये सब सुअर के ही लक्षण तो हैं। शिव ने पूंछ से मतलब मूलाधार से तीर घुसाया, मतलब सुषुम्नारूपी शक्तिरेखा को क्रियाशील किया। दरअसल शिवलिंग के ध्यान व पूजन से ऐसा ही होता है। वह तीर उसके मुख से मतलब सहस्रार चक्र से निकलकर पृथ्वी में मतलब फ्रंट चैनल से शरीर में विलीन हो गया।

अर्जुन शिवलिंग का ध्यानपूजन तो वैसे भी कर ही रहा था। उससे स्वाभाविक है कि उसकी सुषुम्ना क्रियाशील हो गई। यह ब्रह्मशिर तीर ब्रह्मरंध्र से बाहर निकलता है। सूअर का पूरा शरीर ही मुखरूप है। ऐसा भी समझ सकते हैं कि वह तीर फिर आज्ञा चक्र में विलीन हो गया। वहां से वह मुख तक पहुंचता ही है, तालु के स्राव के माध्यम से। वहां वह स्राव भूमि मतलब उदर में चला जाता है, और वहां भोजन को पचाने में शक्तिरूप में व्यय या विलीन हो जाता है। जैसे भूमि में अन्न बनता है, वैसे ही उदर में भी बनता है, बेशक हल्के और टूटे हुए सूक्ष्म टुकड़ों के रूप में।

अर्जुन ने तालु से जीभ को छुआ कर मस्तिष्क की शक्ति को फ्रंट चैनल से नीचे उतारा। इससे वह ऊपर चढ़ी हुई शक्ति वापिस मूलाधार तक चली गई। मस्तिष्क के अंदर जो अर्जुन के द्वारा अपनी इच्छा से ध्यान लगाया जाता है, वह अर्जुन का छोड़ा हुआ तीर है। वह ऊपर से नीचे की ओर आता है फ्रंट चैनल से। मान लो कि वह शक्तिबाण मूलाधार तक पंहुचा और बाहर निकलकर पार्श्वभाग में जमीन पर गिर गया। पर बाहर कैसे गिरा। एक तो यह संभावना है कि वीर्य रूप में शक्ति बाहर गिरी। पर अर्जुन उसे हासिल करने बाहर क्यों भागना था। वैसे वीर्य की शक्ति से ही बड़े बड़े काम होते हैं, बड़े बड़े उद्योग धंधे चलते हैं, और चारों ओर भौतिक समृद्धि छा जाती है। शायद अर्जुन उन्हें अपना अपना कहते हुए उन्हें बटोरने इधर उधर भागा। यह संभावना भी है कि शक्ति वीर्यरूप में वज्र शिखा तक आई, जिसे अर्जुन ने योग से वापिस ऊपर खींचना चाहा। पर पार्श्वभाग में कैसे गिरी। हो सकता कि योनि में गिरी हो, जिसे वज्रोली मुद्रा से वापिस खींचा जा रहा हो। पर इसमें शिवगणों को आपत्ति नहीं होनी चाहिए थी, क्योंकि यह व्यक्तिगत मामला है। शिवगण ने कहा कि वह शूकर शिव के तीर से मरा और वह पार्श्वभाग में गिरा हुआ शिव का तीर है। दरअसल शिवलिंगम के प्रभाव से मूलाधार की शक्ति ही सहस्रार तक जाकर फिर मुड़कर फ्रंट चेनल से नीचे आ रही थी। अर्जुन को लगा कि वह शक्ति उसने पैदा की अपने मस्तिष्क में ध्यान लगाकर, पर वास्तव में वह मूलाधार से ऊपर आ रही शक्ति के बल से ही मस्तिष्क में ध्यान कर पा रहा था, केवल अपने आत्मबल या इच्छाशक्ति से नहीं। मूलाधार चक्र की जागृति से सुषुम्ना सक्रिय हो गई थी, जिसके प्रभाव से इड़ा और पिंगला निष्क्रिय सी हो गई थीं। मतलब अज्ञानरूप सुअर मर गया था और उससे होने वाला अज्ञानजनित उत्पात भी। अर्जुन का अहम में आकर शिवलिंग का आश्रय छोड़ना या शिवलिंग को अज्ञानशूकर को मारने का श्रेय न देना ही उसका शिवावतार भीलराज़ से लड़ना है। अंत में उसे शिवलिंग का माहात्म्य समझ आना ही भीलराज के द्वारा उसे हराना है। अर्जुन के पार्श्वभाग में गिरा हुआ शक्तिबाण अन्न, घास, पुष्प आदि किसी भी रूप में हो सकता है, जिसे उसने टांगों से चलकर उगाया था। टांगों

को मुख्यतः मूलाधार से ही शक्ति नीचे उतरती है। और मूलाधार को शिवलिंग से शक्ति मिली थी। इसीलिए शिवगण उन पर अपना हक जता रहे थे। अन्न, घास, पत्ते, पुष्प आदि खाने वाले पशु, पक्षी और कीट ही शिवगण हैं, जो अपने जीवन के लिए आदमी की दया पर आश्रित हैं।
अर्जुन ने कहा कि वह बाण पिच्छ रेखाओं से चित्रित है तथा उसमें उसका नाम अंकित है। बाणरूपी फ्रंट चैनल की रेखाएं हम पसलियों की लकीरों को कह सकते हैं, जो उसके शुरु में ही होती हैं। नाम खुदा हुआ हम हृदय चक्र को कह सकते हैं, क्योंकि उसीमें आदमी का पूरा मनोभाव मतलब परिचय छिपा होता है। अहंकारी आदमी लड़ाई तो करता ही है ईश्वर के साथ, अपनी संपत्ति बटोरने के लिए। परमात्मा उसे उस स्वार्थ की सजा भी देते ही रहते हैं। यही शिव और अर्जुन के बीच का युद्ध है जो मल्लयुद्ध तक पहुंच जाता है। फिर ऐसा समय आता है कि आदमी अपने स्वार्थ के लिए भगवान के मंदिर में माथा रगड़ता है। यह कहानी का वही भाग है, जिसमें अर्जुन शिव को पैरों से पकड़ता है और उसे घुमाकर पटकने की कोशिश करता है, पर उसी समय अपने पैर पकड़े जाने से प्रसन्न होकर शिव अपने असली रूप में आ जाते हैं और उसे वरदान रूप में पाशुपत अस्त्र देते हैं। यह ऐसे ही कि जब आदमी भगवान के मंदिर में किसी भी भाव से जाकर सद्‌बुद्धि प्राप्त करता है, और अनजाने में ही विपत्ति से बचने का वर प्राप्त कर लेता है। पाशुपत अस्त्र मतलब शिव ने उपरोक्त घटनाक्रम के माध्यम से उसे समझा दिया था कि मूलाधार ही शक्ति को अच्छे से नियंत्रित कर सकता है, सहस्रार या मस्तिष्क नहीं। इसी समझ से उसने अश्वत्थामा के द्वारा छोड़े हुए ब्रह्मास्त्र से हो रही मस्तिष्क की जलन को शांत किया था।
इस घटना को निम्न प्रकार से और ज्यादा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। अर्जुन भीलरूपी शिव से कई वर्षों तक युद्ध करता रहा, पहले तीरों से और फिर मल्लयुद्ध से। दरअसल ऐसा युद्ध अहंकार और सत्य के बीच ही हो सकता है, क्योंकि दो व्यक्ति तो वर्षों तक लगातार नहीं लड़ सकते। अंहकार पहले अपने जीवन के सारे साजोसामान और सारी समृद्धियां परमात्मा को झुठलाने में लगा देता है। परमात्मा उन्हें बारीबारी से नष्ट करते जाते हैं ताकि वह सुधर सके। बेशक वे उन्हें उसके मन में ही नष्ट करे उनसे बोरियत के रूप में, बाहरी भौतिक रूप में नहीं। अंत में जब कुछ नहीं बचता तो आदमी अपने अंदर मौजूद उन भौतिक उपलब्धियों की यादों और वासनाओं की मदद से प्रभु से लड़ता है मतलब परमात्मा से अलग होकर अपनी पृथक सत्ता बनाए रखता है। अगर कोई घर का सदस्य घर छोड़ कर जाएगा, तो लड़कर ही जाएगा, प्रेमभाव से गले मिलकर तो नहीं। वासना पंजाबी शब्द वाशना से बना लगता है, जिसका मतलब गंध होता है। सारा मजा गंध में ही होता है। जब जुकाम आदि में गंध महसूस नहीं होती, तब खाना बिल्कुल भी स्वादिष्ट नहीं लगता। आपने देखा होगा कि कभी कोई पुरानी धुंधली याद आती है, पूरे मजे के साथ। ऐसा लगता है कि जो मजा उस असली स्थूल भौतिक घटना के समय भी नहीं आया होगा, वो उसकी बहुत धुंधली सी याद में आता है। यही उस घटना की वासना या गंध है। यह ऐसे ही होती है जैसे किसी इत्र की खुशबू। शायद

यही संसार का सबसे सूक्ष्म रूप है जिसे तन्मात्रा भी कहते हैं। अगर बीती घटनाओं या बीते संसार की ऐसी गंधें आ रही हों, तो समझो योगी साधना के उच्च पद पर स्थित है और उसका सांसारिक कचरा शुद्ध होकर आत्मा में विलीन होता जा रहा है। शीघ्र ही उसे जागृति की झलक भी मिल सकती है। जब वासना रूपी अंतिम हथियार भी खत्म हो जाता है, तब वह अंधेरे जैसे में डूबने लगता है, जिसे डार्क नाइट ऑफ साउल या आत्मा की अंधेरी रात भी कहते हैं। फिर वह परमात्मा को हराने के लिए उन्हींके मंदिर जाता है, मतलब वह शिव को उठाकर फेंकने के लिए उन्हीं के पैर पकड़ता है। यह ऐसे ही है जेसे आदमी भौतिक समृद्धियों की मुराद मांगने मंदिर जाता है। फिर परमात्मा प्रसन्न होकर उसके सामने अपना असली रूप प्रकट कर देते हैं, जिससे वह उसी पल हार मान लेता है। परमात्मा के प्रकाश के सामने अहंकार का अंधेरा टिक ही नहीं सकता। शायद यही जागृति है।

कुंडलिनीयोग से गंगा की तरह बहती हुई शक्ति शिवलिंगरूपी चक्रों को सिंचित करती है

अत्रि-अनसूया की प्रसिद्ध पौराणिक कथा

शिवपुराण में अनसूया की कथा आती है। अनसूया मतलब किसी की असूया या निंदा न करने वाली। एक बार महान अकाल पड़ा। हर जगह पानी की कमी हो गई। लोग व प्राणी प्यास से व्याकुल होकर मरने लगे। साधुओं से संसार का दुख देखा नहीं जाता। इसलिए अत्रि मुनि पानी के लिए तप करने लगे। उनके शिष्य भी उनको छोड़कर चले गए। केवल अनसूया अपने पति की सेवा करती रही और प्रतिदिन शिवलिंग का पूजन करती रही। एक दिन अत्रि ने पानी मांगा। अनसूया कमंडल लेकर पानी ढूंढने चल पड़ी। रास्ते में उसे गंगा मिली। गंगा अनसूया के पातिव्रत्य से प्रसन्न हो गई। अनसूया ने गंगा से पानी मांगा। गंगा ने उसे एक गड्ढा करने को कहा। वह गड्ढा पानी से भर गया। अनसूया पानी लेकर चली गई। उसने अत्रि को पानी पिलाया। अत्रि ने कहा कि वह रोज के पिए जाने वाले पानी के जैसा नहीं था। अनसूया ने सारी बात बता दी। वह अत्रि को उस गड्ढे के पास ले गई। दोनों ने उसमें आचमन व स्नान किया। उससे सारे लोक तृप्त हो गए। गंगा जाने लगी तो अनसूया ने उससे हमेशा वहीं रहने के लिए प्रार्थना की। गंगा ने बदले में उससे उसका एक साल का पतिव्रत धर्म का और शिव पूजा का फल मांगा। गंगा ने कहा कि उसे पतिव्रता धर्म सबसे ज्यादा पसंद है। अनसूया ने वह दे दिया तो गंगा वहीं पर बस गई। साथ में शिव भी अत्रीश्वर लिंग के रूप में हमेशा के लिए वहीं विराजमान हो गए।

मिथक कथा का स्पष्टीकरण

अत्रि जीवात्मा है। अत्रि का शाब्दिक अर्थ है, तीनों गुणों से रहित। ऐसा आत्मा ही है। अनसूया बुद्धि है। बुद्धि किसी की निंदा नहीं करती, क्योंकि वह सबसे अपना काम बनवाना चाहती है। निकम्मा मन ही निंदा करता है। बुद्धि अपने पति जीव की पतिव्रता पत्नि की तरह ही है। वह जीव की हर प्रकार से सेवा करती है, साथ में परमेश्वर शिव की पूजा करती रहती है। निकम्मा मन ही कुछ नहीं करता। दरअसल बुद्धि से काम होता है, और कर्म को ही पूजा कहा गया है। शिवलिंग की पूजा इसलिए कहा है क्योंकि संसार पुरुष मतलब शिव और प्रकृति मतलब शक्ति के संयोग से ही बना है। शरीर ही वह सूखाग्रस्त देश है। शरीर की सभी कोशिकाएं ही उसके लोगबाग और प्राणी हैं। वे प्यासे

मतलब शक्तिरूपी जल से वंचित रहने लगे। शक्ति जल की तरह ही बहती है। बुद्धि ऋषि अत्रि रूपी आत्मा को गुजारे लायक शक्ति या जीवनयापन के लिए साधारण पानी दिलवाती थी। पर उससे पूरे शरीरदेश का गुजारा नहीं होता था। इसलिए अतिरिक्त शक्ति के लिए ऋषि तप अर्थात कुंडलिनी योगसाधना करते हैं। एकदिन ऋषिजीव के शक्तिजल मांगने पर अनसूयाबुद्धि पूरे देहदेश में भटकने लगी उसकी खोज में। उसे शिवलिंग की कृपा से मूलाधार के आसपास यौनाधारित कुंडलिनी शक्ति मतलब गंगा महसूस हुई। उसने शरीर के प्राणों को मतलब दहदेश के कर्मचारियों को वहां गड्ढा बनाने के लिए मतलब सिद्धासन में मूलाधार को एड़ी से दबाने के लिए प्रेरित किया या योगासनों, मालिशों आदि से पिछले मणिपुर चक्र में संवेदनात्मक गड्ढा बनवाया। मुझे तो लगता है कि पीठ वाले मूलाधार या हिप बोन से ऊपर की ओर लगता गहरा गड्ढा ही वह गड्ढा है। उसमे मालिश के समय सीधी हथेली के आधार से जोर से दबाकर और धीरे धीरे ऊपर खिसका कर तेज व आनंदमय सनसनी महसूस होती है जो रीढ़ की हड्डी में ऊपर की ओर चढ़ती लगती है। यह असली मूलाधार या मूलाधार से सीधा जुड़ा लगता है, क्योंकि मूलाधार को भी गड्ढा ही कहा जाता है अक्सर। मेरुदंड में उंगलियों के बल से मालिश नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इससे नाजुक हड्डी में चोट जैसी हानि का डर बना रह सकता है। वहां दिव्य जल भर गया मतलब वहां शक्ति संवेदना महसूस हुई। उसने वह जल ऋषि को पिलाया मतलब जीवात्मा ने उस संवेदना को महसूस किया। जीवात्मा को वह और दिन से अलग और दिव्य लगा क्योंकि उसमें यौनानंद भी मिश्रित था। दोनों ने उसमें स्नान आचमन किया मतलब वह मूलाधार से चढ़कर मस्तिष्क तक चढ़ गई जिससे पूरे शरीर के साथ दोनों तरोताजा हो गए। बुद्धि और जीवात्मा दोनों मस्तिष्क में रहते हैं और आपस में जुड़े होते हैं इसलिए सबकुछ साथ साथ महसूस करते हैं। इसको दूसरे तरीके से भी ले सकते हैं कि एक तांत्रिक जोड़ा यबयुम आसन में एकसाथ शक्ति का उपभोग कर रहा है। सारे जीवजंतु जल पीकर तृप्त हो गए मतलब शरीर के सारे सेल्स शक्ति से रिफ्रेश और रिचार्ज हो गए। गंगा को अनसूया का पतिव्रता धर्म पसंद आया। जरूर उसने उसकी परीक्षा ली होगी, तभी पता चला। आजकल तो पतिव्रता धर्म के परीक्षक बहुत हैं। दफ्तर या कामधंधे पे जाने वाली महिलाओं को विभिन्न पुरूषों के द्वारा उन्हें प्रेमभरी अश्लीलता से झांकना व उनसे बतियाना, उनसे हरकत करने की फिराक में रहना आदि उनकी परीक्षा ही है। घर के अंदर बैठकर परीक्षा थोड़े न होगी। मतलब साफ़ है कि रहो सबके साथ पर सेवा अपने पति की ही करो। गंगा ने स्थायी तौर पर वहां बसने के बदले में अनसूया से एकसाल का सदकर्मफल मांगा मतलब एक साल की तांत्रिक योगसाधना और शिवलिंग पूजा से सुषुम्ना स्थायी तौर पर जागृत हो सकती है। वहां अत्रीश्वर लिंग की भी स्थायी स्थापना हो गई। मुझे तो यह जागृत मूलाधार चक्र ही लगता है। चक्र लिंगरूप ही हैं, क्योंकि वहां लिंग जैसी ही संवेदना अनुभूत होती है। द्वादश ज्योतिर्लिंग बारह चक्र ही हैं। ज्योति वहां ध्यानचित्र के चमकने से पैदा होती है। वह ध्यानचित्र शिव, गुरु, प्रेमी आदि किसी का भी रूप हो सकता है। शिवपुराण के अनुसार बहुत से लिंग और उपलिंग हैं, पर ये बारह ज्योतिर्लिंग मुख्य हैं। अन्य लिंगों को

लिंग ही कहा है, ज्योतिर्लिंग नहीं, क्योंकि कुंडलिनीचित्र की चमक चक्रों पर ही महसूस होती है। वैसे तो शरीर की हरेक कोशिका को लिंग कह सकते हैं, क्योंकि सबके ऊपर शक्तिरूपी जल गिरने से ही वे क्रियाशील हैं। जहां तक गंगारूपी कुंडलिनी शक्ति पहुंचती है स्नान कराने को, वहां तक लिंग ही लिंग हैं। वैसे भी रीढ़ की हड्डी में सेरेब्रोस्पाइनल फ्लूड बहता है, जो पानी की तरह ही है। कई वैज्ञानिक दावा करते हैं कि उसी फ्लूड के प्रवाह के रूप में शक्ति का प्रवाह होता है। हालंकि सुषुम्ना जागरण के समय वह चमकीली संवेदना रेखा के रूप में बहती है। हो सकता है कि दोनों ही तरीकों से प्रवाह हो, खासकर आम व साधारण शक्ति प्रवाह में फ्लूड प्रवाह का योगदान ज्यादा हो। इस कथा से लगता है कि किसी ऋषि ने कुंडलिनी शक्ति की खोज कर के उसको महसूस किया, जिसको उन्होंने सीधा न बताकर मिथक कथा के रूप में बताया।

कुंडलिनीयोग महिषासुर वध की कथा के रूप में वर्णित किया गया है

पुराणों का तरीका वैदिक अर्थात शास्त्रीय अर्थात सामाजिक होता है। इनकी कथाओं में शालीनता, शिष्टाचार और अनुशासन होता है। मर्यादित बोल होते हैं। उनमें असामाजिक रहस्य भी सामाजिक ढंग से वर्णित होते हैं। उदाहरण के लिए मूलाधार को अंधेरे गहरे गड्ढे या पाताल या समुद्र के नाम से वर्णित किया होता है। भटकते मन के आसक्तिपूर्ण विचारों को या अहंकार को राक्षसों या जानवरों की उपमा दी जाती है। वे राक्षस गड्ढे में घुसते दिखाए जाते हैं। वे मनुष्यों समेत सभी जीवों और देवताओं को मारते और परेशान करते दिखाए जाते हैं। फिर इंद्र आदि देवता ब्रह्मा के पास और वे परमात्मारूपी नायक के पास सहायता के लिए जाते हुए और उनकी प्रार्थना करते हुऐ दिखाए जाते हैं। फिर कहानी का नायक उस गढ्ढे में घुसकर राक्षसों और उनके अधिपति को बाहर निकालता है। उनसे लड़ता है और उन्हें मारकर या उन्हें पवित्र करके उन्हें मोक्षरूपी सर्वोच्च पद प्रदान करता है। वस्तुतः सभी विचार परमात्मा में ही विलीन होते हैं। यह कुंडलिनी योग का अध्यात्मविज्ञान ही तो है। मतलब परमात्मा ने शरीर में ही अज्ञान से लड़ने के लिए योगकुंडलिनी शक्ति स्थपित कर रखी है। योगी मूलाधार क्षेत्र में ध्यानछवि पर ध्यान केंद्रित करता है। जब वह छवि नाड़ियों से होकर मस्तिष्क तक आती है, तो अपने साथ अवचेतन मन के दबे विचार और भावनाएं भी ऊपर ले आती है। इससे वे साक्षीभाव के साथ मन में अभिव्यक्त होकर आत्मा में विलीन हो जाते हैं। वास्तव में मूलाधार से शक्ति ऊपर चढ़ती है, ध्यानछवि के सहयोग से। वही शक्ति मस्तिष्क में दबे भावों को उजागर करती है। समझाने के लिए कहा जाता है कि शिवरूपी ध्यानछवि ने अपने साथ सभी राक्षसरूपी दबी हुईं छवियों को मूलाधाररूपी गड्ढे से बाहर निकाला और उन्हें मारकर मुक्त कर दिया। शक्ति मूलाधार में सोई होती है, जिस वजह से मस्तिष्क को ऊर्जा न मिलने से उसके कुंडलिनीरूपी विचारभाव भी सोए होते हैं। इसको ऐसा समझाया जाता है कि वे विचारभाव भी मूलाधार में सोए हैं। जब मूलाधार के सशक्त होने से वह शक्ति जागने लगती है, तो वह मस्तिष्क के विचारभावों को भी जगाने अर्थात अभिव्यक्त करने लगती है। इसको ऐसे समझाया जाता है कि मूलाधार की कुंडलिनीशक्ति जाग रही है, अर्थात शक्ति और विचारभावों का मिश्रण जाग रहा है। इसीलिए ज्यादा उम्र जीने वाले लोग अपने मूलाधार क्षेत्र का खास ध्यान रख रहे होते हैं। मैं वेबसीरीज लिव टू हैंडरड इयर्ज देख रहा था, जहां जापान के ओकीनावा के लोगों की लंबी उम्र का एक राज कसरत, शारीरिक श्रम आदि से अपने बेस को मजबूत रखना भी था। आधार से ही मंजिल है। वे खुद तो बस उसे सुलभ और अनुकूल ही बनाते हैं। यह पतंजलि योग के कथन के अनुसार ही है कि योग करते समय परमात्मा के आश्रित भी रहना चाहिए, और उनकी भक्ति भी करनी चाहिए क्योंकि वे योग को सफल बनाने में मदद करते हैं।

इसको उन्होंने ईश्वर प्राणिधान कहा है। सभी कथाओं में लगभग ऐसा ही ट्रेंड है। बीचबीच में नामरूप के फेरबदल के साथ ऐसी ही कथाएं आती रहती हैं। शुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान के कुछ श्लोकों या पृष्ठों के बाद ऐसी कोई रूपात्मक कथा आ ही जाती है, ताकि पाठकों की रुचि बनी रहे। शिवपुराण में शिव उनको मारने वाले नायक दिखाए जाते हैं तो विष्णुपूराण में विष्णु। एक ही अद्वैत तत्त्व को भिन्नभिन्न देवताओँ के नाम से पुकारा जाता है, जो जागृतावस्था का अनुभव है। शरीर को ब्रह्मांड, और विशेष अंगों व इंद्रियों को साधारण देवता दिखाया गया है। लोगों को या शरीर की कोशिकाओं या साधारण अंगों को आम लोगबाग या जनता के रूप में दिखाया गया है। ये सब आपस मे जुड़े हैं।

उदाहरण के लिए देवीभागवत पुराण में एक कथा आती है कि महिषासुर नाम का एक राक्षस भैंसे की आकृति वाला था। वह कभी सुंदर युवक का रूप बना लेता था तो कभी भैंसा बन जाता था क्योंकि वह बहुरूपिया था। आम अज्ञानी आदमी भी तो ऐसा ही बहुरूपिया होता है। कभी वह बाहरबाहर की वेशभूषा और मन के आसक्तिपूर्ण विचारों की चमकदमक से सुंदर रूप बना लेता है, तो कभी अपने असली और छुपे हुए रूप में आ जाता है, जो अंधेरे और अहंकार के रूप में है। कभी वह आधा भैंसा और आधा आदमी, जुड़ा हुआ दिखाया जाता है। यह ऐसे ही है जब आदमी के अंदर अवसाद जैसा हो। उस समय उसके मन में अंधेरे के साथ धुंधले चित्र बन रहे होते हैं। या आदमी की वह हालत होती है जिसमें वह अपनी अंधेरी अवस्था का चालाकी से सामना करते हुऐ शुभ विचारों से प्रकाशित होने की कोशिश करता है। वह दैत्य मनुष्यों और देवताओं पर अत्याचार करता था, उन्हें मारता था और उन्हें पीड़ा पहुंचाता था। सभी की मृत्यु अज्ञान से ही होती है। दुख का कारण भी अज्ञान ही है। उसने देवताओं को स्वर्ग से भगा दिया था और सभी लोकों के शासन की कमान अपने हाथ में ले ली थी। वास्तव में देवता परमात्मा के प्रतिनिधि होते हैं, इसलिए मनुष्य की भौतिक तरक्की को सुनिश्चित करते हुऐ उसे उसकी तरफ मतलब मोक्ष की तरफ़ ले जाते हैं। वे स्थूल जगत को तो नियंत्रित करते ही हैं, साथ में शरीर में भी रहकर शरीर को नियंत्रण में रखते हैं। पर जब आदमी अज्ञान से उत्पन्न अहंकार के वश में हो जाता है, तब वह मनमाना आचरण करता है, जिससे उसकी भौतिक तरक्की भी दिखावटी और अंत में दुखदायी होती है, और वह परमात्मा से दूर चला जाता है। स्वर्ग मस्तिष्क है जिसमें सहस्रार और आज्ञाचक्र मुख्य स्थान हैं। मस्तिष्क ही स्वर्ग की तरह प्रकाशमान लोक है। ज्ञानी आदमी में देवता मतलब प्रकाशमान अद्वैत भाव इसको अपने नियंत्रण में रखके आदमी के शरीर व मन से शुभ कर्म करवाते हैं। पर अज्ञानी आदमी में तो इसे राक्षस मतलब अंधकाररूप या अहंकाररूप द्वैतभाव अपने नियंत्रण में लेके शरीर व मन से अशुभ कर्म करवाते हैं। शरीर के सभी काम तब भी देवता ही कर रहे होते हैं, पर वे स्वर्ग से दूर अन्य लोकों में छुप कर अपना काम करते हैं। एकप्रकार से वे दैत्यों के गुलाम जैसे हो जाते हैं। यह ऐसे ही है, जैसे किसी राज्य के सारे काम मजदूर ही करते हैं, चाहे उनकी पसंद का राजा होए या नापसंद का। अगर पसंद का होए तो उन्हें उचित सम्मान व सुविधाएं मिलती हैं,

और राजमहल में उचित पद या प्रतिनिधित्व मिलता है, अगर नापसंद का होए तो वे गुलाम जैसे बन कर रह जाते हैं। शरीर का राजा जीवात्मा है, जो मस्तिष्क में रहता है। सत्संग से वह देवताओं के प्रभाव में रहता है, और कुसंग से राक्षसों के। जैसी वह संगत करता है, वैसा ही वह बन जाता है। उस महिषासुर ने देवी से विवाह करने की इच्छा प्रस्तुत की। देवी ने उसे बहुत खेल खिलाया। अंत में उससे युद्ध करके उसे मार ही दिया। वह देवी में विलीन होकर मुक्त हो गया। एक अज्ञान से भरा आम आदमी भी ऐसा ही चाहता है और प्रयास करता है। जब वह आध्यात्मिक अज्ञान के अंधेरे में होता है, उस समय उसकी कुंडलिनी शक्ति मूलाधार में होती है। वह वहां से ऊपर उठना चाहती है। उसके लिए वह स्त्री से प्रणय और विवाह की कामना करता है। देवी जैसी कोई स्त्री उसका प्रस्ताव एकदम नहीं मानती। वह उसे अपने पीछे खूब नचाती है। इससे आदमी के मन में उस स्त्री की मनमोहक छवि एक निरंतर लगने वाली समाधि के रूप में बस जाती है। धीरेधीरे उस समाधिचित्र से उसके सारे कर्म और विचार जल कर खाक हो जाते हैं, और वह उसके निरंतर ध्यान से जागृत भी हो जाता है। जागृति दिलाने के बाद देवी भी उसे छोड़ कर चली जाती है। वह आदमी तो एकप्रकार से मर ही गया, क्योंकि रूपांतरण के कारण उसकी पिछली दुनिया खत्म हो जाती है। क्योंकि इस जागृति और रूपांतरण में देवी का सबसे ज्यादा योगदान था, इसलिए माना गया कि उसे देवी ने मारा। वास्तव में लगता भी ऐसा ही है। वह देवी दुश्मन भी लगती है और मित्र भी। दुश्मन इसलिए क्योंकि उसने पुरुष का संसार उजाड़ दिया या उसे मार दिया और मित्र इसलिए क्योंकि उसने उसे जागृति दिला दी या अपने में मिलाकर मुक्त कर दिया। तभी तो अधिकांश राक्षस देवता के साथ पूरी उम्र शत्रुता निभाकर भी उसके हाथों मरते समय उसकी स्तुति और प्रशंसा करते हुए उसे धन्यवाद देते हैं। देवी की जगह पुरुष रूप में देव भी हो सकता है। ये पुराणों की कथाओं का सामान्य स्टाईल और सिद्धांत है, जो अधिकांश रहस्यात्मक कथाओं में लागू होता है। ऐसा भी लगता है कि अन्य पुराणों में इन्हें शिवपुराण की अपेक्षा ज्यादा गुप्त रखा गया है। शिवपुराण की अधिकांश कथाओं में कुछ कुंजी शब्द या कुंजी वाक्य ऐसे होते हैं जो कथा को सुलझाने में मदद करते हैं। इसकी वजह यही लगती है कि शिवपुराण मुख्यतः मास्तमालंग और दुनियावी माया में डूबे लोगों के लिए बना है, जिनकी बुद्धि ज्यादा सूक्ष्म नहीं होती, और जिन्हें ऐसी कथाओं के रहस्योद्‌घाटन से ऑड या अजीब भी नहीं लगता। वैसे ये आम गृहस्थ जीवन का आम सिद्धांत है, पर जागृति से पहले यह कम ही अनुभव में आता है। इसे हम कुदरती कुंडलिनी योग भी कह सकते हैं। शास्त्रों में कहा जाता है कि जिसे भगवान का अवतार मारता है, वह उसी में विलीन होकर मुक्त हो जाता है। संभवतः इस कथा के मूल में भी यही सिद्धांत है।

कुंडलिनीयोग अतिरिक्त तांत्रिक शक्ति का उपभोग करता है

दोस्तों, शास्त्रों में विशेषकर शिवपुराण में एक कथा आती है कि एकबार देवराज इंद्र भगवान ब्रह्मा और अन्य देवताओं को साथ लेकर कैलाश जाकर भगवान शिव के दर्शन करने की इच्छा से अपने घर से निकले। भगवान शिव को तो यह पता लग ही गया, क्योंकि वे त्रिकालदर्शी हैं। उन्होंने लीला के लिए उनकी परीक्षा लेने की सोची। वे एक जटाधारी अवधूत का वेश बनाकर उनके मार्ग में खड़े हो गए। देवराज इंद्र ने उनसे पूछा कि वे कौन हैं, और उनसे रास्ता छोड़ने के लिए कहा। यह भी पूछा कि क्या शिव उस समय कैलाश पर ही थे। पर उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। उनसे बारबार पूछा गया, फिर भी उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। अंत में गुस्से में आकर इंद्र ने उनके ऊपर महा घातक अस्त्र वज्र चला दिया। उसी समय शिव अपने असली रूप में आ गए जिससे वज्र उनका कुछ न बिगाड़ सका। शिवजी को इंद्र पर बहुत क्रोध आ रहा था, और वे उसका वध ही करने वाले थे कि ब्रह्मा उनके पैरों में पड़कर उन्हें मनाने लगे। उससे शिव को उन पर दया आ गई। शिव ने उनसे पूछा कि वे अपना गुस्सा कहां डालें। पूर्णयोगी का गुस्सा अगर एकबार बाहर निकल आए तो वह वापिस नहीं लौटता। ब्रह्मा ने उन्हें वह गुस्सा समुद्र में डालने को कहा। उससे समुद्र से जलंधर असुर का जन्म हुआ।

उपरोक्त कथा का अध्यात्मवैज्ञानिक विश्लेषण

शिव का मतलब यहां जागृत व्यक्ति है। इंद्र का मतलब यहां साधारण तांत्रिक या साधारण पंचमकारी है। साधारण तंत्र से जो शक्ति मिलती है, वह कुंडलिनी ध्यान के लिए नहीं, बल्कि दुनियादारी की बढ़ौतरी के लिए इस्तेमाल होती है। इसमें काली तंत्रसिद्धियां जैसे कि मारण, टारण आदि भी शामिल हैं। सम्भवतः इंद्र के द्वारा मारण शक्ति के प्रयोग को ही वज्रप्रहार कहा गया है, क्योंकि जागृति की तरह ऐसी तांत्रिक शक्तियों का मूल स्रोत भी मेरुदंड से गुजरने वाली वज्रशक्ति या सुषुम्नाशक्ति ही प्रतीत होती है। अलौकिक शक्ति को प्राप्त करने का तरीका इससे अलग तो कोई दिखता नहीं शरीर में। पर उससे असली तंत्रयोगी का उसी तरह कुछ नहीं बिगड़ता जैसे जुगनू दीपक का कुछ नहीं बिगाड़ सकते, उल्टा खुद ही जल सकते हैं। कई बार बहुत से जुगनू इकट्ठे हो जाएं तो उसे थोड़ा ढक जरूर सकते हैं। इसी तरह बहुत शक्तिशाली वज्रशक्ति या बहुत से लोगों द्वारा चलाई गई घृणात्मक तांत्रिक वज्रशक्ति जागृत योगी का कुछ नुकसान भी कर सकती है। ऐसे तो वह अपनी हानि की कोई परवाह न करके सत्य की राह पर चलता रहता है, पर जब उसकी जान पे ही बन आती है, तो फिर आत्मरक्षा के लिए गुस्सा कुदरतन निकलता है, वह जानबूझ कर निकाला गया आम गुस्सा नहीं होता,

और न ही वह गुस्से की तरह लगता है। उसका गुस्सा रूपांतरित होकर निकलता है। जैसे कि किसी समाजसुधारक आंदोलन के रूप में या किसी को वरदान के रूप में। वह गुस्सा किसी का अहित नहीं करता, क्योंकि जागृत व्यक्ति से किसी का अहित होता ही नहीं बस तक। अब जलंधर की उत्पत्ति में समाज का कौन सा भला छिपा है, यह तो पता नहीं, पर इंद्र नष्ट होने से बच गया, मतलब सारी सृष्टि नष्ट होने से बच गई, क्योंकि इंद्र देवताओं का राजा है। गुस्सा आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन है। गुस्से से अपना ही शरीर कमजोर या नष्ट होता है, और हमारे अपने शरीर रूपी ब्रह्मांड में इंद्र समेत सारे देवता स्थित हैं। यह कह सकते हैं कि जलंधर मूलाधार को उतरी हुई गुस्से की ऊर्जा है। इसे कहते हैं गुस्सा पी लिया। उस समय तो पी लिया पर बाद में वह मूलाधार से अनैतिक प्रेम प्रसंग के रूप में भी निकल सकता है। यही जलंधर है जो पार्वती और लक्ष्मी के ऊपर आसक्त हो गया था। उसे पतिव्रता वृंदा ही मरने से बचाती थी। इसका मतलब है कि वह पत्नी की सहायता से प्राप्त तंत्रबल से शिव और विष्णु की तरह तेजस्वी हो गया था। वैसे भी उसे शिव का ही अंश माना जाता है। उसने सब देवताओं को पराजित कर दिया था, मतलब वह देवताओं से संचालित प्रकृति के वश में नहीं रह गया था, और सभी को दुख देते हुए भी तंत्रबल से सुखी रहता था। जब विष्णु ने धोखे से वृंदा का शील भंग किया तो उसने आत्मदाह कर लिया और वहां तुलसी का पौधा उग गया। तुलसी हिंदु धर्म का सबसे पवित्र पौधा है जो लगभग हर हिंदु परिवार के आंगन में उगा मिल जाएगा। यह औषधीय और आध्यात्मिक गुणों का भंडार है। मतलब साफ है कि पतिव्रता स्त्री सभी किस्म के मनुष्यों से श्रेष्ठ है जो हर घरपरिवार में होनी चाहिए। पंजाब का जालंधर नाम इसी असुर के नाम से पड़ा है। यहां एक वृंदा का मंदिर भी है। वास्तव में तंत्रयोगी की सफलता में उसकी पत्नि का बड़ा हाथ होता है। पत्नि अगर सहयोग न करे तो देवता भी सहयोग नहीं करते। मुक्ति की राह में असफल होना ही मरना है। वास्तव में जो ध्यान योगी होता है, उसका अतिरिक्त तांत्रिक बल कुंडलिनी ध्यान में खर्च होता रहता है, जिससे किसी का बुरा सोचने व बुरा करने के लिए शक्ति ही नहीं बची रहती। पर जो तांत्रिक आचारों और तकनीकों का इस्तेमाल तो करते हैं पर इष्ट ध्यान नहीं करते, उनमें अतिरिक्त तांत्रिक उर्जा शरीर में जमा हुई रहती है। वही उनसे गलत करवा सकती है। इसे चाहे काला जादू कहो या टोना टोटका या देसी भाषा में नजर लगना या जिहादी किस्म की मानसिकता रखना या खा पी कर हंगामा करना। कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि बहुत से संगठनों, राष्ट्रों, धर्मों या संप्रदायों द्वारा अपनी अवैध व अनैतिक बढ़ौत्तरी के लिए इसी अतिरिक्त या अनियंत्रित तांत्रिक ऊर्जा का इस्तेमाल सदियों से किया जाता रहा है। राक्षस भी इसी से पैदा होते थे, हालांकि मरते भी इसी से ही थे। यह उपयोग के तरीके पर निर्भर करता है। एनर्जी ने रिलीज होना ही होता है। वैसे भी शिव मस्तमलंग हैं। मतलब वे अपने में ही मस्त हैं। इसका मतलब है कि वे अपने में ही सब गुण धारण कर लेते हैं आवश्यकता अनुसार। तभी उन्हे भूतिया कहा जाता है, क्योंकि वे जरूरत पड़ने पर तमोगुण भी स्वीकार कर लेते हैं। शायद इसी से तांत्रिक पंचमकार की अवधारणा हुई है। अन्य लोग तो गुणों के संतुलन के लिए एकदूसरे पर आश्रित रहते

हैं। कुछ लोग हमेशा सतोगुणी रहते हैं, जैसे कि विष्णु, तो कुछ तमोगुणी, जैसे असुर और पशु और अन्य कुछ रजोगुणी, जैसे कि ब्रह्मा और इंद्र। ये तीनों किस्म के लोग एकदूसरे पर आश्रित रहते हैं। इसलिए ये एकदूसरे को नाराज या परेशान करने से बचते हैं, जहां तक हो सके। खासकर सतोगुणी लोग, क्योंकि सतोगुण सबसे कमजोर होता है, और इसे अपने भारणपोषण के लिए भी अन्य दोनों गुणों की जरूरत पड़ती है। पर शिव को किसी की कोई परवाह नहीं है। वह अपने आप में पूर्ण सक्षम हैं। इसीलिए वे इंद्र को क्षमा करने के मूढ़ में नहीं होते पर लोकहित के लिए करना पड़ता है, अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए नहीं, क्योंकि उन्हें किसी की आवश्यकता ही नहीं है। जागृति की अवस्था को सतोगुणी नहीं कह सकते, बेशक यह सतोगुण की प्रचुरता से प्राप्त होती है। इसमें बेशक सतोगुण जैसा प्रकाश होता है पर वह आम दुनियावी सतोगुण से अलग होता है। उसमें तमोगुण के जैसा और रजोगुण के जैसा आभास भी होता है, पर वे भी इन दुनियावी गुणों से अलग लगते हैं। तीनों गुणों का मिश्रण भी नहीं कह सकते क्योंकि बेशक इसका वर्णन करने के लिए इनका सहारा लेना पड़ता होए, और यह इनके मिश्रण की तरह महसूस होता है, पर शास्त्रों के अनुसार यह इनका मिश्रण भी नहीं होता। शायद इसीलिए इसे त्रिगुणातीत या निर्गुण कहा गया है। यह ऐसे है जैसे अगर पानी में चीनी, नींबू और नमक बराबर मात्रा में घोला जाए तो वह पानी सादा लगेगा पर असल में वह शुद्ध सादा जल नहीं होता। इसी तरह अगर तीनों गुण बराबर रहें तो वह अवस्था त्रिगुणातीत लगेगी पर असल में वह आत्मा की शुद्ध त्रिगुणातीत या निर्गुण अवस्था नहीं होती। शायद इसी धोखे के कारण कई आध्यात्मिक नेता अपने आप को भगवान समझ बैठते हैं। इसी वजह से ही जागृति का अनुभव भी दुनियावी अनुभव से अलग स्वरूप वाला नहीं लगता। पर असल में दोनों के बीच में जमीन आसमान का फर्क होता है। जहां जागृति का अनुभव शुद्ध जल की तरह है, वहीं दुनियावी अनुभव नमक, नींबू और चीनी मिश्रित जल की तरह है। तीनों का अनुपात हरपल बदलता रहता है। जब यह बराबर हो जाता है, तब जागृति जैसा प्रकाश और सुख महसूस होता है। योग से इड़ापिंगला अर्थात यिनयांग के संतुलन से ऐसा ही होता है। यह हमें जागृति जैसी अवस्था का आभास देता है। इससे आदमी असली जागृति को प्राप्त करने के लिए प्रेरित होता है। इन सब बातों का मतलब साफ है कि शिव का तथाकथित तमोगुण उनकी जागृति में बाधक नहीं बल्कि सहायक होता है। वैसे वह तमोगुण नहीं होता पर तमोगुण जैसा लगता है। होता तो वह सतोगुण ही है। शायद सतोगुण के अहंकार को खत्म करके ऐसा होता है। शास्त्रों में भी ऐसा ही कहा है कि सतोगुण से भी जागृति तभी मिलती है, जब उसके प्रति भी अहम भाव नष्ट हो जाता है। अहम नष्ट होने से सतोगुण के रहते हुए भी वह ज्यादा ध्यान में नहीं रहता। उसके प्रति ध्यान या आसक्ति के अभाव से ही वह तमोगुण की तरह भासता है। शिव का तमोगुण ऐसा ही वर्चुअल अर्थात आभासी है, वास्तविक नहीं।

कुंडलिनी शक्ति की सहायता से ही देवी भगवती ब्रह्मा-विष्णु सहित संपूर्ण सृष्टि की रचना करती है

सभी मित्रों को नवरात्र पर्व की बधाइयां

मित्रों, सभी पुराणों में सृष्टिरचना का वर्णन लगभग एकजैसा ही है। बस सभी अपनेअपने अराध्यदेव को सर्वोपरि मानते हैं। मतलब विष्णु पुराण में विष्णु को, शिव पुराण में शिव को, तो देवीपुराण में भगवती देवी को इष्ट मानते हैं। शिव पुराण में इस बारे कथा आती है कि शिव अकेले ही थे, पर पूर्ण थे। एकबार वैसे ही उनके मन में हास्यविनोद के लिए एक से दो बनने की इच्छा पैदा हुई। इसलिए उन्होने अपने शरीर को शिव और पार्वती, दो शरीरों में प्रकट किया। फिर शिव और पार्वती से क्रमशः पुरुष और प्रकृति (स्त्री) की उत्पत्ति हुई। उन दोनों को निर्गुण शिव ने आकाशवाणी से तप करने को कहा। उन दोनों ने जब तप करने के लिए स्थान मांगा तो निर्गुण शिव ने अपने रूप से काशी नगरी बना दी। तपस्या के श्रम से उनके शरीर से अनेक जलधाराएं उत्पन्न हो गईं, जिससे सारा शून्य भर गया। उस समय कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था। उस आश्चर्य को देखने के लिए जब पुरुषरूप विष्णु ने सिर हिलाया तो उनके कान से मणि नीचे गिर गई। वह मणिकर्णिका तीर्थ बना। जब वह काशी नगरी (पंचकोशात्मिका/पांच कोस विस्तार वाली) पानी में डूबने लगी तो शिव ने उसे अपने त्रिशूल पर स्थापित कर लिया। उसके बाद विष्णु ने प्रकृति नामक अपनी पत्नी के साथ वहां शयन किया। तब शंकर की आज्ञा से उनके नाभिकमल से ब्रह्मा प्रकट हुए। तब उन्होंने शिव आज्ञा से अद्भुत सृष्टि की रचना की। उन्होंने चौदह लोकों का निर्माण किया। इस ब्रह्मांड का विस्तार पचास करोड़ योजन है। ब्रह्मांड में कर्म से बंधे प्राणी मुझे कैसे प्राप्त होंगे, ऐसा सोच कर शिव ने काशी ब्रह्मांड से अलग रखा। शिव ने अपने अविमुक्त नामक मोक्षदायक लिंग को वहां स्थापित किया। ब्रह्मा का एक दिन पूरा होने पर भी उस काशी का नाश नहीं होता। उस समय शिव उसे अपने त्रिशूल पर धारण करते हैं। ब्रह्मा द्वारा पुनः सृष्टि किए जाने पर वे काशी को पुनः स्थापित करते हैं।

उपरोक्त कथा का स्पष्टीकरण

कथा का शुरुवाती भाग तो स्वयं विवरणात्मक है। पुरुष और स्त्री तभी विवाह करेंगे और घर बनाने की सोचेंगे अगर उनके पास उस लायक स्थान होगा। मूलभूत आवश्यकता स्थान की है। संसाधन और संपत्ति तो वे बाद में भी जोड़ सकते हैं। उन्हें विवाह के लिए

कहना ही तप के लिए कहना है। विवाह भी एक यज्ञ है, जिसे हम गृहस्थ रूपी तप के लिए दीक्षा समारोह मान सकते हैं। उनके पिता आदि ने उन्हें जमीन का टुकड़ा दे दिया गृहस्थी बसाने को या कहो कि उन्हें अपनी जमीनी दुनिया में जगह दे दी। वही परमपिता के द्वारा प्रदत्त काशी है। वह शिव का ही रूप है, क्योंकि सबकुछ शिवमय ही है। वैसे भी सभी का अपनी जमीन जायदाद के साथ आत्मभाव या अहम जुड़ा होता है। वे वहां तप करते हैं, मतलब सृष्टि विकास के शुभ विचार को मन में लेकर आपस में प्रेमविहार डेटिंग आदि करते हैं। उससे वे दोनों प्रेमरस में डूब जाते हैं। जल भी रसरूप ही है। प्रेम की तुलना जल से की गई है। चारों ओर जल ही जल, मतलब प्रेम ही प्रेम। प्रेमियों को प्रेम के इलावा कुछ नहीं दिखता। शून्य भर गया मतलब अवसाद की अवस्था प्रेम से भर गई। पुरुष जब इससे आश्चर्यचकित होकर यह देखता है तो उसके मन में कुछ काम करने का विचार पैदा होता है, मतलब उसमें थोड़ी व्यवहार बुद्धि आने लगती है। इसीको कथा में ऐसे दिखाया गया है कि उसके कान से मणि गिरने से मणिकर्णिका तीर्थ बन जाता है। तीर्थ इसलिए क्योंकि उसकी व्यवहार बुद्धि या रचना में अथाह प्रेम मिश्रित होता है, जिससे उसमें शुद्धता, दिव्यता और आत्मीयता बनी रहती है। फिर भी प्रेम बढ़ता ही गया, जिससे वे प्रेमांध से होकर अपनी दिनचर्या भी भूलने लगे। उन्हें यह भी सुध नहीं रही कि वे कहां हैं, क्या वक्त है और क्या करना है। इसीको ऐसा कहा गया है कि काशी नगरी जल में डूबने लगी। फिर शिव के स्मरण से उनका दुनियादारी वाला रूझान लौटा। त्रिशूल तीन गुणों का प्रतीक है, और दुनियादारी भी त्रिगुणमयी ही होती है। फिर वे बड़ों और गुरुओं की प्रेरणा से और अपनी इंस्टिंक्ट से संतानोत्पत्ति के लिए एकसाथ शयन करने लगे। फिर स्त्री का गर्भ बन गया। वह भी विष्णुस्वरूप ही है। वह भी जल में स्थित था, क्योंकि गर्भ जल से भरा होता है। विष्णु को क्षीरसागर में शयन करते हुए बताया गया। गर्भ का जल भी खीर की तरह पोषण से भरपूर होता है जो बच्चे की परवरिश करता है। उसे भी मां पुत्र के बीच प्रेम रस कह सकते हैं। काशी नगरी भी उसीको कह सकते हैं क्योंकि उसी पर या उसीके कारण मां पुत्र सृष्टि के लिए तप करते हैं अर्थात गर्भ का महान कष्ट सहते हैं। निद्रावस्था में दोनों साथ में सोए होते हैं। तभी गर्भनाल से जुड़ा गर्भ बढ़ने लगता है, और मनुष्याकार ले लेता है। उसे ही कमल कहा गया है, क्योंकि सभी चक्रों को कमल रूप दिखाया जाता है, विशेषकर सहस्रार चक्र को, जो एक हजार पंखुड़ियों के साथ सबसे बड़ा कमल है। मस्तिष्क विकसित होने पर उसी पर मन अर्थात ब्रह्मा का जन्म होता है। मन में चित्रविचित्र दृष्य, विचार, और अनुभव ही ब्रह्मांड के रूप में विकसित होते रहते हैं। पाठकों को यह शंका हो सकती है कि पिता तो विष्णु को कहा था, न कि गर्भ में पल रहे पुत्र को। तो इसका भावार्थ यह है कि पुत्र को शास्त्रों में पितारूप ही कहा गया है, इसीलिए पुत्र को पिता के आत्मज के रूप से भी संबोधित किया जाता है। जो यह कहा गया है कि ब्रह्मांड के नष्ट होने पर भी काशी नगरी पूर्ववत बनी रहती है, उसका यही अर्थ है कि अगर आदमी मर भी जाए तो माताओं का गर्भाशय वैसा ही बना रहता है। बच्चे के जन्म के बाद गर्भाशय सिकुड़ कर अपने मूल रूप में आ जाता है। इसको संभवतः ऐसा कहा गया है कि ब्रह्मांड के नष्ट होने के

साथ वह शिव के त्रिशूल पर स्थित हो जाता है। इसका मतलब साम्यावस्था में त्रिगुणस्वरूपता ही है, क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रकृति मूलरूप में विद्यमान तो रहती है, पर सृष्टिकाल का कोई काम नहीं करती। वह गर्भाशय सर्वश्रेष्ठ तपोभूमि और मुक्तिभूमि है, क्योंकि वहां बेशक कष्ट झेलने पड़ते हैं, पर संस्कार वहीं पड़ते हैं, जो आगे जाकर आदमी को मोक्ष दिलवाते हैं। इसीलिए कहा है कि स्त्री को गर्भावस्था के दौरान आध्यात्मिक संगति और सत्कर्म करने चाहिए। शास्त्रों में ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, जब आदमी ने गर्भ में रहकर ही आध्यात्मिक साधना कर ली थी। गर्भाशय को गड्ढे जैसी अंधेरी जगह भी कह सकते हैं। अंधेरे को मूलाधार का स्वरूप माना गया है। वहां से शक्ति सीधी सहस्रार को जाती है जागृति के लिए। शिव के द्वारा श्मशान में तप करना गड्ढे में साधना करना ही है। रावण ने भी गड्ढे में शिव की आराधना करके ही उनके दर्शन पाए थे। वहां अगर कुंडलिनी शक्ति को केन्द्रित किया जाए तो गर्भस्थ बालक की बाद में चलकर मुक्ति अटल या अविलंब व विशेष है। अ का मतलब अटल या अविलंब, और वि का मतलब विशेष है। इसीलिए वहां अविमुक्त लिंग स्थित कहा गया है, जिसका स्नान गंगाजल मतलब कुंडलिनी शक्ति से कराकर जरूर ध्यान पूजन करते रहना चाहिए, ऐसा कहा है। संभवतः यह नाभिचक्र के आसपास ही है। संभवतः गर्भस्थ शिशु के जल में हिलने से जो आवाज होती है, वह कान तक पहुंच कर मणि की झनझनाहट की तरह सुखद होती है। क्योंकि वह अंदर अंदर से ही महसूस होती है, इसलिए उसका नाम मणिकर्णिका है। मतलब वह मणि की तरह श्वेत अस्थियों से प्रवाहित होकर कर्णिका अर्थात कान तक पहुंचती है, न कि वायु से होकर।

फिर कहते हैं कि काशी में जो कोई भी जीव (कीट पतंगा भी) जन्मता है, या मरता है, वह जरूर मोक्ष को प्राप्त होता है। शास्त्रों में हर जगह कहा है कि मुक्ति का अधिकार सिर्फ और सिर्फ मनुष्य को है। मतलब जो जीव मनुष्य के गर्भ में आ गया, वह अवश्य मुक्त हो जाएगा, बशर्ते वह मनुष्य बन कर रहे। फिर मरने की बात आई। यह मुझे तांत्रिक लगती है। गर्भ में शिशु होता है, और वह भोले शंकर की तरह मुक्त जैसा ही होता है, स्वभाव से। पूरी दुनियादारी को सही से निभाते हुए जो बच्चे के जैसा अद्वैतशील बना रहेगा मरते समय भी, वह जरूर मुक्त हो जाएगा। यौनतंत्र की ऊर्जा बच्चे के जन्म को न जाकर जागृति को जाती है। मतलब जिस काशी में बच्चा जन्म लेता है, जागृत व्यक्ति भी उसी में जन्म लेता है। जागृत व्यक्ति तो मरता भी उसी में है। आम आदमी तो किसी भी साधारण अवस्था में मर सकता है। क का मतलब जल होता है, और शी से शयन बना है। मतलब जल में शयन। ऐसे तो विष्णु भगवान ही होते हैं जो शेषनाग पर सोते हैं। इससे भी लगता है कि काशी गर्भाशय जैसी चीज का रूपक है।

कहते हैं कि देवी ने पहले शून्य आकाश में जल पैदा किया। फिर उन देवी भगवती की शक्ति से भगवान विष्णु जाग गए जो जल में शेषनाग पर सोए हुए थे। दरअसल विष्णु सोई हुई कुंडलिनी शक्ति अर्थात अव्यक्त जीवात्मा हैं। स्त्री जब गर्भवती होती है तो उसके गर्भ के जल में भ्रूण प्रकट हो जाता है। वह विकसित हुए मनुष्याकार नन्हें बालक का रूप ले लेता है, और सबकुछ अनुभव करने लगता है, अर्थात जाग जाता है। वह

गर्भनाल के माध्यम से स्त्री के शरीर से जुड़ा होता है। वास्तव में मनुष्य का असली रूप फन उठाए नाग के जैसा है। वही स्त्री का रूप दिखाया गया है। उसे ही ऐसे कहा गया है कि वह नाग विष्णु की रक्षा करता था। एक स्त्री अपने गर्भ को कौन सी सुरक्षा नहीं देती। देवी पुराण में तो देवी को विष्णु से भी बड़ा और सृष्टि रचयिता दिखाया गया है। उसमें दलील दी गई है कि कौन अपनी इच्छा से स्त्री के गर्भ में आकर जन्म लेना चाहता है, क्योंकि गर्भ तो एक कैदखाना है, और उसमें होने वाली समस्याएं नरक की यातनाओं से कम नहीं है। यह तो देवी है जो उसे गर्भ में आने को मजबूर करती है। मतलब इसमें पुराण खुद स्पष्ट कर रहा है कि विष्णु एक गर्भस्थ बालक है, ब्रह्मा उसके द्वारा पैदा किया हुआ उसका मन है, और उसमें विभिन्न विचार ही विविधताओं से भरी सृष्टि है। साथ में यह भी कि उस बालक को गर्भ में लाने वाली उसकी माता ही देवी भगवती है। निकट के प्रयागराज तीर्थ में मरने से स्वर्ग आदि शुभ लोक प्राप्त होते हैं। प्र मतलब प्रचुर और याग मतलब यज्ञ। यज्ञ पुण्य कर्म को कहते हैं। प्रयाग संभवतः मणिपुर चक्र को कहा गया हो। क्योंकि यहां यज्ञ होता बताया जाता है, प्राणों की आहुतियों से। वैसे भी पेट से ही भूख लगती है, और उसीकी मांसपेशियों की हलचल से सत्कर्म होते हैं। मतलब गहरी और लंबी यौगिक सांस पेट से चलती है, और इसी किस्म की सांस से पापकर्म भस्म होते हैं और पुण्यकर्म होते हैं। उथली, तेज और छाती की सांस से तो क्रोध आदि मन के दोष बढ़ते हैं, जिनसे पाप नष्ट न होकर बढ़ते हैं। मणिकर्णिका नाम भी शायद इसलिए होगा कि जब गर्भस्थ बालक हिलता है या सिर हिलाता है तो उसकी आवाज नाभि क्षेत्र में कान लगा कर सुनी जा सकती है। मणिपुर चक्र को तीर्थ इसीलिए कहा गया है जैसा ऊपर बताया गया है। अब हो सकता है कि इस विश्लेषण के सभी भाग सही हों। कुछ न भी हों तो भी कथा को याद रखने के लिए फायदेमंद ही है।

मधु कैटभ नाम के दो राक्षस जो नारायण के कान की मैल से पैदा हुए, उन्होंने वेदपुराण को मतलब चेतना या ज्ञान को हर के पूरी सृष्टि के आस्तित्व को खतरे में डाल दिया था। फिर देवी ने विष्णु को शक्ति देकर उनका वध करवाया। वास्तव में जब आदमी के कान में संक्रमण का मैल होता है, तब वह दर्द आदि से अपना सिर एक तरफ को टेढ़ा रखता है। भ्रूण के सिर को डेढ़ा करने को ही उसके कान की मैल कहा गया है। इससे वह समय आने पर बच्चादानी से बाहर नहीं निकल पाता, और उसका जीवन संकट में पड़ जाता है। फिर मां के खून से प्राप्त शक्ति से वह सिर को सीधा करने की कोशिश करता है। मां की शक्ति से बच्चादानी भी जोर लगाकर इसमें उसकी मदद करती है। इससे वह सीधा हो जाता है मतलब मधुकैटभ मर जाते हैं और बच्चा जन्म ले लेता है मतलब सृष्टि बच जाती है।

कुंडलिनी जागरण से ही समुद्र में छिपे हुए राक्षसों और भूतप्रेतों का समूल नाश संभव है

दोस्तो, शिवपुराण में एक कथा आती है कि पार्वती के वरदान से अंहकार में डूबी हुई दारुका नाम की एक राक्षसी थी। उसका पति दारुक भी महाबलवान था। वह अनेक राक्षसों को साथ लेकर सत्पुरुषों को दुख दिया करती थी। पश्चिम सागर के तट पर उसका एक वन था, जो सर्वसमृद्धिसंपन्न था। दारूकी ने उसकी देखरेख का भार अपने पति दारुक को दिया हुआ था। लोगों ने ऋषिमुनियों से उन्हें भगाने की प्रार्थना की। तो ऋषियों ने कहा कि अगर ये राक्षस पृथ्वी पर प्राणियों का वध करते रहेंगे और यज्ञ का विध्वंस करते रहेंगे तो खुद भी मर जाएंगे। शाप को सुनकर मौके का फायदा उठाते हुए देवता उनसे युद्ध करने लगे। शाप के डर से राक्षसों ने सोचा कि अगर वे युद्ध करेंगे तो भी मारे जाएंगे, और न करें तो खाएंगे क्या, तब भी मारे जाएंगे। तब दारुक ने पार्वती द्वारा प्रदान किए गए उस वर को याद किया कि वह अपने वन और परिजनों के साथ जहां चाहे वहां जा सकती है। राक्षसों की सलाह से वह संपूर्ण वन को उड़ाकर समुद्र के बीच में पानी पर चली गई। उस घटना को देखकर ऐसा लग रहा था जैसे पर्वत पंख लगा कर आसमान में उड़ रहे हों। और्व मुनि के शाप के भय से वे राक्षस भूमि पर नहीं आते थे। बल्कि जल में ही घूमते रहते थे। वे नावों पर बैठे मनुष्यों को अपने नगर में लाकर जेल में डालते और किसी किसी को मार भी देते थे। वे वहां रहकर भी किसी न किसी तरह से लोगों को पीड़ा देते ही रहते थे। जैसे लोगों को पहले उनके स्थल पर रहने पर भय बना रहता था, वैसे ही अब उनके जल में रहने पर भी बना रहने लगा। एक बार वह राक्षसी जल में स्थित अपने नगर से निकल कर लोगों को पीड़ा देने के लिए पृथ्वी पर जाने का मार्ग रोककर स्थित हो गई। उसी समय वहां चारों ओर से मनुष्यों से भरी हुईं बहुत सी सुंदर नावें आईं। उससे खुश हो राक्षसों ने जल्दी ही उनको पकड़ लिया। उन्हें पक्की जंजीरों में बांधकर जेल में डाल दिया। वहां उनको राक्षसों की फटकार भी पड़ती रहती थी, जिससे वे दुखी रहते थे। उन लोगों में सुप्रिय नाम का शिवभक्त शिवपूजन करता रहता था, और अन्य सभी लोगों को भी सिखाकर उनसे करवाता था। शिव भी उसकी चढ़ाई सामग्री को प्रत्यक्ष ग्रहण करते थे, पर यह बात वैश्य को भी पता नहीं थी। एकदिन दारुक राक्षस के सेवक ने वैश्य के समक्ष शिवजी को प्रत्यक्ष देखा। दारुक ने वैश्य से पूछा तो उसने पता होने से इंकार कर दिया। दारुक ने उसे मरवाने का हुक्म दिया। जब राक्षस उसे मारने दौड़े तो वह लगातार शिवकीर्तन करने लगा। इससे चारों ओर दरवाजों वाले उत्तम मंदिर के साथ शिव उस गड्ढे मतलब कैदखाने से प्रकट हुए। शिव ने वैश्य को पाशुपत अस्त्र देकर सब राक्षसों को मार दिया। फिर वरदान दिया कि इस वन में चारों

वर्णों के धर्म नित्य स्थिर रहेंगे और यहां शिवभक्त ही होंगे, तमोगुणी कभी नहीं होंगे। इससे दुखी दारुकी पार्वती के पास रोती हुई चली गई। पार्वती ने उन राक्षसों की रक्षा हेतु शिव से कलह किया। इससे शिव ने उनसे कहा कि फिर जो चाहे वो करो। फिर पार्वती ने शिव से कहा कि आपका वचन या वरदान युग के अंत में लागू होगा। तब तक तामसी सृष्टि बनी रहेगी। और कहा कि ये दारुकी राक्षसी मेरी शक्ति है, सभी राक्षसियों में बलिष्ठ है, यह राक्षसों पर राज करे। ये राक्षसों की पत्नियां यहां अपने पुत्रों को उत्पन्न करेंगी। ये सब मिलकर इस वन में मेरी आज्ञा से निवास करेंगी। तब शिव ने कहा कि इस वन में अपने भक्तों की रक्षा के लिए मैं भी निवास करूंगा। यहां पर जो अपने वर्णोचित धर्म में स्थित होकर प्रेमपूर्वक मेरा दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा। फिर कलियुग के बीतने पर सत्ययुग प्रारंभ होने पर अपनी बड़ी सेना के साथ जो वीरसेन नामक प्रसिद्ध राजा होगा, वह मेरी भक्ति से अति पराक्रमी होगा, और यहां आकर मेरा दर्शन करेगा, और उसके फलस्वरूप चक्रवर्ती राजा बनेगा। इस प्रकार लीलाधारी शिव और पार्वती हासविलास करते हुए वहीं स्थित हो गए। शिव नागेश्वर ज्योतिर्लिंग के नाम से और पार्वती नागेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई।

मिथक कथा का अनुसंधानात्मक विश्लेषण

दारुक राक्षस अहंकार है। उसकी पत्नि दारुका राक्षसी बुद्धि है। उससे बहुत से विचार पैदा होते हैं। वे ही इन दोनों की राक्षस संतानें हैं। ये आदमी को इधर उधर भटकाते रहते हैं, उन्हें चिंता में डालते हैं, उनमें भय आदि अनेक दोष पैदा करते हैं। कई तो इन दोषाें के कारण मर भी जाते हैं। पश्चिम दिशा शरीर का पिछला हिस्सा है। वन बालों से भरे हुए मास्तिष्क क्षेत्र को कहा है, जो शरीर की पिछली तरफ ज्यादा फैला होता है। सागर मूलाधार क्षेत्र है क्योंकि दोनों ही सबसे नीची जगह पर स्थित होते हैं। यह मानसिक जंजाल मस्तिष्क में ही फैला होता है। अंहकार ही शरीर समेत इसकी भी रक्षा करता है। लोग इस जंजाल की शांति के लिए गुरुओं और ऋषियों के पास जाते हैं। ऋषि कहते हैं कि यदि मानसिक जंजाल लोगों को ऐसे ही भटकाता रहा तो वे काम कैसे कर पाएंगे। और अगर वे काम नहीं करेंगे तो कमाएंगे क्या और खाएंगे क्या। इससे शिकार बने लोगों के ही न रहने से शिकारी बना यह मनोजंजाल भी किसे परेशान करके खाएगा। इससे आश्वस्त होकर लोग इस मानसिक जंजाल को काबू में रख कर अपने अपने काम में लग जाते हैं। इसको ऐसा कहा है कि मौका जानकर देवताओं ने उनसे युद्ध छेड़ दिया, क्योंकि देवताओं के रूप में स्थित इंद्रियों से ही लोग कामकाज कर पाते हैं। अगर यह मानसिक जंजाल योग की मानसिकता से फिर प्रकट होता रहता है, तो इसके प्रति खुद ही साक्षीभाव बना रहता है, क्योंकि लोग अपने कामों में व्यस्त होते हैं। इससे यह नष्ट हो जाएगा। अगर न प्रकट होता रहे, तो अपनी सत्ता को कैसे कायम रखे, मतलब जिंदा कैसे रहे। इसको ऐसे कहा गया है कि अगर राक्षस देवताओं से युद्ध करें, तो भी मारे जाएंगे, और अगर न करें, तो खाएंगे क्या, इसलिए तब भी मारे जाएंगे। मतलब लोगों की

परेशानी ही उनका भोजन है, और उससे बढ़ने वाला अज्ञान का अंधेरा ही उनकी बढ़ी हुई सेहत है। इसलिए मानसिक जंजाल सूक्ष्म या अव्यक्त या अवचेतन रूप में आकर छुप सा जाता है। एक प्रकार से यह मूलाधार रूपी अंधेरे समुद्र में छुप जाता है। समुद्र के बीच में, गहराई में अंदर अंधेरा ही होता है, क्योंकि वहां तक प्रकाश की किरण नहीं पहुंच पाती। जो भी आदमी जिंदगी से थक कर या परेशान होकर अवसाद में आ जाता है, वह एक प्रकार से मूलाधार रूपी समुद्र में नौका विहार करता है, यह सोचकर कि यहां पर दुनियादारी के जमीनी झमेले नहीं हैं। थोड़े समय तो उसे सुकून मिलता है, पर फिर वह अंधेरे अवचेतन मन की गिरफ्त में आ जाता है। हो सकता है कि किसी गरीबी, दुर्भिक्ष, महामारी, राजनैतिक या भौगोलिक संकट के दौर में बहुत से लोग सामूहिक रूप से परेशानी और अवसाद की चपेट में आ गए हों। इसे ही बहुत से लोगों का एकसाथ नौकाओं से समुद्र में उतरना कहा गया हो। अवचेतन मन की अमनस्कता से अनुभव होने वाला अंधेरा उन राक्षसों के द्वारा उसे अंधेरी जेल की कोठरी में डालना है। अंधेरे के रूप में ही वे राक्षस उसे परेशान करते हैं। अवचेतन मन में दबे हुए पुराने किए हुए कुकर्म जब गुस्से से भरे जीवों या मनुष्यों के रूप में महसूस होते हैं, शायद इसे ही राक्षसों द्वारा उन लोगों को फटकारना कहा गया हो। कईयों को मार देते हैं, मतलब कई लोग अवसाद से बीमार होकर मर जाते हैं, और कई आत्महत्या कर लेते हैं। कोई शिवभक्त उस अंधेरी अवस्था में मूलाधार पर कुंडलिनी का ध्यान करता है। उसके सत्संग से अन्य लोगों को भी लाभ मिलता है। जितना ज्यादा अंधेरा उस अवचेतन मन रूपी अंधेरी कोठरी में होता है, कुंडलिनी भी उतनी ही ज्यादा चमकती है। शायद इसी को ऐसा कहा गया है कि एक राक्षस ने भगवान शिव को प्रत्यक्ष देखा। अंधेरा रूपी जगत योगी को साधना से रोकता है। इससे उसके मन में न जगत का क्योंकि वह पहले ही जगत को छोड़ चुका है, और न ही साधना का, कहीं का भी प्रकाश नहीं बचा रहता। यह अवस्था मृत्यु के समान ही है। शायद इसे ही ऐसा कहा गया है कि दारुक रूपी लोगों के अहंकार ने राक्षसों रूपी सांसारिक विचारों और वस्तुओं के माध्यम से वैश्य को मरवाने का हुक्म दिया। इससे साधक जगत के डर के मारे या खुंदक में आकर अपनी साधना को और तेज बढ़ाता है, और अपनी कुंडलिनी को जागृत कर लेता है। शायद इसी को ऐसा कहा है कि उन राक्षसों के डर से वह वैश्य लगातार और जोर जोर से शिवकीर्तन करने लगा। फिर चार दरवाजों वाला मंदिर प्रकट होता है, और उसमें शिव विराजमान होते हैं। मूलाधार चक्र की भी चार पंखुड़ियां होती हैं। कुंडलिनी जागरण ही शिव का प्रत्यक्ष होना है। वह मानसिक जंजाल रूपी राक्षसों को ख़त्म करता है। दरअसल अवचेतन मन आत्मा के अंधकार के रूप में आत्मा से चिपका होता है। जब आत्मा में प्रकाश पैदा हो जाता है, तो वह खुद नष्ट हो जाता है।

पार्वती प्रकृति रूपा है। वह तो संसार का विस्तार चाहती है, जो तमोगुण के बिना संभव नहीं। दारुकी रूपी बुद्धि उनकी शक्ति है। मतलब बुद्धि से ही संसार का विस्तार होता है। बुद्धि ही सबसे बलशाली इंद्रिय है। वह अंहकार रूपी जीव को पति अर्थात अपना

रक्षक बनाकर बहुत से राक्षस रूपी विचारों को पैदा करती है। जो विचार हैं, वे हस्तपाद आदि इंद्रियों से विवाह करके मतलब उनसे मिलकर व उनके सहयोग से किस्म किस्म की सांसारिक वस्तुएं पैदा करते हैं। वे सभी वस्तुएं ही उन राक्षसों और राक्षसियों के पुत्र कहे गए हैं। ये सभी रहते उसी वन रूपी मास्तिष्क में जो सूक्ष्मरूप में मूलाधार में जाकर बस जाता है। दुनियावी वस्तुएं बेशक बाहर लगें देखने में, पर सभी मस्तिष्क में ही होती हैं। उनको वहां रहने की आज्ञा बुद्धि से ही मिलती है, क्योंकि अगर वह चाहे तो वह योग आदि से उन सबको बाहर भी निकलवा सकती है। शिवलिंग, शिवमंदिर और शिवमूर्ति भी इसी वन का हिस्सा हैं, जो भक्तों की रक्षा करते हैं। जो आदमी वर्णोचित धर्म मतलब कर्मयोग का पालन करेगा और उससे उत्पन्न शक्ति से शिवरूपी कुंडलिनी से प्रेम करके उसे जागृत करेगा मतलब शिव के दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा, मतलब ऐसा जीवात्मा होगा जिसके सभी चक्र जागृत या क्रियाशील होंगे। कलियुग, सतयुग ये सब आदमी की अवस्थाएं हैं। कलियुग अवस्था मतलब आदमी की प्रतिस्पर्धा और भौतिकता से भरी दुनियादारी वाली अवस्था। जब तक यह अवस्था है, तब तक तो मन के दोष रहेंगे ही। जब आदमी विकसित होकर सत्ययुग वाली अवस्था में, मतलब आध्यात्मिक साधना वाली अवस्था में प्रवेश करता है, तब वह पराक्रमी योद्धा की तरह इन दोषों का वध करता है। ऐसा शिव की शक्ति से मतलब शिव के ध्यान से होता है। उससे उसको कुंडलिनी जागरण मतलब शिवदर्शन मिलता है, जो चक्रवर्ती राजा जैसी अवस्था है। क्योंकि मूलाधार चक्र कुंडलिनी शक्ति और सुषुम्ना नाड़ी सर्प से जोड़ी गई हैं, इसलिए मूलाधार में स्थित लिंग का नाम नागेश्वर और उससे जुड़ी शक्ति का नाम नागेश्वरी है। इससे जुड़ी वीरसेन राजा की रहस्यात्मक कथा क्या है, उसका वर्णन अगली पोस्ट में करेंगे।

कुंडलिनी शक्ति काठ की मछली के साथ गड्ढे में प्रवेश करके वहां शिव की पूजा करने से क्रियाशील होती है

शिव को नमन गुरु को नमन शिव ही गुरु हैं गुरु ही शिव हैं

मित्रो, निषध नामक सुंदर देश में क्षत्रियों के कुल में महासेन वीरसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो शिव का अत्यंत प्रिय था। वीरसेन ने पार्थिवेश शिव का अर्चन करते हुए 12 वर्षों तक कठिन तप किया। तब प्रसन्न होकर शिव ने राजा से कहा कि वह काठ की मछली बनाकर उस पर रांगे का लेप लगा कर और उसे योगमाया से संपन्न करके उसे दे रहे हैं। उसे लेकर वह उसी समय नौका से उस विवर में प्रवेष करके चला जाए। फिर वहां जाकर उनके द्वारा किए गए उस विवर में प्रविष्ट होकर नागेश्वर का पूजन कर के उनसे पाशुपतास्त्र प्राप्त कर इन दारुकी आदि प्रमुख राक्षसियों का विनाश करे। शिव ने फिर कहा,"मेरे दर्शन के प्रभाव से तुम्हें किसी प्रकार की कमी नहीं होगी। उस समय तक पार्वती का वरदान भी पूर्ण हो जाएगा, जिससे वहां जो अन्य मलेच्छरूप वाले होंगे, वे भी सदाचारी हो जाएंगे। तब शिव अंतर्धान हो गए। इस प्रकार ज्योतियों के पति लिंगरूप प्रभु नागेश्वर देव की उत्पत्ति हुई। वे तीनों लोकों की संपूर्ण कामना को सदा पूर्ण करने वाले हैं।

उपरोक्त मिथक का वैज्ञानिक विश्लेषण

निषध शब्द निषेध शब्द से बना है। वह देश जहां कुत्सित या अज्ञानपूर्ण यौनाचार का निषेध हो, वेदविरोध का निषेध हो, मर्यादाहीनता का निषेध हो, अकर्मण्यता का निषेध हो, कुकर्म का निषेध हो आदिआदि। हरेक आदमी राजा तो होता ही है, अपने देहरूपी देश का। महासेन मतलब जिसके साथ बहुत बड़ी सेना हो। मतलब जो संसार में जाना पहचाना, मशहूर और इज्जतदार आदमी हो, जिसके आगे पीछे बहुत से लोगों की भीड़ लगी रहती हो। वीरसेन मतलब उस संसाररूपी सेना में जो बहादुरी से समस्याओं का सामना करते हुए मानवता के वैदिक मार्ग से पीछे नहीं हटता। वह ध्यानयोग में भी प्रवीण था। इसका मतलब कि वह किसी के प्रेम में मस्त रहता था। प्रेम शिव से, किसी अन्य देवता से, गुरु से, प्रेमिका से किसी से भी हो सकता है। इसीलिए शिवभक्त कहा है क्योंकि शिव ध्यान और प्रेम के प्रतीक हैं। शरीर में 12 चक्र हैं। उन चक्रों पर उसने कुंडलिनी या शिवरूप का ध्यान किया। एक चक्र की साधना एक साल की मानो तो 12 सालों में 12 चक्र। जन्म से लेकर आदमी ऐसे ही विकास करता रहता है। जन्म के कुछ

वर्षों तक आदमी मूलाधार चक्र की अज्ञानता के अंधेरे में रहता है। फिर किशोरावस्था आने पर हार्मोनल परिवर्तन के कारण वह स्वाधिष्ठान चक्र पर आ जाता है। युवावस्था में बलवृद्धि और प्रेमवृद्धि के कारण वह क्रमशः मणिपुर चक्र और अनाहत चक्र पर आ जाता है। प्रेम में और दुनिया के कामों में निपुणता के विकास से वह बोलचाल करने में और सौदेबाजी करने में भी निपुण हो जाता है। इसे कह सकते हैं कि उसकी चेतना विशुद्धि चक्र के स्तर पर पहुंच जाती है। फिर रोजगार के लिए उसे बुद्धि का बहुत प्रयोग करना पड़ता है। उससे वह आज्ञा चक्र पर आ जाता है। अपने रोजगार के पेशे में निपुण होने से वह कमाई के मामले में निश्चिंत सा हो जाता है, और वह अध्यात्म आदि के अभ्यास से अपनी मुक्ति के लिए प्रयास करने लगता है। इससे उसकी चेतना सहस्रार चक्र में आ जाती है। वैसे तो यदि आदमी को ढंग का माहौल मिले तो मात्र 17 18 साल की उम्र में वह अपनी कुंडलिनी को जागृत कर सकता है। पर इस कथा में सतयुग की बात हो रही है, इसलिए 12 साल लिखे हैं। उस समय शायद बालविवाह का प्रचलन भी था, जो 12 13 वर्ष की आयु तक हो जाया करता होगा। इसीलिए विवाह को ही सहस्रार जागरण की अवस्था मानी गई है, क्योंकि इसीसे मूलाधार से सहस्रार को सीधी और प्रचंड शक्ति मिलती है। पूरी कथा से भी यही स्पष्ट होता है, जिसमें बारह वर्ष की साधना के बीतने पर उसे मछली को विवर मतलब गड्ढे में प्रविष्ट कराने को कहा जाता है। थोड़ा गहराई से सोचने से इसका मतलब खुद ही समझ में आ जाता है। शिव ने ही हम सभी का और राजा वीरसेन का भी शरीर बनाया है। मतलब शिव ने ही शरीर के सभी अंग बनाए हैं, जिनमें मछली जैसे रूपाकार वाला जननांग भी शामिल है। काठ की मछली मतलब काठ भी मांस जैसा ही जैव पदार्थ है, और दोनों ही जीवित प्राणियों के घटक हैं, यह विज्ञान भी मानता है। शरीर में हार्मोनल सिस्टम और उससे उत्पन्न उत्तेजना जिससे उसमें कड़ापन आता है, यह सब कुछ भी परमात्मा शिव की ही बनाई हुई प्रणाली है। रांगा टिन धातु को कहते हैं। यह मध्यम सख्त होती है, लोहे जितनी ज्यादा भी नहीं, और ढीले मांस जितनी या काठ जितनी कम भी नहीं। इसी तरह शरीर में यौन विवर भी शिव ने ही बनाया होता है। विवर में जहां तक मछली प्रवेश करती है, विवर को वहीं पर खत्म मान लेना चाहिए। नौका तो पीछे रह जाती है। माया से युक्त मछली मतलब उसमें दिव्य यौन संवेदना होती है, जो किसी को भी मोहित कर सकती है। संभवतः वही अंग की शिखा है, बाकि हिस्से को तो नौका कहा गया है। अब जहां विवर खत्म हो गया, उसे ही मूलाधार रूपी गड्ढे का धरातल समझना चाहिए। यह दो अंगों के बीच में लगभग उसी स्थान पर पड़ता है, जहां योग शास्त्रों में मूलाधार चक्र का स्थान बताया गया है। मुझे तो यही असली मूलाधार लगता है, क्योंकि यही तो शक्ति देता है। बाकि विवरण तो मुझे प्रतीकात्मक या करीबी लगते हैं, असली नहीं। बाहर जहां मूलाधार चक्र के बिंदु की स्थिति दिखाई जाती है, वहां तो कोई अंधेरा गड्ढा नहीं होता। अंधेरा गड्ढा तो उसकी सीध में अंदर होता है। हालंकि जो तीव्र जननसंबंधी संवेदना के नाड़ीजाल अंदर स्थित होते हैं, उनका कुछ प्रभाव बाहर भी महसूस होता ही है। खैर, उस विवर में नागेश्वर लिंग का ध्यान करना, मतलब लिंग के ऊपर नागेश्वर शिवरूपी ध्यानचित्र का ध्यान करना। यह

मैडिटेशन एट टिप नामक सर्वोच्च कोटि की तांत्रिक साधना ही तो है। नाग शब्द मूलाधार और उससे जुड़ी संरचनाओं को भी इंगित करता है। क्योंकि ये सब संरचनाएं परमात्मा शिव ने अपनी प्राप्ति के लिए बनवाई हैं, इसलिए उनका एक नाम नागेश्वर भी है। वहां शिव का पूजन करने से पाशुपत अस्त्र मिलेगा, मतलब अवचेतन मन रूपी गड्ढे में दबे राक्षस रूपी विचारों को उघाड़ने की शक्ति मिलेगी। उससे दारुक आदि प्रमुख राक्षसों का विनाश होगा, मतलब जो बुद्धि आदि और मन के मुख्य विचार हैं, वे बाहर निकलकर असली शून्यरूपी आत्मा में विलीन होते रहेंगे। ये ही हैं जो जागृति में मुख्यरूप से बाधा बनते हैं। अन्य छोटेमोटे अनगिनत विचार तो जागृति के बाद भी विलीन होते रहते हैं, उम्र भर। शिव के दर्शन मतलब जागृति के बाद किसी चीज की कमी नहीं रहती। दुनिया के लोगों का भी युगों की तरह चक्र होता है। वे कलियुग जैसे माहौल के बाद सतयुग जैसा माहौल बनाते हैं। वे ही मास्तिष्क के वन में भी होते हैं। उनके सदाचार के सहयोग से राक्षसों को मारना ज्यादा आसान हो जाता है। ऐसी ही अनुकूल परिस्थितियां मिलती रहें तो आसानी होती है। इस कथा को पढ़कर बिल्कुल भी नहीं लगता कि ऋषिमुनियोँ ने कामसुख का अनुभव नहीं किया होता था, जैसा कि अक्सर आम धारणा में दिखने को मिलता है। बल्कि इसके विपरीत ऐसा लगता है कि वे गृहस्थ अवस्था में पूर्ण होकर ही बाद की वानप्रस्थ और संन्यास जैसी वैराग्यमय अवस्थाओं में यह सब दुनिया की भलाई के लिए लिख पाए।

कुण्डलिनी विज्ञान रावण-कथा को कुछ हद तक स्पष्ट कर सकता है

दोस्तो, शिवपुराण में एक कथा आती है कि एक बार रावण नाम का अभिमानी राक्षस कैलाश पर्वत पर शिव की भक्तिपूर्वक अराधना करने लगा। जब उससे शिवजी प्रसन्न नहीं हुए तब उसने दूसरा उपाय किया। वह हिमालय पर्वत के दक्षिण में वृक्षों से भरी भूमि में एक उत्तम गर्त बनाकर उसमें अग्नि स्थापित करके उसके समीप में शिवजी की स्थापना कर हवन करने लगा। वह गर्मी के मौसम में पंचाग्नि के बीच बैठकर, वर्षाकाल में चबूतरे पर बैठकर और शीतकाल में जल के भीतर रहकर, तीन प्रकार से तप करने लगा। इस प्रकार उसने घोर तप किया, तब भी दुष्टात्माओं के लिए दुराराध्य शिव प्रसन्न नहीं हुए। फिर रावण ने अपने सिर काटकर शिव का पूजन प्रारंभ किया। इस प्रकार उसने एक एक करके नौ सिर काट डाले। तब उसका एक सिर रहने पर सदाशिव प्रसन्न होकर उसके सम्मुख प्रकट हुए। शिव ने उसके सिरों को पहले की तरह स्वस्थ करके उसको मनोवांछित फल और अतुल बल प्रदान किया। फिर रावण ने हाथ जोड़कर शिव से कहा,"स्वामी कृपया मेरे साथ लंकापुरी चलिए, मैं आपकी शरण में हूं"। इससे शिवजी ने संकट में पड़कर खिन्न मन से उससे कहा कि बेशक वह उनके श्रेष्ठ शिवलिंग को ले जाए पर वह जहां भी उसे भूमि पर रखेगा वह वहीं स्थापित हो जाएगा। पर रास्ते में रावण को लघुशंका की इच्छा हुई। उसने पास खड़े गोप को उसे पकड़ाया और लघुशंका चला गया। गोप उसके भार को ज्यादा देर नहीं सह सका इसलिए उसे वहीं भूमि पर रख दिया। इस प्रकार वज्रसार से उत्पन्न वह लिंग वहीं स्थित हो गया, जो दर्शनमात्र से पापों को दूर करने वाला और सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। उसका नाम वैद्यनाथेश्वर पड़ा जो भोग और मोक्ष देने वाला है और सभी पापों को नष्ट करने वाला है। रावण फिर घर चला गया। सभी देवताओं ने इकट्ठे होकर उस लिंग की पूजा और स्थापना की। सभी देवता और मुनि चिंता में पड़कर नारद के पास जाकर कहने लगे कि यह दुष्ट रावण पहले ही उन्हे बहुत परेशान करता है, शिव का वरदान पाकर तो वह उन्हें और ज्यादा दुखी करेगा। रावण उनकी सहायता करने के लिए रावण के घर गए और उसकी झूठी प्रशंसा की। नारद के पूछने पर रावण ने शिववरदान वाले सारे घटनाक्रम को गर्व के साथ सुनाया कि कैसे वह शिव को प्रसन्न करने के तरीके की उग्रता बढ़ाता रहा और जब वह अपना दसवां और अंतिम सिर काटने लगा तो शिव ने प्रकट होकर उसे रोका और एक वैद्य की तरह उसके सभी सिर पहले की तरह जोड़ दिए। साथ में उसको अतुल बल का वर भी दिया। रावण ने फिर कहा कि अब वह ज्योतिर्लिंग का पूजन करके तीनों लोकों को जीतने के लिए घर आया है। नारद ने हंसते हुए उससे कहा कि शिव तो विकारी हैं, भांग के नशे में मस्त से रहते हैं, क्या झूठ नहीं कह देते, इसलिए वह उन पर विश्वास न करे। ऐसा कहकर उन्होंने रावण को कैलाश को उखाड़ने के लिए भड़काया और

कहा कि उससे शिव के वरदान की परीक्षा हो जाएगी। उसने वैसा ही करते हुए कैलाश पर्वत को अपनी भुजाओं पर उठा लिया। इससे कैलाश पर स्थित सबकुछ हिलने लगा और सभी चीजें आपस में टकराकर गिरने लगीं। शिव ने जब आश्चर्यपूर्वक पार्वती से इस बारे पूछा तो उन्होंने व्यंग्य कसते हुए जवाब दिया कि उनका उत्तम शिष्य रावण ही वह सब कुछ कर रहा था। इससे शिव ने रावण को कृतघ्न और बल से दर्पित समझकर श्राप दिया कि शीघ्र ही उसकी भुजाओं का घमंड दूर करने वाला कोई वहां उत्पन्न होगा। नारद ने शिव का श्राप सुन लिया और रावण भी कैलाश को नीचे रखकर प्रसन्नचित होकर अपने घर चला गया। इस प्रकार शिव के वरदान को सत्य मानकर रावण ने अपने बल से सारे जगत को वश में कर लिया। शिव की आज्ञा से प्राप्त महतेजस्वी दिव्यास्त्र से युक्त उस रावण की बराबरी करने वाला उसका कोई भी शत्रु उस समय नहीं था।

उपरोक्त मिथक का मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण

रावण का मतलब है, रुलाने वाला। जो आदमी मन के दोषों से भरा हुआ है, वह दुनिया को रुलाता ही है, हंसाता नहीं। मतलब कि वह सबको दुख ही दे सकता है, सुख नहीं। जब लोग उसका प्रतिकार करते हैं, तो वह उनका मुकाबला नहीं कर पाता। इसलिए वह उनसे मुकाबले के लिए शक्ति प्राप्त करने के लिए आम भाषा में टोना टोटका अर्थात मस्तिष्क या सहस्रार में शिव का ध्यान करता है। दोषी लोगों को अक्सर शिव ही पसंद आते हैं, क्योंकि उन्हें शिव भी अपनी तरह दोषों से भरे दिखते हैं। साधारण ध्यान से शिव कहां प्रसन्न होने वाले। शिव तो अपने प्रति संपूर्ण समर्पण मांगते हैं। इसे चाहे शिव की इच्छा समझ लो या जागरण का सिद्धांत कि केवल एकमात्र शिव की छवि को या किसी भी छवि को मन में बसाने से ही वह जागृत होती है अभी रावण के अंदर बहुत से दोषपूर्ण विचार थे, इसीलिए शिव के रूप की छवि पर उसका अच्छे से प्रगाढ़ ध्यान नहीं लग पा रहा था। फिर उसने शिव की प्रेरणा से दूसरा उपाय मतलब वाममार्गी तांत्रिक उपाय किया। दूसरा वही हो सकता है, जो पहले वाले से बिल्कुल अलग हो। पहला यदि शुद्ध वैष्णव था, तो दूसरा अपने आप तांत्रिक सिद्ध हो गया। यह वह दूसरा नहीं है जो संख्या का बोध कराता है, बल्कि वह वाला है जो अन्यत्व या विपरीतत्व का बोध कराता है। हिमालय अगर मस्तिष्क या सहस्रार है और उसे उत्तर में माना जाए, क्योंकि हिमालय की भौगोलिक स्थिति भी भारत के उत्तर में ही है, तो उसका दक्षिण भाग मूलाधार क्षेत्र ही हुआ। उस क्षेत्र में किया गड्ढा ही मूलाधार है। एक विशेष जातिवर्ग का जो गड्ढा नामक शक्तिशाली देवता है, वह शायद मूलाधार की ही शक्ति से बनता है, तभी उसका नाम गड्ढा है। वह जादू टोने, और काले कारनामों के लिए कुख्यात है। कहते हैं कि उससे कोई नहीं, केवल हनुमान ही बचा सकते हैं। शायद हनुमान की सात्त्विक शक्ति उसकी तामसिक शक्ति को हरा देती होगी। उस गड्ढे में रावण ने अग्नि स्थापित की मतलब उसने सांसों के प्राणायाम से अपने प्राणों को वहां केंद्रित किया। उसके समीप शिवजी की स्थापना मतलब वहां शिव की मूर्ति या चित्र का ध्यान किया। हवन मतलब प्राणों की

अग्नि में अपने शरीर में जमा ग्लूकोज, वसा आदि जलाने लगा, जिससे शक्ति या ऊर्जा पैदा होती है। शरीर को आपातकाल के समय मूलाधार स्थित कुंडलिनी शक्ति की जरूरत पड़ती है, जिससे वह सक्रिय हो जाती है। इसीलिए गर्मी में पांच किस्म की अग्नि का ताप सहना, वर्षा ऋतु में चबूतरे पर बैठना और शीत ऋतु में पानी के अंदर गले तक डूबकर साधना करना बताया गया है। मूलाधार के सक्रिय होने से ही दुख या कष्ट की घड़ी में प्रेमी प्रेमिका याद आते हैं। इसीलिए प्रेमी जोड़े सुखदुख में और मरते समय भी साथ साथ रहना पसंद करते हैं। अधिकांश धर्मों में इसीलिए तप को और सुखसुविधाओं पे नियंत्रण को महान माना गया है। फिर भी रावण के सामने शिव प्रकट नहीं हुए क्योंकि वह दुष्टात्मा था, और इन्द्रियों के दोषों से भरा हुआ था। अंतःकरण चार प्रकार के सूक्ष्म अंगों से बना है, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। इसी तरह ज्ञानेंद्रियां पांच सूक्ष्म अंगों या तत्त्वों से बनी हैं, आंख, कान, घ्राण, त्वचा और जननेन्द्रिय। इन सभी नौ अंगों को रावण ने बारी बारी से निष्क्रिय कर दिया। इसे ही रावण के द्वारा अपने नौ सिर कटना कहा गया है। क्योंकि हरेक अंग से एक अलग किस्म का ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिए हरेक अंग को कथा में एक पृथक सिर माना गया है। जब वह अंतिम दसवां सिर मतलब अपना असली सिर, जिसके सहारे बाकि सभी सिर हैं, को काटने की तैयारी करने लगा तो शिव प्रकट हो गए। इसका मतलब है कि वह साधना करते हुए इतना कमजोर हो गया था कि मरने के करीब था, तभी उसको जागृति मिली। जब आदमी "करो या मरो" वाली स्थिति में होता है, तब उसे सफलता मिलने की अधिकतम संभावना होती है। फिर शिव ने उसके सिर पहले जैसे करके उसे मनोवांछित वर दिए मतलब रावण फिर से दुनियादारी में लौटने के योग्य हो गया। दुनियादारी में सभी इंद्रियों की और अंहकार की भी जरूरत पड़ती है। वैसे भी शायद रावण को जागृति की क्षणिक झलक मात्र मिली थी, इसी वजह से वह एकदम पहले जैसा हो गया। जितना कुछ आदमी चाह सकता है, या पा सकता है, उसकी सर्वोपरि सीमा जागृति ही है। जब जागृति मिल गई तो जैसे सबकुछ मिल गया। यही शिव का उसे मनोवांछित फल और अतुल बल देना है। बल शस्त्रों की और सत्ता की प्राप्ति से पैदा होता है। ये सब भी तो जागृति की प्राप्ति के अंतर्गत ही आते हैं। डरता वह है, जिसे कुछ पाने को शेष बचा हो। शून्य भय मतलब अमित बल, क्योंकि बल होता ही निर्भयता की प्राप्ति के लिए है। रावण मूलाधार में जागृत की हुई शक्ति को अपने पसंदीदा चक्र तक ले जाना चाहता था। इसी को ऐसा कहा गया है कि वह शिवलिंग को अपनी सोने की लंका को ले जाना चाहता था। शायद यह शरीर का कोई विशेष चक्र या बिंदु है, जो हमें ज्ञात नहीं है, और जिसको जागृत करके अतुलनीय राक्षसी बल प्राप्त होता है। इसीलिए शिव दुखी हुए क्योंकि वह उसका दुरुपयोग कर सकता था। गोप कहते हैं ग्वाले को अर्थात गाय चराने वाले को, और गाय कहते हैं इंद्रिय को। रावण उस वीर्य शक्ति को किसी निकट वाले चक्र तक ही ले जा सका था कि वह लघुशंका के लिए चला गया। इससे मूलाधार से संबंधित इंद्रिय शिथिल हो गई, और शक्ति वहीं रह गई, क्योंकि इस इंद्रिय से ही शक्ति को ऊपर चढ़ने का बल मिलता है। जहां बीच में किसी विशेष चक्र पर शक्ति फंसी रह गई वह भी अज्ञात चक्र लगता है। उसे वैद्यनाथेश्वर लिंग

नाम दिया गया। कथा में कहा गया है कि वह लिंग वज्रसार से बना हुआ था। यह भी इस ओर इशारा करता है कि वह सबलाइमड या वाष्पित वीर्यशक्ति थी। रीढ़ की हड्डी से वज्र बनता है, इसलिए उसका सार उसमें सुषुम्ना से होकर गुजरने वाली शक्ति ही है, जो जागृति रूपी वज्र प्रहार करके अज्ञान रूपी वृत्रासुर राक्षस को मारती है। वह संवेदना शक्ति मूलाधार में बनती है, जिसको बनाने में वीर्यसार का मुख्य योगदान होता है। क्योंकि शिव ने एक वैद्य की तरह रावण के सभी सिर जोड़ दिए थे, इसीलिए उस लिंग का नाम वैद्यनाथेश्वर पड़ा। सभी देवता इसकी पूजा करने पहुंच गए। इससे एक संकेत मिलता है कि यह लिंग शक्ति चाहे कहीं पर भी हो, पर मस्तिष्क के जीवात्मा के द्वारा अनुभव होने वाले क्षेत्र में नहीं पहुंची थी। केवल इसी क्षेत्र पर जीव का अपना पूरा नियंत्रण होता है, देवताओं का नहीं। मतलब इस क्षेत्र में जीव की इच्छा चलती है। शरीर के अन्य सारे हिस्से देवताओं के नियंत्रण में होते हैं। जैसे कि हम अपनी इच्छा से घूम फिर सकते हैं, सोच सकते हैं, काम कर सकते हैं, पर खाना नहीं पचा सकते, दिल नहीं धड़का सकते, और भी शरीर के अनगिनत काम नहीं कर सकते। शायद यह स्वेच्छा वाला क्षेत्र सहस्रार ही है। अगर शक्ति वहां पहुंच जाती, तो रावण दुनिया का कितना अहित न करता। मन ही नारद मुनि है। रावण के मन को जागृति के बाद अहसास हुआ कि अब वह देवताओं को जी भर कर परेशान कर सकता है। यही देवताओं का नारद मुनि से शिकायत करना है। इससे उत्साहित रावण के मन ने सोचा कि क्यों न वह एकबार फिर सहस्रार में जाकर देख ले कि उसे सच में शक्ति मिली है। वह शिव की भक्ति में डूबा हुआ था और हर चीज में शिव को ही देख रहा था, बेशक स्वार्थ के वशीभूत होकर। अचानक उसके सहस्रार में जाने से उसका वह शिवभक्ति का प्रवाह रुक गया, क्योंकि सहस्रार में अद्वैत का माहौल है, और जहां अद्वैत होता है, वहां भक्ति नहीं होती। भक्ति द्वैत में ही होती है। इसलिए थोड़े समय के लिए शिव की भक्ति से संबंधित सांसारिक वस्तुएं गिर गईं। इसी को ऐसा कहा है कि कैलाश में सबकुछ उलटपुलट हो गया। कैलाश को यहां भक्तिभाव से भरा मस्तिष्क जानना चाहिए और उसको ऊपर उठाने को सहस्रार क्षेत्र। जो ज्यादा ही अद्वैत भाव में रहता है, वह दुनियावी द्वैत से भरा प्रेमपूर्वक भाईचारा नहीं जानता। इससे उसमें अहंकार भी पनप सकता है। इससे स्वाभाविक है कि उसके दुश्मन भी बहुत हो जाते हैं, जिनमें से कोई उसका काल भी बन सकता है। इसी को शिव के द्वारा नाराज होकर शाप देना कहा गया है। इससे देवता खुश हो गए, क्योंकि अगर सभी पूरे अद्वैतवादी बन गए तो उनकी बनाई हुई दुनिया कैसे चल पाएगी। सुना है कि भारत के प्राचीन मंदिरों में और गुफाओं में कामुक चित्र इसलिए बनाए गए थे, क्योंकि अद्वैतवाद की लहर से लोग घरबार छोड़कर जंगल को जा रहे थे। अब पता नहीं यह विश्लेषण कितना सही है, पर कथा को वैज्ञानिकता के साथ कुंडलिनी योग में फिट बैठाने के लिए और याद रखने के लिए जरूरी लगता है।

शिव के दर्शन को कुंडलिनी जागरण के इलावा और क्या कह सकते हैं, क्योंकि दोनों ही सर्वोच्च उपलब्धियां हैं। सर्वोच्च उपलब्धि एक ही हो सकती है, दो नहीं, इसलिए दोनों

एक ही हैं। ऐसा भी हो सकता है कि देव दर्शन ध्यान की ऐसी प्रगाढ़ अवस्था हो जिसमें देवता स्पष्ट सामने दिखते हों और उनसे बात भी हो सकती हो। बेशक यह कुंडलिनी जागरण रूपी सर्वोच्च स्तर से थोड़ा सा नीचे हो। क्योंकि अगर देवदर्शन ही कुंडलिनी जागरण होता तो देवदर्शन से कम से कम किसी एक राक्षस को तो सद्‌बुद्धि मिलती, पर देखने में तो यह आता है कि किसी को भी नहीं मिली, बल्कि उल्टा जो थी वह भी गई शक्ति के घमंड से। दूसरा, कुंडलिनी जागरण की अवस्था में तो कोई कुछ मांग ही नहीं सकता क्योंकि परम के साथ पूर्ण एकता महसूस होने से आदमी को अपनी पूर्णता भी महसूस होती है, फिर मांगने को बचा ही क्या। उधर देवदर्शन के दौरान तो राक्षस देवता के सामने लंबा चौड़ा मांगपत्र रख देते थे। खैर, अगर दोनों अनुभव मिलते जुलते भी हैं, तब भी इस कहानी से इस मान्यता का भी खंडन हो जाता है कि जागृत व्यक्ति कोई गलत काम नहीं कर सकता। वास्तव में जागृति से अच्छा काम करने की प्रेरणा मिलती है, पर इसकी कोई गारंटी नहीं कि अच्छा ही काम होगा। यह ऐसे ही है कि किसी को महान व्यक्ति की संगति मिले पर वह उसकी प्रेरणा को नजरंदाज करके कोई महान काम न करे। अच्छे या बुरे काम के लिए संस्कार, मानसिकता, व अभ्यास जिम्मेदार होते हैं। इस कथा से यह पता भी लगता है कि जैसे अच्छे काम शक्ति से होते हैं, वैसे ही बुरे काम भी शक्ति से ही होते हैं। शक्तिहीन तो कुछ भी नहीं कर सकता। खुराफाती लोगों में बहुत शक्ति होती है। यदि उनकी शक्ति को सही दिशा में मोड़ा जाए तो वे सबसे जल्दी जागृत हो सकते हैं। शायद रावण के साथ भी यही हुआ था। वह खुराफाती था पर अधिक शक्ति की आकांक्षा से शिव की पूजा करने लगा। खुराफाती लोगों का दिमाग एकदम फल चाहता है, वैसे ही जैसे चोर कमाई का इंतजार नहीं कर सकता, इसलिए किसी चीज को एकदम पाने के लिए उसकी चोरी करता है। वैसे ही जब रावण को पूजा से कोई लाभ मिलता नहीं दिखा तो उसने दूसरा तरीका अपनाया। मतलब शातिर दिमाग को आम जनसमुदाय की तरह सीधा, धीमा, आदर्शवाद वाला और साधारण तरीका कब पसंद आने लगा। इसलिए उसने टेढ़ा, तेज, आदर्शविहीन और असाधारण तांत्रिक तरीका अपनाया। शायद तांत्रिक तरीके की सफलता से वह इस भ्रम में रहा होगा कि वह तो यौन क्रिया में निपुण है, और किसी के साथ भी बिना रोकटोक के कर सकता है। इसी भ्रम के कारण ही उसने कुबेर की होने वाली पुत्रवधु रंभा अप्सरा का शील भंग किया होगा, और इसी भ्रम में आकर उसने सीता हरण किया होगा, जिस वजह से वह सीतापति राम के हाथों मारा गया।

मुझे लगता है कि रावण का अपना घर सहस्रार चक्र था, क्योंकि वहीं आत्मा का निवास माना जाता है। इसीलिए लंका को सोने की नगरी कहा जाता है। चीनी ताओ दर्शन में गोल्डन फ्लावर मेडिटेशन के अंतर्गत गोल्डन फ्लावर आज्ञा चक्र पर महसूस होता है। आज्ञा चक्र भी सोने की लंका हो सकती है क्योंकि रावण जैसा अहंकारी आदमी सहस्रार जैसे दिव्य स्थान में तो रहने नहीं वाला, बेशक भौतिकवादी और बुद्धिवादी आज्ञा चक्र में जरूर रह सकता है। एक पौराणिक कथा आती है कि लंका से एक कमल के नाल

जैसी सुरंग पाताल लोक को जाती थी। यह बताता है कि लंका एक चक्र था जो नाड़ी से मूलाधार से जुड़ा था, क्योंकि मूलाधार को अक्सर पाताल कहा जाता है। लंका को त्रिकूट पर्वत मतलब तीन पर्वत शिखरों के बीच में बताया गया है। अगर एक शिखर को बाईं भौंह वाली हड्डी मानें, दूसरे शिखर को दाईं वाली और तीसरे को नाक की हड्डी मानें तो लंका आज्ञा चक्र ही लगती है।

शिव को पता था कि रावण स्वभाव से ही दुष्ट है, इसलिए अगर उसकी बुद्धि को शिवलिंग का तेज मिल गया तो वह और ज्यादा दुष्ट बनेगा। ऐसा भी हो सकता है कि सहस्रार ही उसका घर हो, पर वह उसकी दिव्यता का दुरुपयोग करता था। इसका मतलब है कि यह जरूरी नहीं है कि सहस्रार पर जाकर आदमी खुद सज्जन बन जाए। प्रयास तो उसे तब भी करना पड़ेगा। कई विशेष धर्मों के अधिष्ठाता शायद सहस्रार को जगा कर हमेशा उसमें स्थित रहते थे, पर उन्होंने धर्म और ईश्वर के नाम पर अंतहीन नरसंहार करवाया, जो आजतक जारी है। ऐसे लोग अगर बिगड़ जाएं तो कालस्वरूप ही होते हैं। कोई उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता क्योंकि वे खुद परम पद पर स्थित होते हैं। संभवतः इसीलिए प्राचीनकाल में ब्रह्मविद्या को गुप्त रखा जाता होगा। अब परमाणु बम भी गुप्त नहीं रहा, अब किस बात का डर। मुझे यह भी लगता है कि जो जागृति के लिए तंत्र आदि से जबरदस्ती प्रयास करते हैं, उन्हें क्षणिक या आंशिक जागृति ही मिलती है, जैसी रावण को मिली, पूर्ण जागृति नहीं। रावण उसी पूर्ण जागृति को शिव से मांग रहा था, जिसको ऐसा कहा गया है कि वह शिवलिंग को स्थायी तौर पर अपने घर में रखना चाहता था। पर शिव ने उसे अनाधिकारी जानकर ऐसा नहीं होने दिया। मतलब जागृत बनने से पहले इंसान बनना पड़ता है।

इस कहानी को थोड़ा सा और ट्विस्ट भी दे सकते हैं। रावण अहंकार ही है। दसवां सिर अंहकार रूप ही था। उसे काटने का प्रयास मतलब वह बहुत कमजोर हो गया था और ख़त्म ही होने वाला था कि शिव प्रकट हो गए। मतलब अहंकार के शून्य होने से तो आदमी मर ही जाएगा, फिर जागृति किसे और कैसे मिलेगी। शिव का दर्शन देना मतलब बचेखुचे अंहकार का शिव में विलीन हो जाना है, नष्ट होना नहीं। रावण की लंका मूलाधार भी है, क्योंकि यह समुद्र के बीच में है, और ज्यादातर कथाओं में मूलाधार को समुद्र के रूप में दिखाया गया है। रावण रूपी दस इंद्रियां सीता रूपी शक्ति को हर के लंका रूपी मूलाधार में ले जाती हैं। मतलब कि दस इन्द्रियों से आदमी दुनियादारी में भटकता है। इससे दुनिया के चित्र उसके मन में शक्ति के नाम से व्यक्त रूप में आ जाते हैं, और फिर शीघ्र ही अवचेतन मन में अव्यक्त रूप में दब कर दर्ज हो जाते हैं। यही सीता रूपी शक्ति का लंका रूपी मूलाधार को जाना है। अब पाठक कहेंगे कि पहले आज्ञा चक्र को लंका बोला, और अब मूलाधार चक्र को बता रहे हैं। इसमें कोई विरोधाभास नहीं है, क्योंकि मूलाधार और आज्ञा चक्र सीधे आपस में जुड़े हैं।

यह शंका भी हो सकती है कि पहले मन को ब्रह्मा कहा था, और अब नारद मुनि को बोल रहे हैं। इसमें भी कोई विरोधाभास नहीं है। नारद मुनि ब्रह्मा के पुत्र हैं, मतलब ब्रह्मा रूपी संपूर्ण मन का एक छोटा सा भाग ही नारद रूप

कुंडलिनी शक्ति ही जल और इष्ट ध्यान ही मछली है, जो प्रलय से सृष्टि को बचाने में जागृत मनु भगवान की मदद करते हैं, जैसा की मत्स्य पुराण की मिथक कथा में वर्णित है

दोस्तो, मत्स्यपुराण की मूल व मुख्य कथा में आता है कि पूर्वकाल में आत्मज्ञानी सूर्यपुत्र महाराज वैवस्वत मनु ने पुत्र को राज्य सौंप कर मलयाचल के एक भाग में घोर तप किया। उससे उन्हें उत्तम योग की प्राप्ति हुई। उनके तप करते हुए करोड़ों वर्ष बीतने पर ब्रह्मा ने प्रकट होकर वर मांगने को कहा। इस पर मनु ने यह वर मांगा कि वह प्रलय होने पर सभी जीवों की रक्षा करने में स्मर्थ हो जाए। ब्रह्मा ने यह वर दे दिया। एकबार आश्रम में पितृ तर्पण करते हुए मनु को हथेली पर जल के साथ ही एक मछली आ गिरी। उसे उन्होंने दयावश कमंडलु में डाल दिया। एक ही दिनरात में वह सोलह अंगुल बड़ी हो गई और रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए कहने लगी। तब राजा ने उसे मिट्टी के घड़े में डाल दिया। वहां भी वह मत्स्य एक ही रात में तीन हाथ बढ़ गया। फिर वह ऐसा ही कहने लगा कि वह उनकी शरण में है, रक्षा करें। तब मनु ने उस मत्स्य को कुएं में रखा। वहां वह फिर से एक योजन बड़ा हो गया। और वही कहने लगा। तब मनु ने उसे गंगा में छोड़ा। जब वह वहां भी विशाल हो गया तो मनु ने उसे समुद्र में डाल दिया। मनु ने डर के पूछा कि क्या वह कोई असुरराज या भगवान हैं। तब मत्स्य रूप में भगवान ठीक है, ऐसा कहते हुए बोले कि उसने उन्हें पहचान लिया है। भगवान बोले, "राजन, थोड़े समय में पर्वत, वन और काननों सहित यह पृथ्वी जल में निमग्न हो जाएगी। इसलिए सभी जीवों की रक्षा के लिए देवताओं ने इस नौका का निर्माण किया है। सभी जीवों को इस पर चढ़ाकर तुम इसकी रक्षा करना। जब युगांत वायु से आहत होकर यह नौका डगमगाने लगेगी, उस समय तुम उसे मेरे सींग में बांध देना। फिर प्रलय की समाप्ति में तुम जगत के सभी प्राणियों के प्रजापति होओगे। इस प्रकार कृतयुग के प्रारंभ में सर्वज्ञ और धैर्यशाली नरेश के रूप में तुम मन्वंतर के अधिपति होओगे। उस समय देवगण तुम्हारी पूजा करेंगे। फिर मनु ने कुछ प्रश्न किए जिसका जवाब मधुसूदन ने निम्न प्रकार से दिया। आज से लेकर सौ वर्ष तक इस भूतल पर वृष्टि नहीं होगी। इससे भयंकर दुर्भिक्ष पड़ेगा। फिर उस युगांतक प्रलय के उपस्थित होने पर तपे हुए अंगार की वर्षा करने वाली सूर्य की सात भयंकर किरणें सभी जीवों को संतप्त करने लगेंगी। बड़वानल भी बहुत भयानक रूप ले लेगा। पाताल लोक से ऊपर उठकर संकर्षण के मुख से निकली हुई

विषाग्नि तथा भगवान रुद्र के ललाट से उत्पन्न तीसरे नेत्र की अग्नि भी तीनों लोकों को भस्म करती हुई भभक उठेगी। इस तरह जब सारी धरती जलकर राख का ढेर बन जाएगी और गगनमंडल ऊष्मा से संतप्त हो उठेगा, तब देवताओं और नक्षत्रों सहित सारा जगत नष्ट हो जाएगा। उस समय सात प्रकार के मेघ अग्नि के प्रस्वेद से उत्पन्न हुए जल की घोर वृष्टि से धरती को डुबो देंगे। तब सातों समुद्र क्षुब्ध होकर एकमेक हो जाएंगे, और तीनों लोकों को एकार्णव में परिवर्तित कर देंगे। उस समय तुम इस वेदरूपी नौका को ग्रहण करके इस पर सभी जीवों और बीजों को लाद देना तथा मेरे सींग में बांध देना। ऐसे में जब सारा देवसमूह भी भस्म हो जाएगा, तब भी तुम मेरी शक्ति से जिंदा रहोगे। इस आंतर प्रलय में सोम, सूर्य, मैं, चारों लोकों सहित ब्रह्मा, नर्मदा नदी, महर्षि मार्कंडेय, शंकर, चारों वेद, विद्याओं द्वारा घिरे हुए पुराण और तुम्हारे साथ यह विश्व (नौकारूप), ये ही बचे रहेंगे। चाक्षुष मन्वंतर के प्रलय काल में जब इसी प्रकार सारी पृथ्वी एकार्णव में निमग्न हो जाएगी और तुम्हारे द्वारा सृष्टि का प्रारंभ होगा, तब मैं वेदों का पुनः उद्धार करूंगा। ऐसा कह कर मत्स्य भगवान अंतर्धान हो गए।

मत्स्य पुराण के मुख्य मिथक कथानक का पर्दाफाश

सूर्यपुत्र आत्मा को कहा गया होगा, क्योंकि प्रकाशमान सूर्य को अक्सर साक्षात परमात्मस्वरूप कहा जाता है। मनु मतलब एक मनुष्य। मलयाचल मतलब सफेद चंदन का वृक्ष। करोड़ों वर्ष बीत गए तप करते हुए मतलब मनुष्य साधारण जीव से करोड़ों वर्षों के दौरान विकसित हो कर बना है। ब्रह्मा का वर देना मतलब कुदरती तौर पर उस काबिल होना क्योंकि कुदरत में सबकुछ ब्रह्मा ही करता है। प्रलय होने मतलब आदमी के मरने पर वह सभी जीवों की रक्षा करने में मतलब प्रजनन से नए आदमी पैदा करने में समर्थ हो जाए। मछली शक्ति को कहा है। उसे इसलिए भगवान कहा गया है क्योंकि शिव और शक्ति में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं है। वह वही कुंडलिनी शक्ति है जो मूलाधार से ऊपर चढ़कर तेजी से बढ़ते हुए उस शेषनाग का रूप ले लेती है, जो पूरे शरीररूपी महासागर में व्याप्त हो जाता है। नौका शायद प्रजनन इंद्रिय को कहा है। क्योंकि देवताओं ने ही शरीर के सभी अंगों का निर्माण किया है। वह युगांतक वायु मतलब प्राणवायु से डगमगाने मतलब क्रियाशील हो जाएगी। उसे मछली के सींग से मतलब मछली की तरह मुंह वाले अंग से के अगले भाग में बांधा। प्रलय की समाप्ति पर मतलब बच्चे के जन्म पर सभी प्राणियों के पिता हो जाओगे, क्योंकि सभी प्राणियों सहित संपूर्ण सृष्टि आदमी के मन में ही है। मन्वंतर मतलब मनुष्य का अंतर। एक मनुष्य के मरने के बाद जब उसका दूसरा मनुष्य जन्म हुआ तो वही मन्वंतर हुआ। वह दूसरा जन्म कृतयुग या सतयुग है, क्योंकि एक मनुष्य जन्म में बिगड़ा मनुष्य अपने अगले जन्म में अक्सर सुधर जाता है। युगों का चक्र जैसे बाहर घूमता है, वैसे ही भीतर भी। मन्वंतर के अधिपति मतलब पिता। सर्वज्ञ इसलिए क्योंकि उसे उस नए मनुष्य के पिछले जन्म के बारे में सब ज्ञात है, बेशक सूक्ष्म या अवचेतन रूप में। धैर्यशाली इसलिए क्योंकि नई सृष्टि की उत्पत्ति

मतलब नए मनुष्य के विकास में बहुत समय लगा, जिसका मनु ने बखूबी इंतजार किया। देवगण पूजा करते हैं पिता की। पुत्र का शरीर देवताओं से बना हुआ होता है। पुत्र पिता की सेवा या पूजा करेगा, मतलब देवगण पूजा करेंगे। सौ वर्ष ही मनुष्य का जीवनकाल होता है। उस दौरान उसके मन में जो सृष्टि होती है, वह बिना वर्षा के होती है, क्योंकि वर्षा स्थूल जगत में होती है, मस्तिष्क में उसके सूक्ष्म रूप में नहीं। इसी को दुर्भिक्ष कहा है। फिर सौ साल की उम्र पूरी होने पर आदमी की मृत्यु के रूप में प्रलय का वर्णन है। शरीर का ज्वर सात प्रकार का होता है। इसे ही सूर्य की सात किस्मों की किरणें कहा गया है। बड़वानल मतलब समुद्र में अग्नि। शास्त्रों में मूलाधार को समुद्र की उपमा दी गई है। उसमें आग मतलब उसमें शिवशक्ति का ध्यान, जैसा रावण ने किया था। बड़वानल को शास्त्रों में घोड़े का रूप दिया गया है। घोड़े की आकृति कुछकुछ ड्रेगन से मिलती जुलती है। इसका मतलब कि कुंडलिनी शक्ति ही बड़वानल है, जो अश्व जैसी आकृति की नाड़ी से होकर ऊपर चढ़ती है। इसीलिए बड़वानल का शत्रु पर अस्त्र की तरह प्रयोग भी दिखाया जाता है। शक्ति ही अस्त्र की तरह होती है। वैसे भी घोड़े पीठ में सुषुम्ना नाड़ी के ठीक ऊपर शरीर की केंद्रीय रेखा में पीठ पर पूंछ से सिर, यहां तक कि कुछेक जातियों में भ्रूमध्य बिंदु तक विशेष बाल होते हैं। शायद इसीलिए घोड़े में तेज दिमाग होता है। आपातकाल में या मुसीबत में शरीर को शक्ति देने के लिए मूलाधार सक्रिय होने लगता है। मरते हुए आदमी की सांसें तेज और गहरी हो जाती हैं। उन सांसों के बल से मूलाधार की शक्ति भी तेजी से ऊपर चढ़ने लगती है, और सुषुम्ना नाड़ी से होकर ऊपर उठकर पूरे मस्तिष्क में फैलकर शेषनाग अर्थात संकर्षण का रूप ले लेती हैं। मुंह से बाहर निकलती हवा ही उसकी विषाग्नि है। विष इसलिए कहा है क्योंकि प्राचीन लोगों को पता था कि अगर बाहर की ताजा हवा न मिले तो अपनी ही छोड़ी हवा में सांस लेने से दम घुटने से मौत हो जाती है। जब शक्ति ऊपर चढ़ेगी तो स्वाभाविक है कि वह आज्ञा चक्र पर कांसेंट्रेट हो जाएगी। यही अग्नि उगलता शिव का तीसरा नेत्र है। क्योंकि इन दोनों किस्म की घटनाओं के बाद मृत्यु हो जाती है, इसलिए कहा गया है कि इससे शरीर जलकर राख बन जाएगा। वैसे भी मृत शरीर को जलाते ही हैं। ज्वर के बाद पसीना अर्थात प्रस्वेद पड़ता है। सात प्रकार के ज्वर से सात प्रकार का पसीना हुआ। उन्हें ही सात किस्म के समुद्र कहा गया है। सब समुद्र इकट्ठे हो गए मतलब अंत में शरीर पूरी तरह से ठंडा पड़ जाता है। मन समेत पूरा शरीर समुद्र मतलब मूलाधार में सूक्ष्मरूप में समा जाता है। मतलब कोई आदमी मर गया। मृत व्यक्ति का अपना सारा संसार सूक्ष्मरूप में रूपांतरित होकर होने वाले पिता मतलब मनु के मूलाधार में स्थित हो जाता है। श्य मतलब शयन करने वाला। मनु के मूलाधार में शयन करने वाला प्राणी ही मनुष्य हुआ। उसी मूलाधार रूपी समुद्र में एक इंद्रिय रूपी नौका स्थित होती है। उसी नौका पर वह सूक्ष्म रूप में स्थित मृत व्यक्ति को जीवों और बीजों मतलब वीर्य के रूप में चढ़ाता है। बीज भी जीव ही है। मछली आदि की आगे की कहानी तो खुद ही समझ में आ जाती है। क्योंकि शरीर नष्ट हो गया, इसलिए देवता भी नष्ट हो गए। मृत व्यक्ति के सांस न लेने से वायुदेव नष्ट हो गए, गर्मी न पैदा करने से अग्नि देवता नष्ट हो गए, और

रक्तसंचार न करने से जल देवता। ये तीन मुख्य देवता हैं। अन्य भी विभिन्न अंगों से संबंधित सभी देवता नष्ट हो गए। कुछ शाश्वत चीजें जैसे सोम, सूर्य, और मैं (ईश्वर रूपी मत्स्य), मार्कंडेय, नर्मदा आदि बताई हैं। शायद ये ऐसी चीजें हैं जो परमात्मा के सनातन स्वरूप से जुड़ी हुई हैं। सोम मतलब मन संघात, सूर्य मतलब आत्मा आदि। सूक्ष्म शरीर में तो वैसे सबकुछ ही होता है, पर इसे सूक्ष्म विश्व के रूप में बताया गया है संक्षेप में। सूक्ष्म शरीर विश्वरूप ही होता है, क्योंकि यही इंद्रियों से शरीर में घुसकर दबकर सूक्ष्म हो जाता है। शरीर को हम विश्व को दबाने वाली मशीन कह सकते हैं। विस्तार से कहें तो सूक्ष्म शरीर में आत्मा, बुद्धि, मन, इंद्रियां आदि बताई गई हैं, पर यह केवल दार्शनिक विस्तार है, क्योंकि ये सभी चीजें विश्व के अंतर्गत ही आती हैं। जब मनु के द्वारा सृष्टि रूपी गर्भ स्थापित कर दिया जाएगा, तब भगवान हयग्रीव बन कर वेदों को राक्षस से छुड़ाकर लाएंगे, जिसे अगली पोस्ट में बताएंगे। इस तरह जब मत्स्य भगवान नौका को महासागर में खींच रहे थे, उस समय वे मनु को ज्ञान विज्ञान की बातें बता रहे थे, जिनसे मत्स्य पुराण बन गया। वैसे तथाकथित मत्स्य की क्रियाशीलता से शक्ति खुद ही सुषुम्ना में क्रियाशील रहती है जो नए नए ज्ञानविज्ञान के अनुभव प्रदान करती रहती है। जैसे सृष्टि का हरेक कण भगवत रूप है, वैसे ही शरीर का हरेक अंग और कण भी है।

क्योंकि तप और योगसाधना से ही शक्ति तेजी से ऊपर चढ़ती है, इसीलिए जल तर्पण करते हुऐ ऋषि के हाथ में आई। तर्पण में एक पवित्र तांबे के चम्मच से जल हाथ पर गिराया जाता है। मछली हाथ में मतलब शक्ति अनाहत पर महसूस होती है, क्योंकि तर्पण के समय दिल से दृढ़ भावना की जाती है। शक्ति को इंद्रियां दुनिया में उलझा कर एक प्रकार से खा जाती हैं। यही मछली का हिंसक जलचरों से डरना और मनु से सुरक्षा मांगना है। इससे मनु ने एनर्जी कल्टीवेशन का अभ्यास शुरु किया। वह शक्ति जब बढ़ी तो नाभि चक्र रूपी कमंडलु को उतरी। और बढ़ने पर वह मूलाधार रूपी कुएं को उतरी। वहां बढ़ने पर वह बैक चैनल यानि सुषुम्ना मतलब गंगा से ऊपर चढ़ी। इस प्रकार वह फन ऊपर को उठाए शेषनाग की तरह विस्तृत हो गई। उसे फिर आगे के चेनल से नीचे मूलाधार रूपी समुद्र को उतारा गया। मतलब विशाल मत्स्य को समुद्र में छोड़ दिया गया।

मुझे लगता है कि कुंडलिनी जागरण को ही रूपक के तौर पर देवदर्शन के रूप में दिखाया जाता है। जिस बात को मन में लेकर आदमी कुंडलिनी साधना में लगता है, वह जागृति मिलने पर पूरी हो जाती होगी। इसी को रूपक के तौर पर ऐसा कहा गया है कि देवता ने प्रकट होकर वरदान दिया। योग के अनुसार शुद्ध वैज्ञानिक और सैद्धांतिक कुंडलिनी जागरण तो ऐसा होता है कि आदमी मानसिक ध्यान चित्र के साथ एकाकार होकर और पूरा खुलकर अनंत रूप हो जाता है, उस चित्र से कोई बात वगैरह नहीं होती। ऋषिमुनि मन में अच्छा ध्येय रखकर साधना करते थे, पर राक्षस बुरा ध्येय रखकर। मनु के मन में सृष्टि रक्षा का ध्येय था, जैसा हरेक पिता के मन में होता है। पर

रावण के मन में सारी दुनिया को पराजित करने का ध्येय था। इसलिए उनके मुंह से वैसे ही वरदान की मांग निकली। मनु को कुंडलिनी जागरण ही हुआ था, जब उसने कई करोड़ योजन विस्तार के आकार वाले मत्स्य को देखा। एक करोड़ योजन लगभग 13 करोड़ किलोमीटर के बराबर होता है, जो लगभग पृथ्वी से सूर्य की दूरी है। ऐसे कई दूरियों के विस्तार वाले मत्स्य को देखना कुंडलिनी जागरण के इलावा अन्य कुछ नहीं लगता। मत्स्य इतना फैल गया मतलब नाग के आकार वाली शक्ति सहस्रार से होकर पूरे ब्रह्मांड में फैल गई। शक्ति शिव के साथ एक हो गई। क्योंकि किसी ध्यान चित्र के बिना ही मनु की शक्ति जागृत होकर अनंत में फैल गई, इसीलिए शिव, विष्णु, गणेश आदि किसी देवता से मनु को वरदान मांगते नहीं दिखाया गया है, पर सीधे ही मत्स्य के रूपक में ढाली शक्ति से मांगते या उससे मदद लेते दिखाया गया है। इसका मतलब है कि मत्स्य पुराण अन्य पुराणों से काफी पुराना हो सकता है। उस समय शायद ध्यान चित्र के लाभों की खोज नहीं हुई थी, और लोग सीधे ही आध्यात्मिक कार्य किया करते थे। ध्यान चित्र तो वैसे अध्यात्म से खुद ही बनता है, पर शायद उसे जागृत करने लायक विशेष बल नहीं देते थे, क्योंकि इसके वैज्ञानिक सिद्धांत का पता न होने से इस पर पूरा विश्वास नहीं था। जिस जल से भरे गड्ढे की गहराई का पता न हो, आदमी उस पर अपनी कार नहीं ले जाता। इससे लंबे समय से इकट्ठी हो रही आध्यात्मिक ऊर्जा खुद ही अचानक से आश्चर्य जागृति की झलक के रूप में महसूस हो जाती थी। पतंजलि का वैज्ञनिक अष्टांग योग बाद में लिखा गया होगा, जिससे ध्यान चित्र के महत्त्व का और उससे शीघ्रता से जागृति के बारे में पता चला होगा। इसीलिए पुराणों में हर जगह ध्यान और ध्यान चित्र का बोलबाला है। इसी के आधार पर बाद में रामायण भी लिखी गई, जिसमें ऋषि राम को ध्यान चित्र बना कर लंका रूपी मूलाधार में भेजा जाता है, जहां से वह सीता रूपी सोई हुई कुंडलिनी शक्ति को सुषुम्ना रूपी पुष्पक विमान से उठाकर सहस्रार रूपी अयोध्या में लाकर जागृत कर देते हैं।

यह भी हो सकता है कि जागृति के बाद रूपांतरण को ही प्रलय के बाद नई सृष्टि पैदा होना दिखाया गया हो। जागृति को वैसे भी नया जन्म ही कहते हैं। इसीलिए तो मनु उस प्रलय में मरता नहीं है। मस्तिष्क में पुराना सबकुछ खत्म हो जाता है, पर उसका सूक्ष्म बीज रहता है, तभी तो वह नए रूप में फिर से जन्म ले लेता है। इसका मतलब है कि जैसे पुरानी सृष्टि समय के साथ विकृत और दुख से भरी हो गई थी, उसी तरह नई भी हो सकती है। इसीलिए तो जागृति के बाद भी संभल के रहना पड़ता है और निरंतर योगसाधना करते रहना पड़ता है ताकि नई सृष्टि विकृत होने से बची रहे। मत्स्य रूपी शक्ति उसके रूपांतरण में मदद करती है। रूपांतरण के दौरान आदमी नई नई और अच्छी चीजें सीखता है, इसे ही मत्स्य भगवान द्वारा मनु को मत्स्य पुराण सुनाना कहा गया है। दोनों किस्म के विश्लेषण भी सही हो सकते हैं, क्योंकि पुराणों की कथाएं अक्सर बहुअर्थी होती हैं।

मलय सफेद चंदन को कहते हैं। मलयाचल मतलब सफेद चंदन के वृक्षों से भरा पर्वत। यह मस्तिष्क ही लगता है। इसी में प्रकाशमान और आनन्दमय संकल्प चित्र उभरते हैं। ध्यान मास्तिष्क में ही होता है। मछली ध्यानचित्र का प्रतीक भी हो सकता है। संकल्प जल का गिराना कुंडलिनी शक्ति का माइक्रोकॉस्मिक ऑर्बिट में घूमने का प्रतीक है। इसलिए शक्ति के घूमने से एक ध्यान चित्र खुद ही मनु की पकड़ में आ गया, मतलब हाथ में आ गया। बोलते भी हैं कि फलां चीज या मछली उसके हाथ लग गई या उसके जाल में फंस गई। पुराण आम बोलचाल के शब्दों का ही ज्यादा प्रयोग करते हैं। ध्यानचित्र रूपी मछली शक्ति रूपी जल में ही जीवित रहती है। वह ध्यानचित्र तांत्रिक साधना से बहुत तेजी से बढ़ता है। हाथ अनाहत चक्र से जुड़ा होता है। यह चक्र दिल का और भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। जिस प्रेम से कुंडलिनी योग का प्रारंभ होता है, वह हृदय में ही उपजता है। इसी प्रेम मिश्रित दयाभाव से उसने दिल में महसूस हुए मछली रूपी इष्टचित्र को संभाल कर कमण्डलु मतलब उससे निचले चक्र मणिपुर चक्र को उतार दिया। जब दिल में ध्यान मजबूत हो जाता है, तब वह खुद ही नाभि को उतरता है। कहते भी हैं कि प्यार के बाद भूख लगती है। नाभि का आकार भी कमण्डलु मतलब पूजा के पवित्र लोटे की तरह टेढ़े मेढ़े गड्ढे के जैसा होता है। संसारसागर में भौतिक दोष रूपी बड़े बड़े मांसाहारी मतलब दुखदायी मच्छ होते हैं, जिनसे उसे बचाना पड़ता है। प्रेम से उसका ध्यान जारी रखने से वह तेजी से बढ़ता ही गया। इससे वह खुद ही घड़ा रूपी स्वाधिष्ठान चक्र को उतर गया। वैसे भी इस चक्र को बैगेज मतलब बैग या घड़े जितने आकार का कंटेनर ऑफ इमोशंस कहते हैं। वहां भी वह मनु के प्रेम से बढ़ता गया, इससे वह मूलाधार रूपी कुएं को उतर गया। सबसे बड़ा गड्ढा मूलाधार ही है, और कुएं से बड़ा गड्ढा क्या हो सकता है। वहां से वह मनु की योगसाधना से बढ़कर सुषुम्ना से होते हुए वह कुंडलिनी शक्ति के साथ ऊपर चढ़ गया। इसीको मनु के द्वारा मत्स्य को गंगा में डालना कहा गया है। कथा के शुरु में ही लिखा है कि मनु को तप करते हुए उत्तम योग की प्राप्ति हुई। इससे इशारा मिलता है कि यह कुंडलिनी योग का ही वर्णन हो रहा है, क्योंकि कुंडलिनी योग सभी प्रकार के योगों में सर्वोत्तम है। गंगा से वह मत्स्य समुद्र यानि सहस्रार चक्र को चला गया। कई लोग बोलेंगे कि पहले मूलाधार को समुद्र बोला और अब सहस्रार को बोल रहे हैं। इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। दोनों सुषुम्ना नाड़ी से सीधे आपस में जुड़े हुए हैं। मूलाधार और सहस्रार, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सहस्रार पहुंचते ही उसका आकार फन उठाए विशाल नाग की तरह हो गया। मतलब मनु को कुंडलिनी जागरण हुआ, जिससे उसका रूपांतरण शुरु हो गया।

कुंडलिनी शक्ति संचरण को ही सभी वेद-पुराणों में हयग्रीव भगवान के रूप में दर्शाया गया है

दोस्तों, बहुत से पुराणों में हयग्रीव की कथा आती है। किसी में हयग्रीव को देवता के अवतार में दिखाया गया है, किसी में राक्षस के रूप में, तो किसी में दोनों ही रूपों में। अन्य मिथक चरित्रों की तरह हयग्रीव भी वेदों से ही लिया गया है। हय का मतलब घोड़ा और ग्रीवा का मतलब गर्दन। जिसका शरीर मनुष्य या देवता का पर गर्दन और सिर घोड़े के हैं, वही हयग्रीव है।

भागवत की एक कथा के अनुसार ब्रह्मा प्रलयकाल शुरु होने पर नींद में जा रहे थे, तो उनके मुंह से जो वेद निकले, उन्हें हयग्रीव राक्षस ने चुरा लिया, जिसे विष्णु ने मछली का रूप लेकर मारा। उन्होंने उससे वेद लेकर ब्रह्मा को लौटा दिए, जो प्रलय के बाद जाग गए थे।

अग्नि पुराण में भी लगभग ऐसा ही आता है कि जब प्रलय के समय विश्व राख बन गया था, तब हयग्रीव दानव वेदों को नष्ट करने लग गया, पर विष्णु ने मछली का रूप लेकर उसे मार दिया।

मत्स्य पुराण में यह आता है कि जब प्रलय से विश्व जल गया था, तब विष्णु ने हयग्रीव का रूप लेकर वेदों को बचाया था।

भागवत की ही एक कथा में आता है कि हयग्रीव बने विष्णु ने दानव मधु और कैटभ को मारकर वेदों को उनसे प्राप्त किया था।

देवीपुराण के अनुसार हयग्रीव राक्षस को देवी से वर मिला कि वह हयग्रीव के द्वारा ही मारा जाएगा, किसी अन्य के द्वारा नहीं। इसलिए विष्णु को उसे मारने के लिए हयग्रीव अवतार में आना पड़ता है।

स्कंद पुराण के अनुसार देवताओं ने यज्ञ शुरु किया और उन्होंने विष्णु का पता लगाया तो वह एक धनुष के साथ कहीं समुद्र के बीच द्वीप आदि पर साधना कर रहे थे। उन्होंने विष्णु को उठाया जिससे धनुष की डोरी का एक सिरा टूटकर विष्णु की गर्दन को काट

गया, क्योंकि उसे चींटियों ने खाकर कच्चा किया हुआ था। विश्वकर्मा ने फिर उनको घोड़े का सिर लगा दिया। विष्णु ने खुश होकर उन्हें वेद लाकर दिए जिससे यज्ञ पूर्ण हुआ। फिर दीमकों ने और विश्वकर्मा ने भी यज्ञ में अपना हिस्सा मांगा।

मतलब हयग्रीव कहीं न कहीं तीनों रूपों में है, कहीं दिव्य रूप में, कहीं राक्षसी रूप में तो कहीं एकसाथ दोनों के युग्म रूप में। भागवत पुराण में उसके दोनों रूप हैं, पर हरेक रूप अलग अलग कथाओं में है, दोनों एकसाथ एक ही कथा में नहीं, क्योंकि इस पुराण में विष्णु मुख्य हैं। पर देवीभागवत पुराण में दोनों रूप एक ही कथा में दिखाए गए हैं, क्योंकि उसमें देवी मुख्य है, विष्णु नहीं।

भगवान हयग्रीव की वैदिक मिथक कथा का अध्यात्मवैज्ञानिक विश्लेषण

वैसे मूल संस्कृत में पुराण पढ़कर ही स्थिति ज्यादा स्पष्ट होती है, पर फिर भी कोशिश तो ऐसे भी कर सकते हैं। इतने सारे पुराण तो लाइब्रेरी में ही इकट्ठे मिल सकते हैं। ऑनलाइन भी उपलब्ध नहीं मिले मुझे। घर पर एक शिवपुराण पड़ा है, जिसमें विशेषज्ञता प्राप्त करने को मन करता है, क्योंकि यह मुझे सर्वाधिक प्रिय, सरल व वैज्ञानिक लगता है। हम वैसे भी पार्ट टाइम या अंशकालिक या हॉबी शोधार्थी ही हैं, पूर्णकालिक नहीं। इसलिए शिवपुराण तक ही अपने को सीमित रखना चाहते हैं। वैसे भी सभी पुराणों की कथाओं की थीम एक ही होती है, जो मुख्यतः योग ही है, सिर्फ कथाएं बदलती हैं। हयग्रीव, मत्स्य आदि की अन्य पुराणों की कथाएं तो कई बार प्रसंगवश चल पड़ती हैं। कागज पर छपे शिवपुराण में भी कई बार यह दिक्कत आ जाती है कि कुछ भी ढूंढने में समय अधिक लगता है, जबकि ऑनलाइन सर्च तो पलक झपकते ही हो जाती है।संस्कृतबुक्सऑनलाइनडॉटकॉम के नाम से एक साइट मिली पर उसमें जो पीडीएफ बुक्स हैं वे ऐसी हैं कि उनमें कुछ भी सर्च नहीं होता। फिर वैज्ञानिक शोध कैसे होगा। ऐसी सिंगल पीडीएफ की जरूरत है जिसमें कम से कम सारे 18 पुराण शामिल हों, और साथ में सर्च फंक्शन भी हो। अगर मिले तो कृपया बताएं। अगर तो सारे वेद, पुराण, उपनिषद और अन्य सारा संस्कृत साहित्य एक ही पीडीएफ में हो, तब तो महान शोध हो सकता है। मुझे लगता है कि आज की ऑनलाइन संचार सुविधाओं का सदुपयोग इसी में है कि प्राचीन सनातन संस्कृति को पढ़ा जाए और समझा जाए। तकनीक आज की, और संस्कृति पुरानी, यही सर्वोत्तम गठबंधन है। आज की संस्कृति ऐसी है, जिसमें तकनीक के अतिरिक्त ज्यादा कुछ नहीं है। आध्यात्मिक जागृति और मुक्ति, जो मनुष्यमात्र का चरम लक्ष्य है, जिसके लिए पुरानी विशेषकर सनातन संस्कृति पूरी तरह समर्पित रहती थी, उसका आज की संस्कृति में नामोनिशान भी नजर नहीं आता।

प्रलयकाल मतलब जब आदमी के मनरूपी ब्रह्मा का सारा ज्ञानविज्ञान मूलाधार के अंधेरे में डूबा हुआ था, मतलब ब्रह्मा सो गए थे। कई लोग बोलेंगे कि आदमी और उसके अभिव्यक्त मन की उमर तो सौ साल होती है, फिर ब्रह्मा की आयु कई युगों लंबी क्यों बताई जाती है। यह इसलिए क्योंकि मन शरीर से बहुत आगे जा सकता है। जब जीव विकसित होकर आदमी बनता है, तब तक ब्रह्मांड बनने के बाद करोड़ों अरबों साल बीत चुके होते हैं। इसलिए आदमी के मन में उस पूरे समय का प्रभाव जमा होता है, ऐसे भी क्योंकि वह उतना सारा कुछ सोच सकता है और क्रमिक विकास के दौरान डीएनए के जरिए भी। जितना बड़ा दिन होता w, उतनी ही बड़ी रात होती है। जितने समय आदमी जाग कर काम करता है, सोता भी उतने ही समय के लिए है। मतलब कि जितने समय वह ब्रह्मा के रूप में जीवित रहा, मरने के बाद भी वह उतने ही समय उस स्थिति में रहेगा, जो ब्रह्मा की रात और नींद होगी।

घोड़े के शरीर की एक अनौखी विशेषता है कि उसकी पीठ पर केंद्रीय रेखा में ठीक सुषुम्ना नाड़ी के रास्ते के ऊपर विशेष और बड़े बाल होते हैं। गर्दन और सिर में तो ये बड़े सुंदर और आकार में काफी बड़े होते हैं, जिससे घोड़े की झालर जैसी मेन बनती है। इसीलिए हयग्रीव अवतार में सिर्फ घोड़े की गर्दन और सिर लिए गए हैं, बाकि शरीर तो मनुष्य का ही अच्छा है, क्योंकि वही ठीक ढंग से योग कर सकता है। इसका मतलब है कि एक योगी की आकृति हयग्रीव जैसी है। इसी शरीर से शक्ति मूलाधार से सुषुम्ना से होते हुए मस्तिष्क स्थित सहस्रार को चढ़ती है। मस्तिष्क की यही शक्ति सारे ज्ञानविज्ञान का आधार है। स्वाभाविक है कि जिस शरीर से शक्ति ऊपर चढ़ती है, उसी से नीचे भी उतरती है। जिस सीढ़ी से आदमी घर की छत पर चढ़ता है, उतरता भी उसी से है। जब मरते समय आदमी के मस्तिष्क की शक्ति फ्रंट चेनल से होते हुए मूलाधार को नीचे उतरती है, तब कहते हैं कि ब्रह्मा नींद में जा रहा था, और उसी समय उसके मुख से वेद बाहर निकले, क्योंकि फ्रंट चैनल मुख से होकर ही नीचे गुजरता है। उन वेदों को लेकर हयग्रीव दानव समुद्र में छिप गया। जब उस व्यक्ति का पुनर्जन्म होता है, और उसे अपने मस्तिष्क में शक्ति और चेतना का आभास होता है, क्योंकि फिर शक्ति मूलाधार से मस्तिष्क की ओर ऊपर चढ़ रही होती है। इस बात का प्रमाण है, बच्चे के मातापिता द्वारा किए जाने वाले परस्पर प्रेम प्रसंग का बहुत बढ़ना और गहरा हो जाना। उनका मस्तिष्क उनके हयग्रीव जैसे शरीर के माध्यम से मूलाधार से शक्ति प्राप्त कर रहा होता है। वही शक्ति अत्यधिक निकटता और प्रेम के कारण उनके बच्चे को भी संप्रेषित हो रही होती है, जिससे वह तेजी से विकास करता है। मां बाप भी बच्चे के शरीर को प्यार से सहला कर और उसकी अच्छे से मालिश वगैरह कर के उसकी शक्ति को भी उसके हयग्रीव जैसे शरीर में मूलाधार से ऊपर उठाते रहते हैं। इसीको ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मा नींद से जाग गया है, और भगवान विष्णु ने हयग्रीव के रूप में अवतार लेकर दैत्य हयग्रीव को मारकर उससे वेद छुड़ा कर ब्रह्मा को वापिस कर दिए हैं।

कई स्थानों पर विष्णु की नाभि के कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति बताई है। यहां विष्णु हयग्रीव के रूप में ब्रह्मा के जागने में मदद करता है। बात एक ही है, सिर्फ शब्दों का फर्क है। उत्पत्ति उसी की कही जा सकती है जो जागा हुआ हो। सोए हुए की या ज्ञानविज्ञान से शून्य व्यक्ति की कैसी उत्पत्ति। मतलब यहां भी ब्रह्मा को विष्णु ही उत्पन्न कर रहा है। पहले मामले में समुद्र में शेषनाग पर लेटे विष्णु हैं, दूसरे में समुद्र में वेद ढूंढते विष्णु। पहले मामले में भी विष्णु अपने शरीर के विकास से ब्रह्मा को निर्मित करता है, दूसरे मामले में भी ऐसा ही होता है। परस्पर प्रेम से मां बाप के मस्तिष्क में जो चेतना का कमल खिलता है, वह भी ब्रह्मा का नींद से जागना ही है। इसे ही ब्रह्मा का जन्म भी कह सकते हैं, क्योंकि सोए हुए का कैसा जन्म। जैसे उनके मस्तिष्क में ब्रह्मा का जन्म होता है, वैसे ही उनके गर्भ में पलने वाले संभावित बच्चे में भी हो सकता है। मूलाधार में सोई हुई कुंडलिनी भी एक प्रकार से प्रलयार्णव में सोया हुआ ब्रह्मा ही है। जब हयग्रीव रूपी विष्णु या योगी उसे ऊपर उठाता है, तो वह सहस्रार में जागने लगता है, और सृष्टिनिर्माण की प्रक्रिया शुरु करता है। पूर्ण जागृति अर्थात कुंडलिनी जागरण को सृष्टि निर्माण की पूर्णता समझना चाहिए। यह तो ब्रह्मा के सोने और जागने की शास्त्रों की बात रही। पर शास्त्रों में यह भी आता है कि ब्रह्मा सृष्टि पूरी होने पर खुद ही मुक्त हो जाता है। आदमी भी तो ऐसा ही होता है। जिसको जागृति रूपी पूर्णता नहीं मिली, वह सोकर या मरकर फिर जागता या जन्म लेता है, पर जिसको मिल गई, वह अपना जीवन पूरा होने पर मुक्त हो जाता है।

अब थोड़ा इसको और समझते हैं कि दैत्य हयग्रीव वेदों को चुराकर ब्रह्मा को केसे चेतनाशून्य बना कर रखता है। यह तो पता ही है कि मस्तिष्क की ऊर्जा फ्रंट चैनल से होकर मूलाधार को जाती है। फ्रंट चैनल को दैत्य हयग्रीव मान लो, और बैक चैनल को भगवान हयग्रीव, क्योंकि दोनों में केंद्रीय रेखा से होकर ही ऊर्जा का सर्वाधिक गमन होता है। अगर भगवान हयग्रीव नहीं होगा, तो वेदरूपी सारी ऊर्जा मूलाधार रूपी समुद्र में ही इकट्ठी दबी रह जाएगी।

शक्ति का ऐसा ऊपर नीचे का गमन सभी में होता है, पर क्योंकि योगियों को ही इसका साक्षात व स्पष्ट अनुभव होता है, इसीलिए योग की चीजों को इससे जोड़ा गया है।

मछली, शेषनाग, हयग्रीव आदि के रूप आपस में दार्शनिक रूप से जुड़े हुए हैं, इसलिए कुछ भी बोल सकते हैं। प्रलय के समय कहीं विश्व को जली हुई राख की ढेरी, तो कहीं समुद्र में निमग्न बताया जाता है। दोनों ही मूलाधार के अंधेरे और अभाव को इंगित करते हैं।

एक कथा के अनुसार हयग्रीव ने मारा, और मछली ने बचाया, इसको समझते हैं। यह तो मुझे तांत्रिक मामला लगता है मत्स्य पुराण की तरह। कुंडलिनी चित्र रूपी छोटी सी संवेदनात्मक मछली कैसे विशाल मत्स्य बन कर कर्मबंधन में फंसे जीवों को सृष्टिसुख और जागृति प्रदान करती है।

मुझे लगता है कि मधु कैटभ इड़ा पिंगला के प्रतीक हैं। ये नाड़ियां शरीर के बाएं और दाएं भाग को कवर करती हैं। इससे शरीर बहिर्मुख सा रहता है, जिससे आदमी अध्यात्म से दूर सा हो जाता है। रहती तो उर्जा शरीर में ही, और शरीर भी स्वस्थ रहता है, पर यह केंद्रीय लूप या छल्ले में नहीं घूम पाती, जिससे सहस्रार में ऊर्जा की कमी हो जाती है। सहस्रार ही अध्यात्म का सर्वप्रमुख चक्र है। सहस्रार में जो ज्ञान है, वह संपूर्ण सृष्टि रूप ही है, क्योंकि इसमें संसार का ज्ञानविज्ञान अद्वैत के साथ होता है, और सृष्टि भी अद्वैतरूप ही है। हयग्रीव के ध्यान से ऊर्जा केंद्रीय छल्ले में आ जाती है, मतलब मधु कैटभ मर जाते हैं, और सृष्टि का सही वर्णन करने वाले वेद क्रियाशील हो जाते हैं। वैसे भी जब दिमाग का कोई फालतु विचार परेशान कर रहा हो तो हयग्रीव के ध्यान से वह गायब होकर उसकी जगह कुंडलिनी चित्र आ जाता है। घोड़ा दिमाग की कम और दिल की ज्यादा सुनता है। गधा तो एक कदम बढ़ कर लगता इस मामले में, तभी तो वह माता शीतला देवी और कालरात्रि देवी की सवारी है। हो सकता है, दोनों देवियों के नाम या चेहरे विशेष पर ज्यादा ध्यान न जाए, इसीलिए गधे को इनके साथ रखा गया है। इसका मतलब है कि अगर अगर चेहरे के रूप सौंदर्य आदि की चिंता हो रही हो, तो हयग्रीव का ध्यान करने से वह खत्म और कुंडलिनी प्रकट हो जाती है।

धनुष का लकड़ी का लहरदार आधार आदमी की लहरदार रीढ़ की हड्डी का बैक चेनल है, और उसमें बंधी डोरी शरीर के आगे का सीधा फ्रंट चैनल है। इसीको ऐसा कहा है कि विष्णु धनुष के साथ साधना कर रहे थे, क्योंकि योग इन्हीं दो मुख्य चैनलों की सहायता से होता है। दिमाग के फालतु पर चिपकू विचारों के कारण उसकी ऊर्जा मस्तिष्क से नीचे नहीं जा रही थी। इन्हीं विचारों को दीमक कहा है, क्योंकि ये आदमी की उम्र को लकड़ी की तरह खाते रहते हैं। इस से उनका फ्रंट चैनल पहले से ही कमजोर था, जब उन्हें देवताओं ने योग से उठाया तो वह बिल्कुल ही टूट गया, मतलब गर्दन कट गई, क्योंकि चैनल को ही गर्दन कहा है। फिर घोड़े का सिर इसीलिए लगाया ताकि फ्रंट चैनल सबसे अच्छा चले। इससे भगवान हयग्रीव बने। इससे जब ऊर्जा लूप पूर्ण हो गया, तो स्वाभाविक है कि सहस्रार में सृष्टिरूपी वेदों की पुनर्स्थापना हो गई। इससे देवताओं का यज्ञ पूर्ण हुआ। यज्ञ होता ही सृष्टि के कल्याण के लिए है। अद्वैत के साथ दुनियादारी, इससे बढ़कर सृष्टि का क्या कल्याण हो सकता है। विष्णु को यज्ञपति इसीलिए कहते हैं क्योंकि वही मनुष्य रूप में सही वर्ताव से यज्ञ को पूर्ण कर सकता है। अन्य देवता तो गुलाम नौकरों की तरह हैं, जो जीवात्मा रूपी विष्णु के शरीर मतलब यज्ञस्थली के सेवाकार्य में लगे रहते हैं। जीवन व्यवहार का अंतिम फैंसला तो जीवात्मा ने ही लेना होता

है। इसीलिए यज्ञ के फल का सबसे बड़ा भाग विष्णु को ही मिलता है। हयग्रीव ध्यान से मणिपुर चक्र पर अच्छा ध्यान लगता है, और मणिपुर चक्र को यज्ञस्थल भी कहा जाता है, जहां भोजन रूपी आहुति हर समय शरीरस्थ सभी देवताओं की तृप्ति के लिए जठराग्नि रूपी अग्नि देवता के माध्यम से दी जाती रहती है, पर यज्ञ तो यज्ञपुरुष विष्णु, राम या आदर्श मनुष्य की भागीदारी से ही पूर्ण होता है।

कुंडलिनी शक्ति ही गंगा नदी जल के रूप में गूलर के वृक्ष की टहनी से निकली होगी

शिवपुराण में गौतम ऋषि और उनकी पत्नि अहल्या की एक मिथक कथा आती है। उन्होंने दस हजार वर्षों तक दक्षिण दिशा में ब्रह्मगिरि पर्वत पर तप किया।100 वर्षों तक वहां पर अनावृष्टि पड़ी। एक भी हरा पत्ता नहीं दिखता था। फिर प्राणियों को जिलाने वाला पानी कहां मिलता। सारे मुनि, मनुष्य, पशुपक्षी दसों दिशाओं को भाग गए। कुछ ऋषि प्राणायाम व ध्यान करके उस भयंकर काल को बिताने लगे। गौतम ने भी प्राणायाम के साथ 6 माह तक तप किया। इससे उनके सामने वरुण देव प्रकट हुए और उन्होंने उनसे वर्षा का वर मांगा। वरुण ने कहा कि वे दैव की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते। फिर गौतम ने उनसे अक्षय, दिव्य तथा नित्य फल प्रदान करने वाला जल मांगा। वरुण ने गड्ढा खोदने को कहा। गौतम ने एक हाथ का गड्ढा खोदा। वरुण ने उसे दिव्य जल से भर दिया। वरुण ने कहा कि इस स्थान पर किया गया कोई भी धार्मिक और उत्तम कर्म अक्षय होगा। गौतम ने उस दुर्लभ जल से नित्य नैमित्तिक कर्म संपन्न किए। उन्होंने वहां पर हवन के लिए विविध धान्य बोवाए। वहां विविध फलफूल वाले वृक्ष पैदा हो गए। ऐसा देखसुन वहां अन्य हजारों ऋषि आ गए और सपरिवार गृहस्थ धर्म से रहने लगे। एकदिन जल लेने आई ऋषिपत्नियों ने जल लेने आए गौतमशिष्यों को जल लेने से यह कहकर रोका कि पहले वे जल ग्रहण करेंगी। शिष्यों ने जब गौतमपत्नी अहिल्या से शिकायत की तो वे खुद उनके साथ जल लेने चली गईं और जल लाकर ऋषि को दिया, जिससे उन्होंने अपना नित्य कर्म संपन्न किया। उन ऋषिपत्नियोंं ने गौतमपत्नी को फटकारा और घर लौटकर अपने पतियों से उल्टी सीधी शिकायत की। ऋषियों ने क्रुद्ध होकर गणेश की तपस्या की और उनके द्वारा गौतम ऋषि का नुकसान करवाने का वर जबरदस्ती ले लिया। मजबूर होकर गणेश एक बहुत कमजोर गाय बनकर गौतम का उगाया साग खाने लगे। गौतम के तिनकों से हटाते ही वह मर गई। उससे सभी ऋषि खुश होकर ऋषि को गौहत्यारा कहकर कोसने लगे। उन्होंने गौतम को अपने इलाके से निकल जाने का आदेश दिया और उन्हें पत्थरों से मारने लगे। साथ में यह भी कहा कि जबतक उन्हें गौहत्या का पाप लगा है, तब तक वे कोई धार्मिक कार्य नहीं कर सकते। जब गौतम ने माफी मांगी तब ऋषियों ने उन्हें यह प्रायश्चित करने को कहा कि वह अपने गौहत्या के पाप का डंका बजाते हुए तीन बार पृथ्वी का चक्कर लगाए। फिर वहां वापिस आकर मासव्रत को करे और उसके बाद उस ब्रह्मगिरि पर्वत की परिक्रमा करे, और फिर गंगाजल के सौ घड़ों से स्नान करके पुनः पार्थिवपूजन करे। या इसके बदले में उन्हें वहीं पर गंगा को लाकर उसमें स्नान करने, फिर शिव के एक करोड़ पार्थिव लिंग बनाने और उनकी पूजा करने, फिर 11 बार ब्रह्मगिरि की परिक्रमा करने, और फिर गंगाजल के सौ घड़ों से स्नान करके पुनः पार्थिवपूजन करने को कहा। गौतम और अहल्या ने वह

दूसरा तरीका अपनाया, और उनके शिष्य उस दौरान उनकी सेवा करते रहे। फिर प्रसन्न होकर शिवपार्वती प्रकट हुए और वर मांगने को कहा तो गौतम ने उनसे अपने पाप खत्म करने का वर मांगा। शिव ने कहा कि उनका भक्त कभी पापी नहीं रह सकता। साथ में गौतम को उन कुटिल ऋषियों की सारी करतूत बताई और पूछा कि वे उन्हें क्या दंड दें। गौतम ने उन्हें यह कहकर क्षमा करने को कहा कि अगर वे कुटिलता न करते तो उन्हें उनके दर्शन न होते। इससे शिव बहुत प्रसन्न हुए और फिर वर मांगने को कहा। गौतम ने यह वर मांगा कि इन ऋषियों का वचन झूठा न होए।

उसके बाद पृथ्वी तथा स्वर्ग के सारभूत जिस जल को निकालकर पूर्व में रख लिया था, और विवाहकाल में ब्रह्मा द्वारा दिया गया जो कुछ शेष जल बचा था, उसे शिव ने उन मुनि को दिया। वह गंगाजल स्त्री के रूप में प्रकट हुआ। गौतम ने उन्हें प्रणाम करके उनसे अपने को पवित्र करने की याचना की। शिव ने भी गंगा से निवेदन किया। फिर गंगा ने गौतम के परिवार को पवित्र करके अपनी वापसी बारे बताया। गंगा को रोकते हुए शिव ने उन्हें वैवस्वत मन्वंतर के अठाईसवें कलियुग तक वहीं निवास करने को कहा। फिर गंगा ने कहा कि वह तभी धरती पर निवास करेगी अगर यहां उसका माहात्म्य सबसे ज्यादा रहेगा। साथ में उसने शिव से अपने गणों व पार्वती के सहित अपने निकट निवास करने का निवेदन किया। इस पर शिव बोले कि वह उससे पृथक नहीं हैं, क्योंकि वह उनकी शक्ति हैं, फिर भी वे वहां निवास करेंगे। तभी देवता सहित सभी दिव्य आत्माएं वहां आए, जो गौतम, शिव और गंगा की जयकार करने लगे। शिव ने प्रसन्न होकर देवों से वर मांगने को कहा। तो देवों ने शिव और गंगा से वहीं निवास करने का निवेदन किया। तब गंगा ने देवों से पूछा कि वे कैसे उसकी विशिष्टता बनाए रखेंगे। तब देवों ने कहा कि जब बृहस्पति सिंह राशि पर रहेंगे, तब वे सभी लोग उसके समीप रहेंगे। तथा 11 वर्षों तक लोगों के पाप धोने से जब वे मलिन हो जाएंगे, तो उसे धोने के लिए उनके पास आएंगे। वहां पर वह गंगा गौतमी नाम से तथा शिवलिंग त्र्यंबक नाम से प्रसिद्ध हुए। उपरोक्त मुहूर्त के दौरान देवों के साथ सभी दिव्य आत्माएं वहां आते हैं, और जब तक वहां रहते हैं, तब तक फल नहीं मिलता, मतलब वहां से वापिस जाने पर ही फल मिलता है।

गंगा ब्रह्मगिरि पर्वत से प्रकट हुईं थीं। जब गूलर वृक्ष की शाखा से उसकी धारा निकली, तब गौतम, उनके शिष्यों, और अन्य सभी आए हुए लोगों ने उसमें स्नान किया। तभी से उस क्षेत्र का नाम गंगाद्वार पड़ा। उसका दर्शन करने से सभी पाप नष्ट होते हैं। जब गौतम का बुरा करने वाले वे ऋषि भी नहाने पहुंचे, तब गंगा अंतर्धान हो गई। जब गौतम ने गंगा से प्रकट होने के लिए विनती की तो गंगा ने कहा कि वे कपटी ऋषि पहले आपकी आज्ञा से इस पर्वत की 101 बार परिक्रमा कर के प्रायश्चित करे, तभी ये उसके दर्शन कर सकते हैं। जब उन्होंने यह कर लिया, तब उनके लिए गौतम के द्वारा नामित गंगाद्वार के नीचे

वाले स्थान कुशावर्त में गंगा फिर प्रकट हुईं। यहां नहाने वाला सभी पापों को त्यागकर दुर्लभ विज्ञान प्राप्त कर शीघ्र मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

उपर्युक्त मिथक का स्पष्टीकरण

होता क्या है कि पुराणों की कथाओं से अनासक्ति के साथ दुनियादारी की आदत पड़ती है। क्योंकि ये सच भी लगती हैं, और बनावटी भी। इसलिए इनके प्रति अनासक्त बुद्धि बनी रहती है। इसीलिए इनमें आनंद होता है। कोई बोलेगा कि ऐसी तो हैरी पॉटर की कहानियां भी हैं। पर वे मुख्य उद्देष्य से रहित हैं। मुख्य उद्देष्य है कुंडलिनी जागरण। पुराणों की मिथक कथाएं योग, कुंडलिनी और जागृति के वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित होती हैं, इसलिए इनका अध्ययन करने वाले को अनजाने में ही इनकी तरफ ले जाती हैं। ऋषि गौतम की ये कथा मुझे मिश्रित आध्यात्मिक व भौतिक लगती है। ऐसा नहीं है कि पुराने लोगों में समझ कम थी, इसलिए एक ही साधारण योग पर अनगिनत शास्त्र बना दिए। बल्कि ऐसा इसलिए है क्योंकि योग से आदमी का उम्र भर और हरपल संपर्क बना रहना चाहिए। एक ही बात को बारबार पढ़कर आदमी ऊब सकता है, इसलिए योग को विविध रूपाकार वाली अनगिनत कथाओं और गतिविधियों में ढाला गया। उदाहरण के लिए शिव रूपी ध्यान चित्र तो सुषुम्ना में गुजर रही शक्ति के निकट खुद ही सैद्धांतिक रूप में बना रहता है। इसी को कहा है कि शिव ने गंगा को उनके निकट रहने का वचन दिया। संभवतः कुंडलिनी शक्ति ध्यानचित्र को इसलिए लगती है, क्योंकि यह यौन आधारित है, और सब जानते हैं कि यौन संबंधी मामले अतीव घनिष्ट संबंधी या प्रेमी के सामने ही उजागर किए जाते हैं। सबसे नजदीकी व घनिष्ट प्रेमी मानसिक ध्यानचित्र ही है। भौतिक वस्तु या व्यक्ति से तो लज्जा महसूस होती है, साथ में अपने ऊपर उनके व्यक्तित्व की छाप भी पड़ सकती है। पर गुरु या देवता पृथक व्यक्तित्व से रहित या परमात्मा रूप ही होते हैं, इसलिए वे आदमी के अपने व्यक्तित्व में बाधा नहीं डालते, अपितु उसे और ज्यादा सुधारने में अप्रत्यक्ष या मूक मदद ही करते हैं। इसीलिए अधिकांशतः उन्हें ही ध्यान चित्र बनाया जाता है। वैसे तो कोई भी चीज हो सकती है, क्योंकि हरेक शुद्ध मनसिक चीज पवित्र है, अपवित्रता तो भौतिकता से आती है। इसीलिए ऐसे चित्र को कुंडलिनी चित्र भी कह सकते हैं। सुषुम्ना से होकर शक्ति सीधी सहस्रार को जाती हैं, जहां अद्वैतभाव का साथी एकाकी कुंडलिनी चित्र ही होता है। इसीलिए इन कुंडलिनी आधारित कथाओं को शास्त्रीय कथाएं या पुस्तकें कहते हैं। संगीत तो कुछ भी हो सकता है, पर जो बहुत सोचविचार के और प्रत्यक्ष अनुभव से बना है और आदमी को उसके चरम लक्ष्य तक ले जाने में मदद करे, वही शास्त्रीय संगीत है। इसी प्रकार शास्त्रीय नृत्य, खेल आदि कुछ भी सांसारिक गतिविधि हो सकती है।

वर्षा वह है जिसमें ज्ञानरूपी या शक्तिरूपी जल की भरमार होए। ऐसा तो कोई देवता नहीं कर सकते, क्योंकि जब चारों ओर भौतिकता और दुष्टता का बोलबाला हो, तब

देवता उसमें क्या कर सकते हैं, क्योंकि लोगों की सोच कोई भी जबरदस्ती नहीं बदल सकता। हां, देवता दर्शन देकर अपने भक्त को कुछ ऐसा करने की सलाह दे सकता है, जिससे बाहरी माहौल का बुरा असर उस पर न पड़े। इसलिए वरुण देव गौतम मुनि को एक हाथ का गड्ढा खोदने की सलाह देते हैं। यह मूलाधार को क्रियाशील करना ही है, जिसमें सोई हुई कुंडलिनी शक्ति रूपी जल दबा होता है। वही लुप्त सा जल इसमें भर जाता है। वैसे वे पहले भी प्राणायाम व ध्यान से गुजारा चला रहे थे, पर यह जागृति रूपी वर्षा के सामने नाकाफी था। सौ वर्ष का अकाल बताना आम बात है पुराणों में। शास्त्रों में सी वर्ष ही आदमी की उम्र कही गई है। सौ वर्ष तक जागृति न होना ही सौ वर्ष का अकाल लगता है मुझे, जिससे जीवों की मृत्यु बताई जाती है। ऐसा इसलिए क्योंकि सभी जीवों सहित सारी सृष्टि आदमी के दिमाग में ही होती है। दिमाग मर गया मतलब सभी मर गए। गहरे गड्ढों में तो भूमिगत जल भर भी जाता है, पर एक हाथ की लंबाई मतलब 10 या 12 इंच के गड्ढे में तो कभी खुद से पानी भरते नहीं दिखा। अगर ऐसा होता तो उसके लिए तप करके वरदान क्यों मांगते, पहले ही खोद देते। वैसे भी साधारण जल अक्षय फल देने वाला और दिव्य भी नहीं होता। इसका मुझे यह मतलब भी लगता है कि अंधेरे गड्ढे में मतलब एकांत में, सुखसुविधाओ और सांसारिक प्रवृत्तियों से दूर रहकर साधना करना, जिससे दुनिया में खर्च होने से बची हुई ऊर्जा, जो अंधेरे में कैद रहती है, वह सारी कुंडलिनी चित्र को चमकाने में खर्च होए, और साथ में उसे सम्भोगतंत्र का अतिरिक्त बूस्टर बल भी मिले जिससे वह तेजी से जागृत हो जाए, दुनियादारी के झंझट दुबारा शुरु होने से पहले ही। कई बार क्या होता है कि दुनियादारी से दूर रहने का थोड़े से ही समय का मौका मिलता है। उस दौरान अगर कछुआ या साधारण चाल से साधना की गई, तो जागृति नहीं मिल पाती। गौतम ऋषि को देशनिकाला देकर ऋषियों ने अप्रत्यक्ष रूप से उनका भला ही किया था, तभी वे एकांत में तीव्र साधना से कुंडलिनी को जागृत कर सके। उस सीमित समय में न कर पाते तो नए देश में उनकी नई दुनिया बन जाती और वही पुरानी कहानी शुरु हो जाती। क्योंकि नए देश में घुलनेमिलने से पूर्व ही उन्होंने जागृति प्राप्त कर ली, इसलिए उनकी उपलब्धि देखकर पुराने देशवासियों ने उन्हें वापिस अपने बीच बुला लिया। ये कथाएं ऊपर से देखने पर अजीब लगती हैं, पर गहराई से देखने पर परम व्यावहारिक व हितकारी नजर आती हैं। ऐसा आम आदमी के साथ अक्सर होता है। जो आदमी असल में आध्यात्मिक रूप से कर्म करता हुआ उसके माध्यम से आध्यात्मिक संदेश देता रहता है, उससे दुनिया वाले तो क्या, परिवार वाले व रिश्ते नाती भी जलते हैं, और उससे लड़ाई का बहाना ढूंढते रहते हैं। असल में इसलिए कह रहा हूं क्योंकि नकली, ढोंगी और पाखंडी किस्म के धार्मिक लोगों की जयजयकार होती रहती है। फिर उसे अपने बीच से भगाकर ही उन्हें चैन महसूस होता है। हालांकि वे धोखे में होते हैं, क्योंकि दिया हटने से वे अंधेरे में जा रहे होते हैं। जब दूर एकांत में वह जागृत हो जाता है, तब उसके पुराने विरोधी लोग तो जैसे गायब ही हो जाते हैं, पर दिल से उसके लिए नरमी रखने वाले कुछ पछताते दिखते हैं। पर जागृत व्यक्ति के मन में उन विरोधियों के प्रति कोई नाराजगी नहीं होती, क्योंकि उन्हीं की अप्रत्यक्ष

वजह से उसे जागृति मिली होती है। ऐसा बहुतों के साथ होता है क्योंकि यही दुनियावी सिद्धांत है, इसीलिए पुराणों में लिखा गया है। केवल खाली कथा लिखने से क्या लाभ।

मुझे लगता है कि उस समय गौतम नाम के या परिवर्तित नाम वाले व्यक्ति ने मूलाधार से दुनियावी सुखों समेत जागृति को प्राप्त करने की खोज की होगी। इन खोजों को ऐसे ही अप्रत्यक्ष या मिथक कथाओं के रूप में वर्णित किया गया होगा, ताकि लोग इन्हें गलत न समझें या इनका दुरुपयोग न करें। ऐसे ऋषि वैज्ञानिक ही होते थे, सत्य की खोज करने वाले अध्यात्मवैज्ञानिक। उनसे सीखकर अन्य ऋषियों ने भी ऐसा ही किया मतलब सभी को जल मिल गया। पहले वे जल मतलब ज्ञान या शक्ति की खोज में इधर उधर भाग गए। वैसे भी पुराने जमाने में लोग ज्ञान की खोज में दूर दूर तक जाया करते थे। आगे की कहानी कि जल पर झगड़ा हुआ आदि आदि, यह लगता है कि सामान्य भौतिक घटनाओं को जोड़ा गया है कथा को रोचक बनाने के लिए, जिसका अध्यात्म से ज्यादा संबंध नहीं। हो सकता है कि इनका भी कोई गूढ़ रहस्य हो। फिर शिव प्रकट हुए। गौतम ने शिव से अपने दुश्मनों को क्षमा करने का निवेदन किया। यह स्वाभाविक है कि जब आदमी दुनिया के द्वारा दुत्कारा और सताया जाता है, तभी वह एकांत में ध्यान व तप कर पाता है। शिव के ध्यान से उनकी जागृति तो हो गई, पर अब उस जागृति के प्रभाव को जीवनभर निरंतर बना के रखना था। यह ताउम्र सुषुम्ना की क्रियाशीलता से ही संभव हो सकता था। इसी को गंगा का अवतरण और योग आदि के द्वारा इसे स्थायी तौर पर बने रहना बताया गया है। क्षणिक जागृति तो बिना सुषुम्ना के अनुभव से भी हो जाती है, पर दैनिक क्रियाकलाप में सुषुम्ना का अपना महत्त्व है, क्योंकि यह निरंतर शक्ति की आपूर्ति करती रहती है। इसी शक्ति से पाप नष्ट होते रहते हैं।

मुझे लगता है कि पौराणिक कथाओं पर संदेह करना चाहिए। इससे आदमी अपना दिमाग हर तरफ दौड़ाता है कि इसका मतलब क्या हो सकता है। इससे उसके आगे अनजाने में ही रहस्यों के द्वार खुलते हैं। अगर इन कथाओं को अक्षरशः सत्य मान लिया, तब आदमी अंधविश्वासी सा, अवैज्ञानिक सा, और मूर्ख सा बन जाता है। मतलब इनको सत्य तो मानना चाहिए पर छुपे हुए रहस्य के रूप में, साधारण भौतिक तरीके में अक्षरशः नहीं। ऐसी असामान्य मिथकीय कथाओं से हमारा दायां मास्तिष्क सक्रिय हो जाता है, जो अधिकतर समय सुप्त सा रहता है। जागृति के लिए मस्तिष्क के दोनों भाग संतुलित रूप से सक्रिय रहने चाहिए। यह बच्चा भी समझ सकता है कि गंगा नदी पेड़ की एक टहनी से बाहर नहीं निकल सकती। इसी तरह भौतिक जल की कमी प्राणायाम व ध्यान से पूरी नहीं हो सकती। हां, कुछ हद तक शक्ति की कमी की पूर्ति जरूर हो सकती है। फिर इसे यदि रहस्यमयी उपमा के तौर पर समझें तो पहाड़ मतलब मस्तिष्क से दुनियावी उपलब्धियों के रूप में शक्ति मतलब गंगा फ्रंट चैनल से नीचे आती हुई गूलर वृक्ष मतलब मूलाधार चक्र की एक शाखा मतलब सुषुम्ना या ब्रह्म नामक नाड़ी से गंगाद्वार मतलब सहस्रार में निकली, जिसमें गौतम ऋषि मतलब जीवात्मा के स्नान करने से सारे

पाप नष्ट हो गए। उनकी खोज को उनके शिष्यों ने भी अपनाया। उनके परिवारजनों को लाभ उनकी संगति से मिला। गूलर का वृक्ष एक दैवीय पौधा है, जिस पर शुक्र का आधिपत्य माना गया है, जो प्रेम, सौंदर्य, आकर्षण, यौनसुख, प्रेमविवाह, धनदौलत आदि का प्रतिनिधि ग्रह है। इससे खुद ही समझा जा सकता है कि गूलर की शाखा किसे कहा गया होगा। कुछ तांत्रिक भी लगता है। मुझे तो यह भी लगता है कि प्रेमी प्रेमिका को एकदूसरे के मूलाधार से शक्ति मिलती है। इसीलिए गंगा को स्त्री का रूप दिया गया लगता है। वैसे भी शक्ति को स्त्रीलिंग ही समझा जाता है। अब जब कुटिल ऋषि भी उनकी नकल करने लगे, तो उनके हाथ कुछ नहीं लगा, क्योंकि सुषुम्ना की क्रियाशीलता के लिए बच्चे की तरह नादान और भोले बनना पड़ता है, जो कुटिल आदमी बन नहीं सकते। प्रेम और कुटिलता एक दुसरे के विरुद्ध हैं। स्वाधिष्ठान चक्र का तत्त्व जल है। जल प्रेम का प्रतीक भी है। गौतम ने उन पापियों के लिए उससे नीचे के चक्र में उतरवाया। इसी को कुशावर्त कहा गया होगा। वैसे भी पापियों की चेतना नीचे वाले चक्रों पर ही अटकी होती है।

शक्ति से ही प्रजनन होता है। और उसी से नया मनुष्य बनता है, जिसमें स्वर्ग और पृथ्वी समाए हुए हैं। उस गतिविधि से जो शक्ति बची थी, वही शक्ति ब्रह्मा मतलब शरीर समेत सारी सृष्टि को बनाने वाले मन ने शिव को उनके विवाह के समय दी। उसी को शिव की प्रेरणा से ब्रह्मा रूपी मन ने सुषुम्ना में से गंगा के रूप में गुजारा। वैसे इसका वैज्ञानिक आधार भी है। अभी तक की वैज्ञानिक खोजों से ज्ञात हुआ है कि जल का निर्माण धरती पर नहीं हुआ है, बल्कि यह धूमकेतु आदि बाहरी अंतरिक्षीय पिंडों से आया है। प्राचीन लोगों को भी यह अंदेशा था क्योंकि उन्हें धरती पर कहीं पर भी जल का निर्माण होते नहीं दिखता था। एक ही जल बर्फ, भाप, बादल आदि के रूप में रूप बदलता रहता था। इसीलिए इसे ज्यादा दैवीय माना गया होगा।

पापों का बोझ सबसे ज्यादा शरीर पर पड़ता है, जो शरीर को संचालित करते हैं। शरीर व्रतों, तीर्थों, योग व अन्य आध्यात्मिक साधनाओं से उन पापों से आदमी को बचाता रहता है। शायद इन्हीं से शायद इन्हीं से कथा में 11 वर्ष लिया गया है, क्योंकि हिंदु धर्म में अधिकांश चीजें व गतिविधियां 11 किस्म की हैं। पर उन पापों की सूक्ष्म छाप शरीर के चक्रों पर जमा होती रहती है। इसीलिए चक्रों की सफाई के लिए सुषुम्ना की शक्ति की जरूरत पड़ती है।

बृहस्पति ग्रह का सिंह राशि में होना बहुत उत्तम योग है। इसमें आदमी हर क्षेत्र में चढ़दी कला में होता है। बृहस्पति का सिंह राशि में होना प्रेम और संबंध में भी प्रगाढ़ रिश्ते बनाने में मदद करता है। सिंह राशि वाले लोग अपने साथी के प्रति अधिकार की भावना रखते हैं, लेकिन उनका प्यार भी निष्ठावान और वफादार होता है। बृहस्पति का सिंह राशि में होना किसी एक योग से अधिक अनेक योगों का कारण है। बृहस्पति सबसे शुभ

ग्रह माने जाते हैं, जो धर्म, ज्ञान, भाग्य, धन, विवाह, संतान, शिक्षा, व्यवसाय, राजनीति आदि के क्षेत्र में शुभ फल देते हैं। सिंह राशि भी बृहस्पति की उच्च राशि है, जो राजसी, सूर्यमय, तेजस्वी, गर्वी, नेतृत्वपूर्ण, रचनात्मक और उदार है। इसलिए, बृहस्पति का सिंह राशि में होना इन दोनों के गुणों का सम्मिलन है, जो व्यक्ति को अनेक शुभ फल देता है। दरअसल ऐसे ही चहुंमुखी विकास व अनुकूलता के समय सुषुम्ना जागरण और कुंडलिनी जागरण की सर्वाधिक संभावना होती है। इसीको ऐसा कहा गया है कि देवता ऐसे योग मके समय गंगा के निकट रहेंगे। क्योंकि यह योग दुर्लभ लगता है, इसीलिए इसका 11 साल के बाद आना कहा गया है। क्योंकि कुंडलिनी जागरण के समय एकदम लाभ नहीं मिलता पर धीरे धीरे साधना के साथ वर्षों में मिलता है, जब उसका अंतःकरण काफी साफ हो जाता है।

कथा के शुरु में ऋषि गौतम और अहल्या के द्वारा दस हजार वर्षों की तपस्या करने का क्या मतलब होगा, इसका उत्तर पाठकों के लिए छोड़ता हूं।

कुंडलिनी योग जीवन का पार्श्वसंगीत है

दोस्तों, पिछली पोस्ट में शक्तिजल की बात हो रही थी। मुझे तो लगता है कि इंद्र जो बारिश करता है, वह जागृति की ही बारिश है, वही सुषुम्नाशक्ति रूपी वज्र चलाता है। इंद्र की प्रसन्नता मतलब सभी देवताओं की प्रसन्नता या अनुकूलता। यही चढ़दी कला है। मैं यह नहीं कह रहा कि भौतिक वर्षा के साथ इंद्र का संबंध नहीं है। वह भी जरूर है क्योंकि जो भीतर है, वही बाहर भी है। जैसे बारिश होने के लिए सभी देवताओं के साथ से पैदा होने वाली अनुकूल परिस्थितियां चाहिए, वैसे ही जागृति के लिए भी। पुराणों पर प्रेम और विश्वास बना रहे, तो सभी रास्ते खुद ही खुलने लगते हैं। फिर कथा में आया था कि गौतम मुनि ने वरुण देव के वरदान से अक्षय जल पाया। वरुण देवता वेदों के एक प्रमुख देवता हैं। वे जल के अधिपति देवता हैं। जलरूपी शक्ति के बिना गूढ़ आध्यात्मिक वेदों का सही ज्ञान होना संभव नहीं है। वरुणदेव सीमित जल ही दे सकते हैं। ख्वाजा भी सिंधुघाटी सभ्यता का ऐसा ही देवता था, जो समुद्र, नदियों और जल का अधिपति था। मैंने एक भूमिगत जल का पता लगाने वाले आदमी के बारे में सुना था जो काफी सटीक आकलन करता था, और ख्वाजा का सिद्ध उपासक था। वैसे आज भी कई गांवों में ख्वाजा की जलदेव के रूप में पूजा करते हैं। हो सकता है कि वेदों में गुप्त भाषा में वरुणदेव उसके प्रतीक के तौर पर कहा गया हो, जिसकी सहायता से शरीर में शक्तिजल की उपलब्धता बराकरार रहती हो, पर उसके पाठकों या व्याख्याकारों ने उसे भौतिक जल का देवता मान लिया हो। कुछ भी हो, बाहर भीतर में समानता तो है ही, इसलिए एकदूसरे को जरूर प्रभावित करते होंगे। मुझे खुद महसूस होता है कि शुद्ध जल से भरे झील, सरोवर आदि जलस्रोतों के निकट कुंडलिनी शक्ति बहुत अच्छे से घूमने लगती है, क्योंकि दोनों के स्वभाव में बहना है। दोनों में संबंध तो है ही। हिंदुओं और बौद्घों में नागदेवता को भी जल का देवता माना जाता है। कुंडलिनी शक्ति नाड़ी भी नाग की आकृति में होती है। हमारे गांव में नेउआ मतलब दिव्य नाग या सर्प और ख्वाजा दोनों को स्थानीय जल और उसके आसपास उपजी वनस्पति का अधिपति माना जाता था। जो जल के आसपास वनस्पति काटता था, उसे नेऊआ सांप के द्वारा पीछा करने का भय दिखाया जाता था, जिससे वनों का अच्छा सरंक्षण होता था। कई जगह मैंने ख्वाजा को मछली के रूप जैसी मूर्ति में भी देखा। इसका मतलब है कि वरुण, नाग और ख्वाजा आपस में जुड़े हैं और तीनों जलरूपी शक्ति के देवता हैं। यह भी मान्यता है कि ये सिर्फ़ जल ही नहीं देते, बल्कि अन्य दुनियावी समृद्धियां और सुरक्षाएं भी देते हैं। मतलब ये शक्ति के देवता ज्यादा लगते हैं।

इसी तरह इंद्र देव भी वेदों में बहुतायत में वर्णित हैं। जो देव जागृति के लिए जरूरी है, उसका ज्यादा वर्णन होगा ही। क्योंकि वेद का मूल ध्येय जागृति ही है। गुप्त तरीके से शायद इसे ही वर्षा लिखा है। जहां वर्षा है, वहीं कर्म, यज्ञ, धनधान्य और समस्त वैभव हैं। इन्हीं से सब चढ़दी कला में रहते हैं। ऐसी ही अवस्था में जागृति होती है। बेशक इसके भौतिक और आध्यात्मिक दोनों अर्थ हों, पर दूसरा ही ज्यादा सटीक लगता है, क्योंकि वेद अध्यात्म को डील करते हुऐ लगते हैं, न कि भौतिकता को।

मुझे लगता है कि जागरण और आत्मसाक्षात्कार के बीच अंतर है। पहली अवस्था प्रारंभ है, तो दूसरी अवस्था आध्यात्मिक विकास का चरम या अंत। मुझे यह जीपीटी एआई पावर्ड बिंग सर्च से पता चला। कहते हैं कि कईयों की कुंडलिनी बचपन से ही जागृत होती है। अगर कुंडलिनी जागरण पूर्णता होती तो उसके बाद पुनर्जन्म क्यों होता। यह भी हो सकता है कि पूर्णता के अनुभव के बाद भी आत्मा की पूरी सफाई जरूरी हो, जिसके लिए कई बार नया जन्म लेना पड़ता होए। यह भी बोलते हैं कि महान व्यक्तियों जैसे कलाकारों और नेताओं की कुंडलिनी भी जागृत होती है। बिंग एआई निःशुल्क है और सबसे अच्छी जानकारी देने वाला लगा मुझे, हिंदी अंग्रेजी दोनों में। आजकल ब्लॉग लिखने में और शोध करने में एआई से बहुत मदद मिल रही है। जब शरीर के भौतिक संपर्क के बिना आदमी को अंधेरा सा महसूस होता है, तो उसे कहते हैं कि शक्ति सोई हुई है। पर जब अंधेरे के बीच में भी एक ध्यान चित्र हमेशा चमकता है, तब उसे कहते हैं कि शक्ति जागी हुई है। यहां से साधना शुरु होती है, जिससे ध्यानचित्र उत्तरोत्तर चमकता जाता है, मतलब कुंडलिनी शक्ति को ज्यादा से ज्यादा जगाया जाता है। फिर एक समय ऐसा आता है, जब ध्यानचित्र इतना ज्यादा मजबूत हो जाता है कि साधक को अपने और ध्यानचित्र के बीच फर्क ही महसूस नहीं होता, न ही उसे ऐसा लगता है कि वह उसका ध्यान कर रहा है। मतलब इसमें ध्यान करने वाला, ध्यानचित्र, और ध्यान की प्रक्रिया, तीनों एकाकार हो जाते हैं। इसे ही समाधि कहते हैं। इसी के दौरान कभी भी आत्मसाक्षात्कार अर्थात आत्मज्ञान का अनुभव हो सकता है। शायद मैं इसे ही पहले कुंडलिनी जागरण कह के वर्णन कर रहा था। कोई बात नहीं, यह सिर्फ़ शब्दावलियों का अंतर है, अनुभव में कोई अंतर नहीं पड़ता।

पिछली कथा के अनुसार गंगा रूपी शक्तिजल ने देवताओं से इस शर्त पर हमेशा सुषुम्ना में बसे रहने को कहा था कि उसे सर्वाधिक महत्त्व देना होगा। मतलब साफ है कि अगर रोज योग करते हुए सुषुम्ना में बह रही शक्ति को महसूस न किया गया, तो वह धूमिल पड़ जाएगी। मतलब बेशक कुछ भी काम छूट जाए, पर योग नहीं छूटना चाहिए। अक्सर होता यह है कि भैतिक कर्म ही दिखता है, मानसिक या आध्यात्मिक कर्म नहीं। प्राचीन भारत में लोग ज्ञान, भक्ति आदि जैसे मानसिक कर्म में लगे होते थे, जो सबसे बड़ा कर्म है, क्योंकि इसी से मुक्ति और सृष्टि चक्र को सही गति मिलती है।

शेष दुनिया विशेषकर पश्चिम में भौतिकता, साफसफाई आदि में ही व्यस्त रहते थे लोग, जो काम के रूप में स्पष्ट नजर आते हैं। वैसे सर्वोत्तम तरीका कर्मयोग है, जिसमें भौतिक कर्म और योगसाधना खुद ही एकसाथ होते रहते हैं।

दरअसल कुंडलिनी योग जीवनरूपी विविध धुनों को जोड़ने वाला बैकग्राउंड म्यूजिक है। जब किसी कारणवश मुख्य संगीत बजना बंद हो जाता है, तो यही पार्श्व संगीत सुखी जीवन के लिए सहारा होता है। जैसे मुख्य संगीत बंद होने से पार्श्व संगीत बहुत तेज लगने लगता है, वैसे ही जीवन की सांसारिक गतिविधियों के शोर के शांत होने से योग का ध्यानचित्र बहुत तेज चमकने लगता है, जिससे वह जागृत भी हो सकता है। संभवतः पुराणों में इसी को गड्ढे में साधना या समुद्र के भीतर बंद व अंधेरे कारागार में साधना आदि की उपमा दी गई है।

ऋषि गौतम की पिछली कथा का एक दूसरा रूपांतर भी है। इसमें गाय के मरने पर गौतम को कुटिल ऋषियों के षड्यंत्र का पता चल जाता है। इससे क्रुद्ध होकर वे उन्हें और उनकी संतानों को शैवधर्म से बहिष्कृत रहने का और उससे नरकगामी बनने का श्राप देते हैं। कहते हैं कि फिर कलियुग उन्हीं के जैसे लोगों से भर गया। उस कथा रूपांतर में उन्हें शिवदर्शन होने का कोई उल्लेख नहीं है। मतलब साफ है कि दुष्ट ऋषियों की साजिश को उन्होंने सकारात्म सकारात्मकता से लेते हुए शिवसाधना नहीं की, बल्कि अपनी संचित ऊर्जा क्रोध में और श्राप देने में लगा दी, इसीलिए उन्हें जागृति नहीं मिली। हरेक क्रिया की प्रतिक्रिया होती ही है।

कुंडलिनी तंत्र का मूल आधार शिव-लिंग

मित्रों, शिवपुराण की एक कथा के अनुसार एकबार कुछ शिष्यों ने कथावक्ता से पूछा कि क्या शिवलिंग लिंग होने के कारण ही हर जगह पूजित है या कोई अन्य कारण है। इस पर वे एक कथा सुनाते हैं कि दारुक नाम के एक श्रेष्ठ वन में शिवजी के ध्यान में नित्य तत्पर शिवभक्त रहा करते थे। किसी समय वे समिधा लेने वन में गए हुए थे। उसी समय शिव उन्हें शिक्षा देने और उनकी परीक्षा लेने के लिए एक तांत्रिक अवधूत के वेष में आए, जो लिंग को हाथ में धारण कर के दुष्ट चेष्टा कर रहे थे। उनको देखकर ऋषिपत्नियां बहुत डर गईं। और अन्य बेताब और आश्चर्यचकित होकर वहां चली आईं। कुछ अन्य स्त्रियों ने एकदूसरे का हाथ पकड़कर परस्पर आलिंगन किया। कुछ स्त्रियां उस आलिंगन के घर्षण से आनंदमग्न हो गईं। उसी समय ऋषिवर आ गए और उस आचरण को देखकर दुखी और क्रोध से व्याकुल हो गए। वे आपस में कहने लगे, यह कौन है, यह कौन है। जब तांत्रिक अवधूत ने कुछ नहीं कहा तो उन्होंने उसे यह कहते हुए श्राप दिया कि वह वेदविरुद्ध आचरण कर रहा था इसलिए उसका लिंग भूमि पर गिर जाए। ऐसा ही हुआ। उस लिंग ने अग्नि की तरह सामने स्थित सभी वस्तुओं को जला दिया। जहां वह जाता, वहां सबकुछ जला देता। वह पाताल में गया, स्वर्ग में गया, भूमि पर भी सर्वत्र गया, पर कहीं स्थिर नहीं हुआ। सभी लोक व्याकुल हो गए, और वे ऋषिगण भी बहुत दुखी हुए। किसी भी देवता या ऋषि को शांति नहीं मिली। जिन देवों और ऋषियों ने शिव को नहीं पहचाना, वे ब्रह्मा की शरण में गए। ब्रह्मा ने यह कहते हुए उन्हें खूब लताड़ा कि आम आदमी अगर शिव को न पहचान पाए तो बात समझ आती है पर उनके जैसे ज्ञानी लोग शिव को कैसे नहीं पहचान पाए, और कहा कि अगर देवी पार्वती योनिरूपा बन जाए तो यह स्थिर हो जाएगा। देवी को प्रसन्न करने को यह निम्न विधि उनको बताई। अष्टदल वाला कमल बनाकर उसके ऊपर एक कलश स्थापित कर उसमें दूर्वा तथा यवांकुरों से युक्त तीर्थ का जल भरना चाहिए। फिर वेदमंत्रों के द्वारा उस कुंभ को अभिमंत्रित करना चाहिए। फिर वेदोक्त रीति से उसका पूजन करके शिव का स्मरण करते हुए शतरुद्रीय मंत्रों से कलश के जल से उस शिवलिंग का अभिषेक करना चाहिए। फिर उन्हीं मंत्रों से लिंग का प्रोक्षण मतलब छिड़काव करें, तब वह शांत हो जाएगा। फिर गिरिजायोनि रूपी बाण को स्थापित करके उस पर लिंग को स्थापित करना चाहिए, और फिर उसको अभिमंत्रित करना चाहिए। फिर षोडशोपचार मतलब सोलह किस्म की सामग्रियों से परमेश्वर का पूजन करना चाहिए, और फिर उनकी स्तुति करनी चाहिए। इससे लिंग स्थिर और स्वस्थ हो जाएगा, तथा तीनों लोक विकार से रहित और सुखी हो जाएंगे।

वैसे इस कथा का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। यह आस्था से जुड़ा हुआ एक संवेदनशील धार्मिक मामला है। इसे खुद ही समझा जा सकता है। हां इतना जरूर कह सकते हैं कि हरेक आदमी अपने यौनसाथी की खोज में कभी न कभी जरूर भटकता है। उस

दौरान उसके मन में जो समाधि चित्र बना होता है, वह उसे चिड़चिड़ा सा और जलाभुना सा जरूर बना सकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि समाधि के लिए अतिरिक्त ऊर्जा की जरूरत होती है, जो किसी नजदीकी साथी के सहयोग से ही मिल सकती है। अष्टदल कमल अनाहत चक्र का प्रतीक है, और प्रेम उस पर ही उपजता है। उस पर तीर्थों के जल से भरे कलश को रखने का मतलब उस पर ध्यान शक्ति को इकट्ठा करके केंद्रित करना है। विभिन्न तीर्थ मतलब विभिन्न चक्र। दूर्वा घास प्रजनन, वृद्धि और विकास का प्रतीक है। यव अंकुर मतलब अंकुरित हुए जौ चढ़दी कला मतलब चहुंमुखी विकास का प्रतीक हैं, क्योंकि उसमें हर किस्म के टॉनिक, विटामिंस और मिनरल्स होते हैं, इसीलिए इसे ग्रीन ब्लड भी कहते हैं। इसका आम भाषा में यही मतलब लगता है कि दिल पर अर्थात प्यार पर अपना सबकुछ न्यौछावर कर देना। जोगी भी ऐसे ही होते हैं, जो घरबार छोड़कर अपने देवता की पूजा अर्चना में लग जाते हैं, और ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। उस कलश के पूजन का मतलब है, हृदय से शक्ति के साथ जुड़े देवरूप आदि ध्यानचित्र का पूजन। जिससे वह ज्यादा प्रकाशित अर्थात प्रसन्न होता है, जैसे किसी आदमी की सेवा से वह आदमी प्रसन्न हो जाता है। वेदमंत्राें से पूजन का मतलब है, उस चित्र को और ज्यादा धार देते हुए और स्पष्ट, शुद्ध और प्रकाशमान बनाना। बीजमंत्र भी ऐसा ही करते हैं। वह मानसिक ध्यान चित्र गुरु, प्रेमिका, देवता, बीजमंत्र आदि किसी का भी हो सकता है। उस पूजित चित्र से मिश्रित शक्ति को फिर अनाहत चक्र से स्वाधिष्ठान और मूलाधार चक्र को उतारा जाता है। यही कलश के जल से उस दिव्य लिंग का अभिषेक है। अभिषेक में पवित्र जलरूपी शक्ति की धारा निरंतर चलती है। प्रोक्षण जल के छिड़काव को कहते हैं। हृदयकलश से शक्ति को सुबहशाम की साधना से बारंबार नीचे उतारना ही ही दिव्य प्रोक्षण है। शतरुद्रीय मंत्र में विभिन्न बीजमंत्र आदि हैं, जो विभिन्न अदृश्य तरंगें छोड़ते हैं, जो आदमी के मन पर अदृश्य दिव्य आध्यात्मिक प्रभाव डालते हैं। वैसे कुदरती बाणलिंग नर्मदा नदी में मिलते हैं, पर लगता है कि कथा में बाण को लिंग के आसन अर्थात पीठ के रूप में कहा गया है। मैंने जब बिंग एआई से पता किया तो उसने जवाब दिया कि एक अभिमंत्रित बाण को जमीन के अंदर गाड़ा जाता है, और उसके ऊपर शिवलिंग को स्थापित किया जाता है। हो सकता है कि यह ठीक कह रहा हो। क्योंकि कई स्थानों पर ऐसे शिवलिंग देखे जाते हैं जिनकी पीठ या आधार ही नहीं होता। पूछने पर वहां के पुजारी आदि बताते हैं कि यह शिवलिंग जमीन में गहराई तक गढ़ा होता है। हो सकता है, जमीन के अन्दर बाण ही उसकी पीठ हो। वैसे पीठ का आकार भी बाण से मिलता जुलता सा होता है। फिर उसके आगे तो आम आदमी की भाषा में तांत्रिक या दैवीय संभोगयोग ही लगता है। वैसे सबकी अपनी अपनी सोच हो सकती है। उससे तीनों लोक मतलब पूरा शरीर शांत और स्वस्थ मतलब अपने शुद्ध आत्मरूप में स्थित हो जाता है, क्योंकि सब लोक शरीर में ही हैं। यह दुनिया में अक्सर देखा जाता है इसीलिए बिगड़े हुए या बिगड़ रहे नौजवानों का विवाह उनके परिवार वाले जल्दी में करते हैं। उसके बाद मैंने बहुत से सुधरते हुए देखे हैं। पर कुछ नहीं भी सुधरते। इसमें उनकी पत्नियों का कसूर भी लगता है मुझे, शायद हालांकि

ज्यादा कसूरवार तो पुरुष ही होते हैं। इसीलिए कहा है कि शिवलिंग को पार्वती रूपी पीठ ही धारण कर सकती है। इसीलिए तो स्त्री को अध्यात्मिक संस्कार देना पुरुष से भी ज्यादा जरूरी समझा जाता था, क्योंकि स्त्री ही पूरे परिवार की नींव होती है। मैंने एक व्यस्क आदमी को अपनी निजी राय जाहिर करते सुना था कि अगर पुरुषों का विवाह न हुआ करता तो वे एकदूसरे को कच्चा ही खा जाया करते, क्योंकि पत्नियां ही पुरुषों को नियंत्रित करती हैं। उन्होने खुद अपनी पहली पत्नि की मृत्यु के बाद एक अन्य महिला से विवाह क्रिया हुआ था। बात सही भी है। एक मित्र भी कह रहे थे कि तांत्रिक संभोग तो संभोग ही नहीं लगता, वह तो कोई और ही अति पवित्र अध्यात्मिक कर्म बन जाता है। मुझे लगता है कि मूर्ख, नकारात्मक, असफल और विधर्मी लोग ही दोनों को एक श्रेणी में रखकर अपने दिल की भड़ास निकालते हैं। एक पुस्तक लव स्टोरी ऑफ ए योगी में तो लेखक एक महिला के द्वारा उसके कुंडलिनी जागरण की मुख्य वजह पूछे जाने पर अपना अनुभव प्रश्नकर्ता को चिह्नित करने की बजाय सबको सुनाते हुऐ कहता है कि उसने वज्रशिखा की संवेदना पर कुंडलिनी चित्र का ध्यान करते हुए उसे उसके पूरक अंग में अंदरबाहर करते हुए ही जागृति प्राप्त की, पर जो उसने किया वह संभोग नहीं था। इस पर ऑनलाइन कुंडलिनी ग्रुप पर मौजूद वह प्रश्न पूछने वाली पाश्चात्य या संभवतः अमेरिकन महिला प्रेमभरी हैरानी और कुछ मजाकिया लहजे से उसे पिनपोइंट करते हुए उससे कहती है कि हमारे देश में तो उसे संभोग ही कहते हैं, वह पता नहीं कौनसी अचरजभरी संस्कृति या भूमि से ताल्लुक रखता है। उसके बाद उस विषय पर उस ग्रुप में सबके संवाद बंद हो गए थे, और तंत्र की उपयोगिता का विषय सामने आ गया था, जिसमें जागृति के लिए तंत्र की सर्वाधिक महत्ता को सभी स्वीकार कर रहे थे। मतलब लेखक ने अपने दिल की बात भी रख दी थी और अप्रत्यक्ष तौर पर मुख्य प्रश्न का जवाब भी दे दिया था। वैसे यह कथा मिस्र की अंखिंग तकनीक की तरह भी लग रही है।

मतलब यह साफ है कि इस कथा में विधर्मियों या हिंदु विरोधियों द्वारा फैलाए गए दुष्प्रचार का खंडन किया गया है। ऋषि बहुत दूरदर्शी होते थे। उन्हें पता था कि आने वाले समय में ऐसा हो सकता था। यह कथा भी समाज में घटने वाली आम घटना को दर्शाती है, कोई दिव्य पारलौकिक आदि नहीं। अविवाहित किशोर व्यक्ति ऐसे ही होते हैं। वे मौका मिलने पर युवतियों से लिंगोन्मुखी मजाक करते रहते हैं। उनमें से कोई शिव किस्म का तंत्र का असली हकदार भी होता है। पर लोग तो सबको एक जैसा लंपट बदमाश समझते हैं। कहते हैं कि दाने के साथ घुन भी पिसता है। उन्हें क्या पता कौन सच्चा है और कौन झूठा। इसलिए औरों के साथ वे शैव का भी अपमान करके शाप दे देते हैं, मतलब उसे भी बुरी नजर से देखते हैं। वस्तुतः शैव का लिंग कोई सामान्य लिंग नहीं होता। शैवतंत्र के प्रभाव से वह साक्षात इष्ट देवता होता है। एक प्रकार से साधना के प्रभाव से वह शैव व्यक्ति लिंगरूप बन जाता है। वह जहां भी जाता है, एक किस्म से उसके रूप में उसका इष्टदेवरूपी लिंग ही जा रहा होता है। उस इष्टदेव की नाराजगी

सबको परेशान करती है, मतलब जलाती है। ऐसा भी हो सकता है, क्योंकि सारा विश्व लोगों के भटकते मन में है, और उस शैवलिंगरूपी इष्टदेव के सान्निध्य से उनका अपने भटकते मन से मोहभंग हो रहा होता है, इसीको जगत का जलना कहा गया हो सकता है। उस माहेश्वर लिंग को पार्वती के जैसी तंत्रयोगिनी ही सही से धारण कर सकती है, ताकि उसके साथ इष्टदेव रूपी ध्यानचित्र का ध्यान भी हो सके। आम महिला तो ध्यान में सहयोग कर ही नहीं पाएगी। मतलब इससे इष्टदेव नाराज मतलब बिना जागृति के ही रहेगा। बिना जागृति की कुंडलिनी क्रियाशीलता नुकसानदायक भी हो सकती है, क्योंकि वह नियंत्रण से बाहर भी हो सकती है। अनियंत्रित शक्ति सबको जलाएगी ही। जागृति आदमी को शक्ति का असली और पूर्ण रूप दिखाती है। और वह रूप सबसे सुंदर और शक्तिशाली होने पर भी परम शांत होता है। इससे आदमी शांत रहता है, मतलब जागृति के नियंत्रण में रहता है।

यह कथा मुझे शिवपुराण की सबसे सारगर्भित कथा लगी। इस पर कोई जितना चाहे लिख सकता है। ऋषियों ने जो शुरु में पूछा था कि क्या शिवलिंग लिंग होने के कारण ही पूजित है, या कोई अन्य कारण है, इसका उत्तर बहुत सभ्य तरीके से दिया गया है इसमें। यह ऐसा ही है जैसा उत्तर उपरोक्त लेखक ने दिया था। मतलब शिवलिंग सामान्य लौकिक लिंग नहीं है, जैसा कि मूर्ख, दुष्ट, लंपट बदमाश, भौतिकवाद की मोहमाया में उलझे हुए, अति कर्मप्रधान, धर्मविरोधी या सैक्सी किस्म के लोग समझते हैं या बोलते हैं। हैरानी तब होती है जब बहुत से हिंदु भी उनके बहकावे और उकसावे में आ जाते हैं, और वैसा ही समझने लगते हैं। वे सोशल मीडिया आदि पर हर जगह शिवलिंग को शिव के शरीर का अंग समझने पर ही पाबंदी लगा देते हैं, कहने लगते हैं कि यह तो केवल शिव का चिह्न या प्रतीक है, या केवल शिवशक्ति मिलन का प्रतीक है, किसी शारीरिक कर्म आदि का नहीं आदि आदि। वैसे अपनी जगह पर और अध्यात्मवैज्ञानिक सोच के हिसाब वे सही ही कह रहे होते हैं, क्योंकि साधारण सांसारिक वस्तु या अंग जैसी इसमें कोई बात ही नहीं है। उनसे सीखकर बिंग एआई भी ऐसा ही कहता है। इस मामले में अगर विधर्मी लोग अति नीचे गिरते हैं, तो वे तथाकथित हिंदुरक्षक अति ऊपर उठ जाते हैं। व्यावहारिक दुनिया के बीच में अर्थात मध्यमार्ग पर कोई नहीं रहते। अति सर्वत्र वर्जयेत। मध्यमार्ग ही सर्वोत्तम है। इसको एक उदाहरण से समझ सकते हैं। एक ही बंदूक होती है। एक सभ्य आदमी उससे आतंकवादी को मारता है, तो दूसरा सिरफिरा व्यक्ति आम जनता को। इसमें बंदूक का क्या दोष। इसी तरह शिवनियंत्रित शिवलिंग अज्ञानरूपी राक्षस को मारता है, तो इसके विपरीत आमजनप्रयुक्त इसका साधारण रूप ज्ञानरूपी देवता को। एकबार मेरी मुलाकात एक तांत्रिक व्यक्ति से हुई थी, जो मेरे मित्र का मित्र था। उसने कामाक्षी मंदिर में गुरु से दीक्षा ली हुई थी। वह बता रहा था कि उसके सामने एक तांत्रिक ने भीड़ भरी सड़क से गुजर रही आम व अनजानी महिला पर अपनी वशीकरण विद्या चलाई थी, जिससे वह उसके बुलाने पर उसके पीछे आकर उसके साथ कुछ भी करने को तैयार थी। हालांकि वह तो अपनी विद्या का

परीक्षण कर रहा था, इसलिए उसने वशीकरण को बंद कर दिया, जिससे वह महिला वापिस अपने रास्ते चली गई। सच्चे तांत्रिक तो कभी गलत काम करते भी नहीं हैं, अगर करते हैं तो सीधे नरक को जाते हैं। बोलने का मतलब है कि उपरोक्त पौराणिक कथा के अन्दर भी कोई ऐसा ही वशीकरण रहस्य छिपा हुआ, क्योंकि पुराने जमाने के लोगों के लिए तो जागृति ही सबसे अहम उपलब्धि हुआ करती थी, जिसके लिए वे सबसे अधिक प्रयास किया करते थे। आजकल तो और भी बहुतेरी विद्याओं और कलाओं का बोलबाला है, जिसके लिए लोग बहुत संघर्ष करते हैं। फिर भी वे पौराणिक विद्याएं अभी भी गुरुपरंपराओं में जीवित हो सकती हैं, जिन्हें यदि राजसहायता मिले तो उन्हें खोजा जा सकता है, और उन्हें भविष्य के लिए संरक्षित किया जा सकता है।

कुंडलिनी योग सांसारिक जीवन पर एक अतिरिक्त सुविधा मात्र है

दोस्तो, शिवपुराण में अंधक नामक एक दैत्य की कथा आती है। कहते हैं कि उस देवशत्रु दैत्य ने तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया था। वह समुद्र में गर्त का आश्रय लेकर रहता था। वह अत्यंत पराक्रमशाली दैत्य उस गर्त से निकलकर प्रजाओं को पीड़ित करने के पश्चात पुनः उसी गड्ढे में प्रवेश कर जाता था। तब दुखी होकर सभी देवताओं ने बारंबार शिव की प्रार्थना करते हुए उनसे अपना सारा दुख निवेदन किया। इस पर शिव ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि वे उसे मारेंगे और उनसे कहा कि वे अपनी सेना के साथ वहां जाएं, वे खुद भी गणों के साथ वहां आ रहे हैं। तब उस गर्त से देवताओं और ऋषियों से द्वेष करने वाले उस भयंकर अंधक के निकल जाने पर देवता लोग उस गर्त में प्रवेष कर गए। तब देवताओं और दैत्यों ने परस्पर अत्यंत भयानक युद्ध किया। शिवजी की कृपा से देवता उस युद्ध में प्रबल हो गए। देवताओं से पीड़ित होकर वह ज्यों ही उस गड्ढे में प्रवेष करने लगा, उसी समय परमात्मा शिव ने उसे त्रिशूल में पिरो दिया। तब त्रिशूल में स्थित हुआ वह शिवजी का ध्यान करके प्रार्थना करने लगा,"हे देव, अंत समय में आपका दर्शन करके प्राणी आपके ही सदृश हो जाता है"। शिवजी ने खुश होकर उससे वर मांगने को कहा। तब सात्त्विक भाव को प्राप्त हुए उस दैत्य ने शिवजी को प्रणाम करके व उनकी स्तुति करके अपने लिए उनकी भक्ति मांगी और उनसे वहीं निवास करने की प्रार्थना की। इस पर शंकर ने दैत्य को उसी गड्ढे में फेंक दिया और लोकहित की कामना से वहीं लिंगरूप धारण कर स्थित हो गए।

उपरोक्त पौराणिक कथा का आध्यात्मिक-मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

मुझे लगता है कि अवचेतन मन को ही अंधक राक्षस कहा गया है। यही आदमी को नियंत्रित करता है। अनजाने में जो आदमी से व्यवहार होता है, वह इसी के वश में आकर होता है। इसीलिए तो आदमी शराब आदि के नशे में मन में गहरी दबी हुई बातों, भावनाओं और शारीरिक क्रियाओं को प्रकट करता है। उस समय वर्तमान का चेतन मन निष्क्रिय सा रहता है, जिससे अवचेतन मन को शरीर को नियंत्रित करने का ज्यादा मौका मिलता है। समुद्र का गड्ढा मूलाधार चक्र है। समुद्र में भी जल होता है, और चक्रों में भी शक्तिरूपी जल होता है। समुद्र भी भूमि पर सबसे ज्यादा निचाई पर स्थित होता है, और मूलाधार चक्र भी शरीर में सबसे ज्यादा निचाई पर स्थित माना जाता है। चक्र के बीच में खाली घेरा ही वह गड्ढा है। जैसे मूलाधार चक्र शरीर का सबसे सुदूर और निष्क्रिय सा भाग है, उसी तरह अवचेतन मन भी संपूर्ण मन का सबसे सुदूर और निष्क्रिय सा हिस्सा है। जैसे समुद्र के गड्ढे की गहराई में प्रकाश न पहुंचने से वहां अंधेरा होता है, इसी तरह अवचेतन मन में भी अंधेरा होता है। इसलिए मूलाधार और अवचेतन मन, दोनों को एक स्थान पर साथ रहते दिखाया जाता है। अंधक मतलब अंधा या अंधेरा करने वाला। जब आदमी अवचेतन मन के प्रभाव में होता है, तो वह भी आदमी को अंधा सा या अंधेरानुमा बना देता है। जैसे नींद आदि के रूप में कुछ देर अवचेतन मन

में रहने के बाद आदमी जागकर चुस्ती के साथ क्रियाशील हो जाता है, उसी तरह मूलाधार में अवचेतन मन के रूप में सोई हुई शक्ति जागकर और ऊपर उठकर पूरे शरीर और मन को स्वस्थ और क्रियाशील कर देती है। पुरानी इच्छाएं और आदतें अवचेतन मन में सूक्ष्म वासनाओं के रूप में दबी हुई होती हैं। ये आदमी के व्यवहार को निर्धारित करती हैं। आदमी की मानसिक शक्ति कमजोर पड़ने पर ये वासनाएं जागकर उसके मन में काम, क्रोध आदि छः दोष पैदा कर सकती हैं, जिससे वह कई बार बुरे कर्म कर बैठता है, जो उसे पतन या विनाश की ओर ले जाता है। वासनाओं से बुरे काम और बुरे काम से पुनः वासना का निर्माण होने से ये दोनों चक्रवत एकदूसरे को बढ़ाते रहते हैं। अच्छा काम भी बुरा ही माना जाएगा यदि उसके साथ आसक्ति जुड़ जाए, क्योंकि यही आसक्ति वासना के बनने में मदद करती है। हां बुरे काम की तुलना में इससे यह फायदा होगा कि अच्छे काम का फल भी अच्छा ही मिलेगा। हालांकि अच्छे फल को आसक्ति के साथ भोगने से उससे भी वासना बनकर अवचेतन मन में दर्ज हो जाएगी, जो आदमी से फिर अच्छा काम करवाएगी। जैसे मर्जी कर्म और फल हों, आसक्ति का साथ मिलने पर बंधन तो डालेंगे ही। अच्छे काम और फल को सोने की जंजीर समझ लो, और बुरे कर्मफल को लोहे की जंजीर। दोनों आदमी को जन्ममरण के चक्कर में जकड़ेंगी ही। उसके बाद आदमी को चेतना या होश आने पर थोड़ी देर के लिए जागी हुई वह वासना फिर से उसके अवचेतन मन रूपी गड्ढे में चली जाती है। ऐसा बारंबार होता रहता है। अंधक मतलब अवचेतन मन और उससे उत्पन्न विभिन्न दोष मतलब उसकी सेना के विभिन्न राक्षस। जैसे ही काम, क्रोध आदि दोष आदमी पर हावी होने लगता है, वैसे ही उसके द्वारा शरीरविज्ञान दर्शन आदि अद्वैत साहित्यों या देवपूजा आदि अद्वैतवर्धक कर्मों की सहायता से उत्पन्न अद्वैतमय देवताओं के ध्यान से शिवरूपी ध्यानचित्र नीचे के चक्रों पर उजागर होने लगता है। योग से भी ऐसा ही होता है। योग से जब शरीर की प्राण शक्ति घूमते हुए मूलाधार पर पहुंचती है, तो इसे ही देवताओं का वहां पहुंचना कह सकते हैं, क्योंकि देवता शरीर के अंगों और उनको चलाने वाली शक्ति के साथ जुड़े होते हैं। देवताओं की सेना आध्यात्मिक कृत्यों को कहा गया होगा और शिव की सेना मतलब गणसेना तांत्रिक कृत्यों को कहा गया होगा। दोनों एकदूसरे के पूरक हैं। शक्ति के साथ शिवरूपी ध्यान चित्र का आभिव्यक्त होना स्वाभाविक ही है। वहां राक्षसों के साथ युद्ध का मतलब है, वहां दबे स्थूल या इसी जन्म के विचारों का प्रकट होना और उससे उनका कमजोर होना या नष्ट होना। अवचेतन मन में तो अनगिनत जन्मों के विचार दबे होते हैं। इसलिए उसे हराना इतना आसान नहीं है। मस्तिष्क में शक्ति पहुंचने से वह स्थूल विचारों और क्रियाओं के रूप में प्रकट होता रहता है, और उससे सर्वाधिक दूर मूलाधार में शक्ति पहुंचने से वह अपने अंधकारमय मूलरूप में छिपता रहता है। मतलब आदमी पूरी तरह उसके नियंत्रण में होता है, बेशक उसे लगे कि वह सबकुछ अपनी मर्जी से कर रहा है। जैसे ही वह शक्ति के साथ मूलाधार में पहुंचता है, वह बैक चैनलस से ऊपर जाती हुई शक्ति के साथ फिर ऊपर चढ़ जाता है। मतलब जैसे ही वह नीचे जाते हुए मूलाधार चक्र पर पहुंचता है,

वैसे ही वह इड़ा, पिंगला, और सुषुम्ना नाड़ियों से ऊपर उठने लगता है। यही शिव के द्वारा अंधक को त्रिशूल पर लटकाना है। उन नाड़ियों से मास्तिष्क में पहुंचकर वह शिवध्यान की संगति से पवित्र हो जाता है। वहां से फिर वह फ्रंट चैनल से नीचे गिरकर पुनः मूलाधार चक्र में पहुंच जाता है। यह चक्र चलता रहता है। क्योंकि मूलाधार चक्र उस अंधक को त्रिशूल पर उठाकर लगातार पवित्र करता रहता है, इसलिए यही अंधकेश्वर लिंग लगता है। वह शिवलिंग मतलब शिव का लिंग इसलिए है क्योंकि वह शिवरूप ध्यानचित्र के साथ जुड़ा होता है। क्योंकि ध्यानचित्र एक पार्श्व संगीत की तरह जीवनरूपी शोरभरे संगीत के झटकों से आदमी को बचाता है, इसीलिए कथा में कहा गया है कि शिव ने देवताओं और लोगों की अंधक से रक्षा की। मतलब योग अगर पुरानी दबी वासनाओं को बाहर निकालकर उन्हें साफ करता रहता है, तो उसमें प्रयोग किया गया ध्यानचित्र योगी को उनके वशीभूत होने से बचाता रहता है। तभी तो वे वासनाएं साफ होती हैं, नहीं तो उनके वशीभूत होने से फिर नई वासनाएं बन जाएंगी। मतलब साफ है कि ध्यानचित्र के बिना योग अधूरा है और यहां तक कि नुकसानदायक भी हो सकता है। मतलब योग सैशन के अंत में एक ध्यान सैशन भी होना चाहिए। बहुत समय लगता है वासनाओं की सफाई में। इसलिए योग जीवनभर निरंतर और प्रतिदिन नियमित रूप से चलता रहना चाहिए। वैसे यह ध्यान देने वाली बात है कि आम दुनियावी कामों से भी शक्ति घूमती रहती है। जब आदमी शारीरिक काम करता है, तो रक्तसंचार से, पहले तो शरीर और मन को काफी आनंदमय ताजगी और स्फूर्ति मिलती है। फिर थक जाने पर जब आदमी आराम करता है तब रक्त को घुमाने वाली शरीर की क्रियाशीलता नहीं रहती, जिससे भागता हुआ रक्त अपने भारीपन की वजह से मूलाधार चक्र पर जमा हो जाता है, और साथ में शक्ति भी। उससे फिर से आदमी अवचेतन मन के अंधेरे की गिरफ्त में आ जाता है। उससे ऊबकर वह फिर सांसारिक क्रियाशीलता को अपनाकर उस मूलाधार पर जमा हुई शक्ति को घुमाने की कोशिश करता है। इससे पूरे शरीर और मास्तिष्क में शक्ति पहुंचने से वह फिर से आनंदित हो जाता है। मतलब अंधक गड्ढे से बाहर आकर शरीररूपी विश्व को नियंत्रित करने लगता है। क्योंकि आदमी से काम वही होते हैं, जो उसके अवचेतन मन में दबे होते हैं। वैसे बड़ों, गुरुओं और ज्ञानियों की संगति से वह उसके प्रभाव में आकर बुरे काम करने से बचता भी है। पर कब तक। जब तक उसका समूल नाश नहीं किया गया, तब तक पूरी सुरक्षा नहीं।

दुनियावी कामों से अगर पुराने जमे विचार शिथिल होते रहते हैं, तो नए विचार अवचेतन मन पर जमते भी रहते हैं। मतलब आगे दौड़, पीछे चौड़। इसीलिए कामों को कर्मयोग के रूप में करने को कहा जाता है। इसमें कर्ता, कर्म, और फल में आसक्ति नहीं रखी जाती। अनासक्ति की वजह से वे अवचेतन मन पर गहरे नहीं जमते बल्कि ऊपर ही रहकर जल्दी ही बाहर निकलकर नष्ट भी होते रहते हैं। इससे कुल मिलाकर विचारों का नष्ट होना विचारों के जन्म से ज्यादा होता है, जिससे अवचेतन मन रूपी अंधक धीरे धीरे शुद्ध होता रहता है।

दूसरी बात, योग के समय प्रकट होने वाले दबे विचारों को हम खुलकर प्रकट होने देते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि वे हमारे से ऊटपटांग काम या व्यवहार नहीं करवा सकते, क्योंकि हम उस समय काम तो कर ही नहीं रहे होते हैं बल्कि एकांत में योग कर रहे होते हैं। इससे वह बार बार प्रकट होकर नष्ट होते रहते हैं। उन्हें गीले बारूद का मिसफायर होना कह सकते हैं। दूसरी ओर, काम के समय हम बुरे विचारों को खुलकर प्रकट नहीं होने देते, क्योंकि वे हमें दिग्भ्रमित करके हमसे बुरे कर्म और बुरे व्यवहार करवा सकते हैं।

तीसरी बात, योग के समय ध्यानचित्र ज्यादा प्रभावी होता है। वह ऊटपटांग किस्म के दबे विचारों के प्राकट्य के बुरे प्रभाव को कम करते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि ज्यादा ध्यान ध्यानचित्र पर रहता है, जिससे जाग रही बुरी मानसिक वृत्तियों की तरफ कम ध्यान जाता है। वैसे तो कर्मयोग के समय भी ध्यानचित्र प्रभावी रहता है, पर उतना नहीं, जितना योग के समय। हालांकि मेरे कर्मयोग के दौरान तो ध्यानचित्र साधारण योग से भी ज्यादा प्रभावी रहता था, फिर भी तंत्रयोग के ध्यानचित्र से तो थोड़ा कम ही प्रभावी होता था। थोड़ा ही फर्क था। बेशक जागृति योग्य बल तंत्रयोग से ही मिला। कर्मयोग में भी बहुत शक्ति होती है। ध्यानचित्र के इसी अध्यात्मवैज्ञानिक लाभ को देखते हुए उसे शिवपुराण रचयिता ने शिव का रूप दिया है। वह योग की सहायता से अंधक को बार बार त्रिशूल पर उठाता रहता है और उसे पवित्र करके पुनः गड्ढे में फेंकता रहता है। मतलब बैक चैनल की नाड़ियों के माध्यम से शक्ति और शिवचित्र के साथ अवचेतन मन ऊपर उठता रहता है, अपनी एनर्जी रिलीज करके पवित्र होता रहता है, और फ्रंट चैनल से होकर नीचे गिरता रहता है। फिर पुनः पीछे से ऊपर उठता है। यह चक्र चलता रहता है।

चौथी बात, दुनियावी कामों से शक्ति को इतना ज्यादा और जल्दी जल्दी नहीं घुमा सकते, जितना कि योग से। दिनभर योग करते रहने से शक्ति को सैंकड़ों बार घुमाया जा सकता है, जबकि काम करते हुए तो शक्ति ज्यादा से ज्यादा 4 5 बार ही घूम सकती है। सुबह के ब्रेकफास्ट के बाद के काम से शक्ति एकबार घूमती है। फिर लंच के समय आराम होता है। आराम के बाद के काम से शक्ति फिर एकबार घूमती है। लगभग 1 2 बार तो सभी शक्ति को घुमा लेते हैं। कई लोग शाम के समय आराम के साथ चायपानी कर लेते हैं। उसके बाद के काम से शक्ति तीसरी बार घूमती है। बहुत तेज लोग जल्दी सोकर उठने से लेकर ब्रेकफास्ट तक के काम से भी शक्ति को चौथी बार घुमा लेते हैं। अति क्रियाशील लोग तो शाम के पूजा के आराम और खाना खाने के बाद से लेकर सोने तक शक्ति को पांचवी बार भी घुमा लेते हैं। मतलब शक्ति को घूमने के लिए काम के साथ आराम भी जरूरी होता है।

ये सब बारूद का खेल है। अवचेतन मन में जमा विचारों के बारूद को इस तरह जलाना है कि धमाका भी न होए और वह जलता भी रहे। इसके लिए उस पर अनासक्ति रूपी

हल्के जल का छिड़काव किया जा सकता है। यही योग का ध्येय है। कुदरती चेष्ठा भी हल्के दर्जे का योग ही है, जिसमें आदमी को उसके अवचेतन मन में दबे कर्मविचारों के जैसे फल मिलते रहते हैं। इससे वे कर्मविचार याद आ जाते हैं, मतलब वे दबी हुई ऊर्जा के रूप में थे, जो बाहर निकलकर आत्मा में विलीन हो जाती है। ऊर्जा न पैदा होती है और न ही नष्ट होती है। वह आत्मा से प्रकट होती रहती है और उसी में विलीन होती रहती है। इस जन्म के दबे विचार तो याद आ जाते हैं, पर पिछले जन्म के विचार बिना याद आए ही विलीन होते रहते हैं। हालांकि उसका अहसास जरूर होता है। इसीलिए तो किसी अच्छे या बुरे फल मिलने के बाद आदमी अपने में हल्कापन और आनंद सा पैदा होता हुआ महसूस करता है। क्योंकि आदमी बुरे फल से घबराकर उसे अन्यथा व नकारात्मक रूप में लेता है, इसलिए उसमें आनंद होने से भी वह उसे महसूस नहीं कर पाता। अगर आदमी अनासक्ति व अद्वैत भाव को अपना कर रखे, तो आनंद ही है, चाहे फल अच्छा हो या बुरा हो। इसी कुदरती योग को तेज गति देने के लिए ही कुंडलिनी योग बना है।

कुंडलिनी योग से मृत व्यक्ति भी जीवित हो सकता है

शिवपुराण में एक सुधर्मा ब्राह्मण की कथा आती है। वह संतुष्ट, प्रसन्न और अद्वैत भाव में स्थित रहता था। उसकी सुदेहा नाम की एक शिवधर्मपरायण पतिव्रता पत्नि थी। उनकी उम्र काफी बीत गई पर उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। फिर भी तत्त्ववेत्ता सुधर्मा को जरा भी दुख नहीं हुआ। पर उसकी पत्नि को पुत्र न होने का बड़ा दुख था। वह अपने पति से पुत्र के लिए प्रयत्न करने को कहा करती। फिर सुधर्मा उसे डांटकर समझाते कि पुत्र क्या करेगा। कौन किसकी माता तथा कौन पिता है, कौन पुत्र है और कौन भाई या मित्र है। सभी स्वार्थ का ही साधन करने वाले हैं। एक बार किसी पड़ोसी औरत ने सुदेहा को पुत्र न होने का ताना देते हुए बहुत धिक्कारा। वह फिर अपने पति से शिकायत करने लगी। उसने उसे बहुत समझाया पर जब वह फिर भी नहीं समझी तो उसने उसके सामने दो पुष्प रखे और उसे उनमें से एक पुष्प उठाने को कहा। सुदेहा ने वह पुष्प उठाया जिस पर ब्राह्मण ने पुत्र न होना सोचा था। फिर भी वह न मानी और पुत्र के बिना आत्महत्या की धमकी दे दी। तब सुदेहा अपनी सगी बहन घुश्मा को लेकर आई और अपने पति को उससे पुत्र के लिए विवाह करने को कहा। सुधर्मा ने उसे समझाया कि वह उसके पुत्रवती होने पर उससे ईर्ष्या करने लगेगी, जिससे उसे दुख होगा। उस पर घुश्मा ने कहा कि वह अपनी सगी बहन से कैसे ईर्ष्या कर सकती थी। घुश्मा प्रतिदिन एक सौ एक पार्थिव लिंगों का निर्माण, पूजन और विसर्जन करती थी। इस तरह जब एक लाख लिंगों की संख्या पूरी हुई तो उसे सुंदर पुत्र प्राप्त हुआ। सुधर्मा उसे देखकर बहुत खुश हुआ और आसक्तिरहित होकर सुखभोग करने लगा। उसके बाद तो सुदेहा घुश्मा से बहुत ईर्ष्या करने लगी। सभी संबंधी घुश्मा का सम्मान करने लगे। हालांकि सुधर्मा तब भी सुदेहा को अधिक सम्मान और प्रेम देता था, पर उसके मन में कपट था। घुश्मा के बेटे का विवाह भी हो गया। जलती भुनती सुदेहा से एक दिन रहा न गया। उसने अपनी पत्नि के साथ सोए सौतेले पुत्र को मारकर उसके शरीर को खंडखंड करके उन खंडों को नदी में बहा दिया। संयोग से उसी स्थान पर ही सुदेहा भी पार्थिव लिंगों का विसर्जन करती थी। जब पुत्रवधु ने सुबह उठकर खून के छींटे और पति के शरीर के टुकड़े शैय्या पर बिखरे देखे तो रो पड़ी। सुदेहा भी नाटक करते हुए रोने लगी। पर घुश्मा ने जरा भी दुख नहीं किया और पार्थिव पूजन के व्रत में लगी रही। उसके पति ने भी कोई ध्यान नहीं दिया, जब तक शिवलिंग पूजन पूरा नहीं हुआ। वह स्थिरचित्त होकर शिव का नाम लेते हुए पार्थिव शिवलिंगों को बहाने गई और जब वह मुड़ लौटने लगी तो उसने उस सरोवर के तट पर अपने पुत्र को देखा। घुश्मा अपने पुत्र को जीवित देखकर भी ज्यादा खुश नहीं हुई, जैसे कि वह उसके मरने पर दुखी भी नहीं थी, पर यथावत शिवजी के ध्यान में तत्पर रही। उसी समय वहां से संतुष्ट हुए ज्योतिस्वरूप सदाशिव प्रकट हो गए और घुश्मा से वर मांगने को कहा। तब उसने अपनी बहन सुदेहा की रक्षा का वर मांगा। शिव ने जब इस पर आश्चर्य प्रकट किया तो घुश्मा ने कहा कि जो अपकार करने वाले का भी उपकार करता है, उसके दर्शन मात्र

से ही सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। तब शिव ने इससे खुश होकर अन्य वर मांगने को कहा। तब घुश्मा ने शिव को हमेशा अपने पास रहने को कहा। इस पर शिव वहां पर घुश्मेश्वर लिंग नाम से स्थित हो गए। पुत्र को जीवित देखकर सुदेहा लज्जित हो गई और दोनों से क्षमा मांगकर अपने पाप को नष्ट करने वाले व्रत का आचरण करने लगी।

घुश्मेश्वर लिंग कथा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

इस कथा के रूप में कर्मयोग, अनासक्ति और अद्वैतभाव की महिमा का वर्णन हुआ है। घुश्मा को पुत्र देखकर भी ज्यादा खुशी नहीं हुई। मतलब किसी अन्य व्यक्ति के लाभ की खुशी तो कर्मयोगी को भी होती है, पर ज्यादा नहीं, मतलब इतनी नहीं कि उसके प्रति आसक्ति ही हो जाए। अपने मृत पुत्र को देखकर घुश्मा को जरा भी दुख नहीं हुआ। जो जाना था, वह तो चला गया। उसके लिए दुख करने का क्या फायदा था। अपने लिए जरा भी दुख नहीं हुआ, मतलब कर्मयोगी अपने लिए दुख को जरा भी नहीं मानता। शायद अपने लिए खुशी को भी नहीं मानता। अपने जीवित पुत्र को देखकर जो उसे थोड़ी खुशी हुई, वह उसके लिए हुई होगी, अपने लिए नहीं। अद्वैतभाव में रहने पर खुद ही इष्ट पर ध्यान लगने लगता है। इसीको ऐसा कहा है कि वह अपने पुत्र को जीवित देखकर खुश नहीं हुई, पर शिवजी के ध्यान में तत्पर रही। संबंध न्याय से तो इष्ट के ध्यान से अद्वैतभाव पैदा होना चाहिए शायद यही हुआ हो। कुंडलिनी ध्यानयोग से आध्यात्मिक गुण पैदा होने के पीछे यही सिद्धांत कारण है। मृत व्यक्ति कभी जीवित नहीं हो सकता। वह जो उसे अपना मृत पुत्र दिखाई दिया, वह उसकी शिवसाधना के प्रभाव से उसका प्रगाढ़ ध्यान लगने के कारण उसे अपने मन में ही दिखाई दिया। तभी उसे शिव भी नजर आए, मतलब उस ध्यान से वह जागृत भी गई। अगर सचमुच उसका पुत्र जीवित हो गया होता तो सुदेहा तप करके प्रायश्चित क्यों करती, क्योंकि तब तो उसके पुत्र के जीवित होने से उसको मारने का पाप खुद ही नष्ट हो जाता। कहानी अप्रत्यक्ष रूप से बताती है कि सुदेहा द्वारा घुश्मा की ध्यानसिद्ध कल्पना में उसके द्वारा मारे गए उसके बेटे को देखे जाने से उसे बार-बार अपना वह पाप याद आया जिसने उसे तपस्या करने के लिए प्रेरित किया। इस तरह की सौतनों पर बहुत सी फिल्में बनी हैं। एक पंजाबी फिल्म सौंकण सौंकने तो हूबहू यही कथा लगती है। यही अंतर है कि उसमें सौतन कुछ नुकसान होने से पहले खुद ही अलग होकर अपने मायके चली गई। रही बात अपकार करने वाले को माफ करने की, तो ऐसे उदाहरणों से वेदपुराण भरे पड़े हैं। शायद हिंदु धर्म इसीलिए सबसे सहिष्णु कौम है। पर कई कौमों ने इसका नाजायज फायदा भी उठाया। कहते हैं कि यदि पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गौरी को तराईं के युद्ध में माफ न करता तो भारत सैंकड़ों सालों के लिए मुगलों का गुलाम सा न बनता। गुलामी की झलक तो आज तक दिखती है किसी न किसी रूप में। सबको पता है कि जनसंख्या नियंत्रण कानून और समान नागरिक संहिता को लागू करने में कौन सी कौमें सबसे ज्यादा अड़चन पैदा कर सकती हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। अब

म्यांमार के बौद्ध संत विराथू को ही लें। उनकी यह बात सोशल मीडिया पर बड़ी चली थी कि प्यार और सहिष्णुता तो ठीक है पर आप पागल कुत्ते की बगल में तो नहीं ही सो सकते। खैर यह पुराण पर आधारित बात चल पड़ी, इसका कोई पृथक उद्देश्य नहीं। कुल मिलाकर अतिवाद हर जगह हानिकारक होता है। मतलब कि दूसरे को माफ करना बेशक बहुत पुण्यदायक है, पर अगर सामने वाला जान लेने पर ही उतारू है, तो उस पुण्य का क्या करोगे, क्योंकि सबकुछ शरीर पर ही निर्भर है। वैसे भगवान शिव इस अतिवाद के खिलाफ ही लगते हैं, क्योंकि वे लगभग हर जगह ऐसे अति सहिष्णु वरदान पर आश्चर्य प्रकट करते हैं। अगर ऐसा वर मांगना स्वाभाविक होता या बिल्कुल ठीक होता तो उन्हें आश्चर्य नहीं होना था। वैसे वे इस पर बहुत प्रसन्न भी होते थे। मतलब कि सहिष्णुता और अति सहिष्णुता को विभाजित करने वाली रेखा बहुत पतली है, और मौके के अनुसार ही प्रतिक्रिया होनी चाहिए। मुझे लगता है कि घुश्मा, अत्रि आदि लोग महान शिवभक्त होते थे जिन्होंने शिवलिंग की सहायता से जागृति प्राप्त की। उन्हीं को सम्मान देने के लिए ही उनके निवास स्थानों पर उनके नामों से स्थायी शिवलिंग बनाकर वहां तीर्थों के निर्माण कर दिए होंगे ताकि लोगों को उनसे प्रेरणा मिलती रहे। भौतिक वैज्ञानिकों को भी जब ऐसा श्रेय दिया जाता है तो आध्यात्मिक वैज्ञानिकों को क्यों नहीं। यही घुश्मेश्वर लिंग, अत्रीश्वर लिंग आदि के पीछे का कारण नजर आता है। इस कथा से एक अंदाजा यह भी लगता है कि किसी को मरणोपरांत याद करने से उसे परलोक में लाभ मिलता है। हो सकता है कि जब तीव्र ध्यान से घुश्मा ने अपने पुत्र को जीवित देखा तो वह सूक्ष्म रूप से जीवित हो गया हो, बेशक किसी को न दिखता हो। इसीलिए बहुत सी संस्कृतियों में हर वर्ष मृत संबंधियों को याद करते हुए उनकी पूजा करने की परंपरा है। शायद वह पुनर्जीवित आत्मा उसका ध्यान करने वाली आत्मा के नजदीक सूक्ष्म रूप में बस जाती है, और उसके द्वारा किए जा रहे कर्मों को करती है, उसके द्वारा भोगे जा रहे फलों को भोगती है, और उसके साथ ही मुक्त भी हो जाती है। शायद यह ऐसा ही संबंध होता है जैसा एक मां और उसके पेट में पल रहे बच्चे के बीच में होता है। कई बार जब कोई बुरी आत्मा किसी के शरीर में डेरा डालती है तो उससे गलत काम भी करवाती है। फिर उसे तांत्रिकों की सहायता से भगाना भी पड़ता है। इसीलिए बुरी संगति से बचने को कहा जाता है। अच्छी आत्माएं किसी के शरीर में ज्यादा दखलंदाजी नहीं करती क्योंकि वे अपनी मर्यादाएं समझती हैं, हालांकि मौका पड़ने पर सही रास्ते पर लगाती भी रहती हैं। इसलिए उन्हें भगाने की जरूरत नहीं होती, बल्कि उन्हें तो बुलाकर किया जाता है, जैसे कि देवताओं का इन्वोकेशन अर्थात आह्वान। वैसे भी इस अजूबों से भरी दुनिया में क्या कुछ अजीब नहीं घट सकता।

कुंडलिनी कुंड से जागकर सुदर्शन चक्र रूपी वैकल्पिक कालचक्र को क्रियाशील कर देती है, जिसमें शरीरविज्ञान दर्शन एक आधुनिक कुंडलिनी तंत्र पुस्तक बहुत मदद करती है

कुंडलिनी शब्द को कहते हैं कि यह शास्त्रों में नहीं है। पर कुंड शब्द तो शिवपुराण में बहुत है। संस्कृत भाषा में कान के कुंडल या छल्ले जैसे आकार वाला पुलिंग पदार्थ कुंडली हुआ और ऐसे आकार वाली स्त्रीलिंग वस्तु कुंडलिनी कहलाई। शायद कुंडल शब्द भी कुंड शब्द से बना है। दोनों में संबंध तो साफ दिखता है। कुंड का शाब्दिक अर्थ गोल गड्ढा है, और कुंडल का अर्थ गोल छल्ला है। दोनों में यही अंतर है कि गड्ढे में धरातल होता है, पर छल्ले में नहीं होता, बाकि तो दोनों समान ही हैं। जैसे हर्ष से हर्षिल बना है वैसे ही कुंड से कुंडल बना हो सकता है। हर्ष मतलब हर्ष से युक्त और कुंडल मतलब कुंड से युक्त। मेरे इस अनुमान की जांच तो कोई संस्कृत व्याकरण विद्वान ही कर सकते हैं, अगर यह लेख पढ़ रहे हैं। कुंड से कुंडल न भी बना हो तो भी कुंडल के जैसे आकार में ढलकर सर्प कुंड अर्थात गड्ढे में छिप जाता है। इसीलिए कहते हैं कि सांप ने कुंडली लगाई हुई है। जिस गड्ढे में सर्प कुंडली मारकर छिप जाता है, उसे अगर कुंड कहा जाए तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। मूलाधार रूपी अंधेरे कुंड में मन की शक्ति सिकुड़ कर ध्यानचित्र के रूप में छिप जाती है। इसीलिए उस शक्ति को कुंडलिनी कहा जाता है। यही सभी चक्रों से होकर ऊपर चढ़ते हुए, फन उठाए नाग के जैसे आकार वाली पीठ और मास्तिष्क की नाड़ी में फैल जाती है। विष्णु ने कुंड में शिवलिंग को स्थापित किया। धार्मिक आस्था से जुड़ा होने के कारण इस बारे ज्यादा कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि कुछ कट्टर हिंदु तो पुराणों की कथाओं को मिथकीय कहने वाले के हिंदु होने पर ही संदेह करने लगते हैं। वैसे अपनी सोच से वे भी सही ही कहते हैं, क्योंकि ये कथाएं मनगढ़ंत नहीं हैं। मिथक भी दो किस्म के होते हैं, एक मनगढ़ंत या निरर्थक किस्म के और एक वैज्ञानिक सत्य पर आधारित या सार्थक किस्म के। पुराणों के मिथक दूसरे किस्म के हैं, मतलब बेशक ये मिथक लगे पर पूरी तरह से वैज्ञानिक सत्य पर आधारित हैं। इसीलिए हम इनके वैज्ञानिक सत्य को उजागर करते हैं ताकि इन्हें मनगढ़ंत मिथक न समझा जा कर इनका खोया सम्मान वापिस मिल सके। हालांकि आम लौकिक सोच से ऐसा समझ सकते हैं कि देव विष्णु की उपरोक्त शिवलिंग पुकार ऐसी ही है जैसे किसी कुशल तांत्रिक ने यबयुम आसन से उत्पन्न शिवध्यानयुक्त संभोगशक्ति मूलाधार को दी। लिंग पर शिव के ध्यान से ही वह पवित्र होकर शिवलिंग बनता है। देव विष्णु जैसे महान व आदर्श योगियों का तरीका बेशक उन्नत और सात्त्विक हो सकता है, पर सबका मकसद एक ही है, और वह है शक्ति को जागृत करना।

विष्णु एक हजार कमल पुष्पों से शिव की पूजा करने की कोशिश कर रहे थे मतलब सहस्रार चक्र तक शिवध्यानचित्र को मूलाधार से उठाने की कोशिश कर रहे थे मेरुदंड से। एक पुष्प शिव ने माया से छिपा लिया मतलब शिव की माया से मोहित होकर विष्णु

अपने अंहकार को शिव को अर्पित नहीं कर पा रहे थे। विष्णु ने धरती पर उस आखिरी पुष्प को हर जगह ढूंढा पर वह नहीं मिला मतलब अंहकार भीतर होता है, बाहर नहीं। बाहर की सारी सृष्टि भी शिव को चढ़ा दें, तो भी चढ़ावा अधूरा ही रहेगा, क्योंकि मास्तिष्क के अंदर बसा अहंकार तो चढ़ाया ही नहीं। विष्णु ने फिर अपना नेत्र चढ़ाया मतलब तीसरे नेत्र मतलब आज्ञा चक्र को जागृत करके वे उसकी शक्ति को फ्रंट चैनल से नीचे उतारकर मूलाधार चक्र तक लाए। उससे वहां स्थित शिव उससे पूर्ण संतुष्ट होकर वहां से सहस्रार चक्र तक चढ़कर पूरी तरह से जागृत हो गए मतलब प्रसन्न होकर उन्होंने विष्णु को अपने दर्शन करा दिए। अंहकार का जंजाल बुद्धि के रूप में बसा हुआ होता है, और बुद्धि का प्रतीक आज्ञाचक्र है। मतलब जो मन की शक्ति बुद्धिवादी सांसारिकता के जंजाल में फंसी थी, वह मुक्त हो कर शिवध्यानचित्र अर्थात कुंडलिनी चित्र को लग गई, जिससे वह जाग गया। फिर शिव ने उन्हें सुदर्शन चक्र दिया, मतलब जो अच्छे दर्शन या शिवदर्शन अर्थात जागृति के बाद सहस्रार चक्र बना, वही सुदर्शन चक्र है। वही दुष्टों व राक्षसों का वध मतलब बुरे विचारों का खात्मा करता है। कई जगह पर उसे दंड की तरह भी दिखाया जाता है, जो सुषुम्ना नाड़ी का द्योतक लगता है।

श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र पर ही गोवर्धन पर्वत को उठाया था मतलब ज्ञानरूप जागृत सहस्रार चक्र से ही स्थूल जगत को इतना हल्का, सूक्ष्म और आकाशरूप बना दिया कि वह ऊपर उठकर शून्य आसमान के बीच में आ गया। इससे ग्वालबाल मतलब इन्द्रियों के वशीभूत आम सांसारिक आदमी दुखों की अंधाधुंध वर्षा से बच सके थे, जो अंहकार रूपी इंद्र के कारण हो रही थी। गाय इंद्रिय को कहते हैं और गाय चराने वाला अर्थात इंद्रियों के संसर्ग से पीड़ित अज्ञानी मानव हुआ। यह ऐसा ही मामला लगता है जैसा रावण के द्वारा कैलाश पर्वत को भुजाओं पर उठाने का है। सुदर्शन चक्र का केवल इच्छामात्र से चलना और प्रहार करके खुद वापिस लौट आना और हमेशा घूमते रहना इसके दिव्य चक्र मतलब सहस्रार चक्र होने की ओर इशारा करता है। इसकी अरे मतलब स्पोकें, धुरी आदि ऋतुओं आदि का संकेत करती हैं। बौद्धों में कालचक्र भी शायद इसे ही कहते हैं। कालचक्र में भी सुदर्शन चक्र के बराबर ही अरे आदि होते हैं जो कि समय, ऋतु आदि की चाल को इंगित करते हैं। दोनों में ही वज्र और विद्युत होती है। यह सुषुम्ना में बहने वाली और जागृति देने वाली ऊर्जा ही है। कालचक्र को भी सुदर्शन चक्र की तरह विष्णु, कृष्ण, शिव आदि से जोड़ा जाता है। दोनों का ही वर्णन वेदशास्त्रों में है। हालांकि कालचक्र का उपयोग मुख्यतः बौद्धों में होता है।

कालचक्र के तीन प्रकार हैं, बाह्य, आभ्यंतर और गुप्त। बाह्य में बाहरी स्थूल ब्रह्मांड, आभ्यंतर में शरीर के अंदर का सूक्ष्म ब्रह्मांड और गुप्त में योग आदि रहस्यमय मुक्तिदायी विद्याएं आती हैं। मुझे लगता है कि एक का पूर्ण ज्ञान होने से तीनों का ज्ञान हो जाता है। बहिर्मुखी आदमी के लिए बाह्य कालचक्र की साधना है। अंतर्मुखी व्यक्ति के लिए आंतरिक कालचक्र और संन्यासी किस्म के व्यक्ति के लिए गुप्त कालचक्र बना

है। तीनों से ही ज्ञान और मुक्ति मिलती है। प्रेमयोगी वज्र रचित शरीरविज्ञान दर्शन को एक प्रकार का आंतरिक कालचक्र कह सकते हैं, क्योंकि उसमें शरीर के अंदर के ब्रह्मांड का वर्णन किया गया है। कालचक्र एक मंडल होता है, जिसमें विभिन्न देवताओँ, चिह्नों और आकृतियों को प्रदर्शित किया जाता है। वास्तव में भी तीनों कालचक्रों में भी ऐसे ही विविध रूपरंग वाला संसार है। इसकी साधना से स्वाभाविक है कि सुषुम्ना, सहस्रार और कुंडलिनी आदि जागृत हो जाते हैं, जो फिर दुष्ट विचारों और स्वभावों रूपी राक्षसों का नाश करते हैं। इस मामले में भी कालचक्र और सुदर्शन चक्र एक ही हैं। यह कह सकते हैं कि कालचक्र आम आदमी को मिलता है जबकि विष्णु जैसे परम आदर्श मनुष्य को मिलने वाले कालचक्र को सुदर्शन चक्र कहा गया है। आम आदमी तो केवल अपने ही अज्ञान का नाश करता है जबकि विष्णु और राम, कृष्ण, बुद्ध आदि उनके अवतार अनगिनत भक्त लोगों का अज्ञान नष्ट करते हैं। इसीलिए सुदर्शन चक्र को विशिष्ट कालचक्र कह सकते हैं।

वामन पुराण में भी इस चक्र को कालचक्र कहा गया है। इसकी बारह स्पोकें बारह महीनों और छः नाभियां छः ऋतुओं को इंगित करती हैं। यह भी कहा जाता है कि मंत्र सहस्रात हुम फट इसकी स्पोकों पर खुदा है। यह एक बौद्ध मंत्र लगता है। सिख भी चक्र को हथियार की तरह इस्तेमाल करते थे, जिसे सीधे भी और फेंक कर भी चलाया जाता था। कई जगह यह भी आता है कि सुदर्शन चक्र का केंद्र वज्र से बना है। वज्र वही मेरूदंड है, जिससे होकर वज्र शक्ति सहस्रार तक गुजरती है। पूरी तरह से यह लेख अगले लेख को पढ़कर समझ आएगा क्योंकि उसमें शिवपुराण में वर्णित इसकी मूल कथा लिखी जाएगी।

ऋग्वेद में भी सुदर्शन चक्र को कालचक्र कहा गया है। तीनों कालचक्रों से अलग एक चौथा वैकल्पिक कालचक्र भी है, जिसमें मन को समय की चाल से प्रभावित नहीं होने दिया जाता। यही बुद्धत्व और आत्मज्ञान का कालचक्र है। यही अद्वैत है, यही द्वैताद्वैत मतलब द्वैत के बीच रहकर अद्वैत है। यही प्रेमयोगी वज्र कृत शरीरविज्ञान दर्शन नामक तंत्र दर्शन की अवधारणा है। विष्णु का दुष्टविनाशक सुदर्शन चक्र ये ही पूर्व के तीनों कालचक्र हैं, जो समय के थपेड़ों से आम आदमी के मन को द्वैत, अज्ञान और दुख में डालकर उसे बारंबार जन्म मृत्यु के चक्र में डालने वाले हैं। कृपा करने वाला सुदर्शन चक्र चौथा और अंतिम मतलब वैकल्पिक कालचक्र है, जो बेशक समय की रफ्तार से घूमता है, पर आदमी को उसके बीच अद्वैत से रहना सिखाकर उसे सुख समृद्धि और मुक्ति देता है। मारने वाला समय चक्र तो किसी के पास भी हो सकता है, पर बचाने वाला तो विष्णु जैसे आत्मज्ञानी के पास ही हो सकता है। वह तब मिलता है जब सहस्रार चक्र जागृत होता है। यह काल तो चक्र की तरह चलता ही रहता है, कभी नहीं रुकता। जन्म के बाद मृत्यु, मृत्यु के बाद जन्म और फिर मृत्यु। सृष्टि के बाद प्रलय, प्रलय के बाद सृष्टि और फिर प्रलय। ऋतुएं चक्रवत बदलती रहती हैं, सुख दुख चक्रवत आते

जाते रहते हैं। इस चक्र से हम भाग नहीं सकते। चक्र को चक्र ही काटता है। वरदायी सुदर्शन या वैकल्पिक चक्र ही बचने का एकमात्र उपाय है। मतलब चक्र के साथ चलते रहो पर उससे अपनी अद्वैतमय शांति भंग न होने दो। यही सुदर्शन चक्र की स्तुति और पूजन है।

शिशुपाल को सुदर्शन चक्र ने गले से काटा मतलब शिशुपाल के द्वैतपूर्ण व्यवहार से उसकी शक्ति विशुद्धि चक्र से ऊपर नहीं चढ़ी। क्योंकि आदमी गले के विशुद्धि चक्र की शक्ति से बोलता है, तो ऊपर चढ़ती शक्ति को गले ने रोककर गाली गलौज में खत्म कर दिया मतलब गले के पास शक्ति का रास्ता कट गया मतलब गला कट गया। शिशुपाल कृष्ण को बहुत गालियां निकाल रहा था। कुंडलिनी चक्र भी शायद इसीलिए चक्र कहलाते हैं क्योंकि इन पर भी शक्ति का स्तर चक्रवत बदलता रहता है। कभी शक्ति बढ़ते बढ़ते चरम पर पहुंच जाती है, जिसे चक्र का जागृत होना कहते हैं, और फिर घटते घटते न्यूनतम भी पहुंच जाती है। उदाहरण के लिए कभी दिल की भावनाएं उफान पर होती हैं और कभी वह भावशून्य सा हो जाता है। कुछ समय बाद दिल फिर भावनाओं से भर जाता है, जिससे कई बार अच्छी सी कविता का निर्माण भी हो जाता है। ऐसा चक्र चलता रहता है। चक्र जागृत हो गया तो इसका मतलब यह नहीं कि वह हमेशा जागृत रहेगा। उसकी शक्ति घटती बढ़ती रहेगी। इससे घबराना नहीं है और न ही प्रभावित होना है। यही वैकल्पिक कालचक्र है, मतलब बुद्धवादी विकल्प अर्थात कल्पना या दर्शन से कालचक्र के दुष्प्रभाव को ख़त्म करके उससे सद्प्रभाव पैदा करना है। इसी तरह सहस्रार चक्र भी कभी चरम शक्ति पर होता है। उस समय यह पात्र व्यक्ति को ज्ञान या वरदान देकर भौतिक समृद्धि और मुक्ति भी दे सकता है, और पापी व्यक्ति को श्राप देकर उसे भौतिक हानि और बंधन में भी डाल सकता है। फिर सहस्रार चक्र निम्न शक्ति स्तर पर भी होता है, जिस समय श्रीकृष्ण एक आम आदमी की तरह व्यवहार करते थे। सहस्रार की चरम शक्ति की अवस्था होने पर ही वे अवतारी पुरुष की तरह व्यवहार करते थे, और जिस समय सहस्रार चक्र के बाह्य और स्थूल प्रतीक के रूप में उनकी अंगुली पर सुदर्शन चक्र घूमता हुआ दिखाया जाता था। आम आदमी तो मन या मस्तिष्क में छिपे सूक्ष्म सहस्रार चक्र को महसूस नहीं कर सकते। जागृत सहस्रार चक्र मतलब सुदर्शन चक्र से ही दिव्यता है, परमात्मता है, पुरुषोत्तमता है।

आदमी बाह्य कालचक्र में ही पैदा होता है और उसमें लंबे समय तक रहते हुए बहुत कुछ सीखता है। यह शुरुवाती अभ्यास का कालचक्र है। फिर उससे उत्पन्न दुखों के थपेड़ों से परेशान होकर उसे आंतरिक कालचक्र के ऊपर अध्यारोपित करने लगता है। मतलब वह अपने मन को यह दिलासा देने लगता है कि जो कुछ विस्तृत ब्रह्मांड में है वही सबकुछ उसके अपने छोटे से शरीर में भी है। मतलब यत्पिंडे तत् ब्रह्माण्डे। ऐसा करना "**शरीरविज्ञान दर्शन, एक आधुनिक कुंडलिनी तंत्र, एक योगी की प्रेमकथा**" नामक पुस्तक से बहुत आसान हो जाता है। उससे उसे कुछ अद्वैत की

अनुभूति होती है जिससे वह काल के थपेड़ों से थोड़ी सुरक्षा महसूस करता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि शरीर के अंदर पूरा कालचक्र दौड़ता रहने के बावजूद उसका कोई भी घटक द्वैत के बंधन में नहीं पड़ता। लंबे समय तक उसमें स्थिर रहने के बाद जब वह काफी पवित्र हो जाता है, तब उसकी प्रवृत्ति खुद ही योगसाधना रूपी गुप्त कालचक्र की ओर झुक जाती है। योग करते हुए और आगे बढ़ते हुए वह खुद ही तांत्रिक कुंडलिनी योग की तरफ मुड़ जता है। तंत्र योग से उसकी कुंडलिनी सहस्रार चक्र में जागृत हो जाती है, मतलब वह वैकल्पिक कालचक्र या सुदर्शन चक्र का अधिकारी बन जाता है। फिर भी जब भी वह सहस्रार में ऊर्जा की कमी से इस सर्वोच्च कालचक्र से नीचे आता रहता है तब तांत्रिक ऊर्जा के थोड़े से धक्के से वह आसानी से उसमें पहुंचता रहता है।

अनंत विस्तृत बाह्य कालचक्र अद्वैत सूक्ष्म होता जाता है। पहले वह आंतरिक कालचक्र के स्तर पर पहुंचता है। फिर और सूक्ष्म होकर सात कुंडलिनी चक्रों तक सीमित होकर गुप्त कालचक्र बन जाता है। इसे गुप्त कालचक्र इसलिए कहते हैं क्योंकि सभी इसे महसूस नहीं कर सकते, पर केवल कुंडलिनी योगी ही इसे महसूस करते हैं। फिर जागृति के बाद यह सहस्रार चक्र के बिंदु के स्तर तक सूक्ष्म बनकर वैकल्पिक कालचक्र बन जाता है। कालचक्र शुरु से लेकर अंत तक रहता है, पर पहले वह अज्ञान के बंधन में डालने वाला था, अंत में ज्ञान और मुक्ति देने वाला बन जाता है। यह बेहद कारगर और व्यवहारिक साधना है जिसे जरूर अपनाना चाहिए। सबसे साधारण शब्दों में बोलें तो यह ऐसा है कि भौतिक दुनियादारी के बीचबीच में अपने शरीर को भी अनुभव करते रहना चाहिए, उसके आगे के रास्ते खुद खुलते जाते हैं। **योग इसकी आदत डालने के लिए ही बना है। योगासन करते समय प्राणों की क्रियाशीलता से दुनियावी विचार भी आते रहते हैं और साथ में शरीर के विशेष पोज और सांस पर भी ध्यान लगा होता है मतलब बाह्य कालचक्र आंतरिक कालचक्र में रूपांतरित होता रहता** है।

कुंडलिनी योग ही बौद्ध धर्म का गुप्त कालचक्र है

किसी समय दैत्य महाबलवान हो गए थे। वे लोकों को पीड़ित करने और धर्म का लोप करने लगे। परेशान होकर देवताओं ने देवरक्षक विष्णु से अपना दुख कहा। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए विष्णु कैलाशपर्वत के समीप जाकर स्वयं कुंड का निर्माण कर उसमें अग्निस्थापन कर उसी के समक्ष तप करने लगे। वे पार्थिव विधि से अनेक प्रकार के मंत्रों एवं स्तोत्रों द्वारा मानसरोवर में उत्पन्न हुए कमलों से प्रसन्नता के साथ शिवजी का पूजन करते रहे। वे हरि स्वयं आसन लगाकर स्थित रहे और विचलित नहीं हुए। बहुत समय तक भी शिव प्रकट नहीं हुए। इस पर विष्णु ने हैरान होकर शिव के सहस्रनाम का जाप शुरु कर दिया। वे एक एक नाममंत्र का उच्चारण कर उन्हें एक एक कमल अर्पित करते हुए शंभु की पूजा करने लगे। उस समय शिव ने विष्णु की भक्तिपरीक्षा के लिए उन सहस्र कमलों में से एक कमल का अपहरण कर लिया। विष्णु शिव की माया को न समझकर एक कमल को ढूंढने में लग गए। विष्णु ने उस कमल के लिए पूरी पृथ्वी का भ्रमण किया। उसके प्राप्त न होने पर उन्होंने उसकी जगह अपना एक नेत्र ही अर्पित कर दिया, बेशक शिव ने उन्हें अपना नेत्र निकालने से रोक दिया। तभी शिव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और विष्णु को वर देने के लिए तैयार हो गए। पूछने पर विष्णु ने बताया कि उनका आयुध दैत्यों को मारने में सक्षम नहीं हो रहा है। विष्णु का यह वचन सुनकर शिव ने उन्हें अपना महातेजस्वी सुदर्शन चक्र प्रदान किया। उसे प्राप्त कर विष्णु ने बिना परिश्रम के शीघ्र ही उन महाबली राक्षसों को विनष्ट कर दिया। इस प्रकार संसार में शांति हुई। देवता सुखी हुए और सुंदर सुदर्शन चक्र प्राप्त कर अति प्रसन्न विष्णु भी परम सुखी हो गए।

कथा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

विष्णु या विष्णु अवतार शरीर को संचालित करने वाला जीवात्मा है, और परब्रह्म विष्णु वह अनिर्वचनीय परमात्मा है जिससे वह अवतरित होता है। वही शरीर के रूप में तीनों लोकों का पोषण करता है और विभिन्न देवताओं से भी करवाता है। इसी तरह शिव अवतार रुद्र मृत्यु के निकट शरीर को नष्ट करने वाली उसी जीवात्मा की अवस्था है। ब्रह्मा भी उसी जीवात्मा की मनरूपी सृष्टि का निमार्ण करने बाली अवस्था है। ब्रह्मा का कोई परब्रह्म रूप नहीं, क्योंकि वह विष्णु रूपी जीवात्मा से उत्पन्न मन ही है। इसीलिए कहा जाता है कि ब्रह्मा का जन्म विष्णु की नाभि से होता है। देवताओं से संचालित शरीर तो बहुत कोशिश करता है अज्ञानरूपी दुर्दांत राक्षसों के चंगुल से निकलने के लिए, पर सफल नहीं हो पाता। अंतिम सहारा जीवात्मारूपी विष्णु ही होता है। वह इसके लिए तांत्रिक विधि से शिवसाधना करता है। कैलाश सहस्रार चक्र है जहां परब्रह्म शिव का निवास है। उसके समीप मूलाधार चक्र है जो कुंड की तरह है। दोनों चक्रों को एकदूसरे के करीब इसलिए कहा है क्योंकि दोनों सीधे नाड़ी के माध्यम से आपस में जुड़े हुए होते हैं बेशक भौतिक दूरी अन्य चक्रों के बजाए मूलाधार की अधिक है। कुंड शब्द

शिवपुराण में गड्ढे या कुंड के लिए बहुत प्रयुक्त किया गया है। इसका मतलब है कि कुंडलिनी शब्द इसी कुंड से बना है। कुंड में सर्प कुंडली लगाकर बैठता है। कुंडल या कुण्डली वाला सर्प कुंडलिन हुआ और सर्पिणी कुंडलिनी हुई। वैसे ही जैसे धनिन का मतलब है धन वाला और धनिनी का मतलब है धन वाली। कुंडल कान में पहने जाने वाले छल्ले को कहते हैं। इसलिए कुंडलिन का अर्थ हुआ कान की बाली या छल्ले जैसी आकृति वाला। और कुंडलिनी का अर्थ हुआ कान की बाली या छल्ले जैसी आकृति वाली। कुंडल और कान के गड्ढे या कुंड के बीच संबंध है। इसी तरह कुंडलिनी और मूलाधार रूपी गड्ढे या कुंड के बीच भी संबंध है। कुंड में अग्नि स्थापन मतलब मूलाधार चक्र को प्राणवायु से क्रियाशील करना। उस कुंड में शिवसाधना मतलब मूलाधार चक्र पर इष्ट ध्यान। पार्थिव विधि से शिवपूजन किया मतलब मिट्टी का शिवलिंग बनाया। मनुष्य के शरीर को भी पार्थिव देह कहा जाता है। तो उसके अंग पार्थिव अंग हुए। मानसरोवर के फूल मतलब मन के या ध्यान के फूल। उन्होंने एक हज़ार फूल चढ़ाए मतलब हज़ार बार चक्रों की ऊर्जा को मूलाधार पर स्थापित किया और उसके साथ इष्ट ध्यान किया। मतलब ऊर्जा के एक हजार बार चक्कर लगाए। फूल यहां चक्र को कहा है। हजारवां फूल शिव ने चुरा लिया मतलब सहस्रार चक्र तक ऊर्जा नहीं जा पा रही थी। इससे विष्णु ने अपना नेत्र मतलब तीसरा नेत्र मतलब आज्ञा चक्र खोला और उसके ध्यान से अर्थात उस पर शांभवी मुद्रा में ध्यान देने से ऊर्जा सेंट्रल हुई। वह ऊर्जा पहले मूलाधार में पहुंची, वहां उससे प्रगाढ़ शिवध्यान लगा और फिर शिवध्यानचित्र के साथ सहस्रार में चली गई जहां उन्हें शिव के साक्षात दर्शन प्राप्त हुए मतलब उन्हें जागृति प्राप्त हो गई।

उपरोक्त कथा को दूसरे तरीके से भी समझ सकते हैं। एक पंखुड़ी को एक फूल कह सकते हैं क्योंकि कर्मकांड की पूजा के दौरान फूल की कुछ पंखुड़ियां चढ़ाना ही पूरा फूल चढ़ाना समझा जाता है। इससे फूलों की भी बचत होती है और एक ही फूल से बहुत से देवताओं का पूजन भी हो जाता है। सहस्रारचक्ररूपी कमलपुष्प में एक हजार पंखुड़ियां होती हैं। शिव के नाम से एक पुष्प चढ़ाने से मतलब शिव के ध्यान की किसी निश्चित मात्रा से सहस्रार की एक पंखुड़ी खिल रही थी। दरअसल जागृति पाने के लिए सभी चक्रों की पूरी ऊर्जा सहस्रार को अर्पित करनी होती है। जब सहस्रार एक पुष्प है और वह ध्यान से खिलता है तो स्वाभाविक है कि ध्यान भी एक पुष्प ही है। जैसे जल से भरे किसी बर्तन में जल डालने से उसका जल बढ़ता है, वैसे ही सहस्रार रूपी पुष्प में पुष्प जोड़ने से वह पुष्प बढ़ेगा ही। सहस्रार पूरा खिलने वाला था मतलब जागृति होने वाली थी पर उसकी अंतिम पंखुड़ी नहीं खिल पा रही थी। आज्ञाचक्ररूपी ध्यानपुष्प से वह भी खिल गई। कर्मकांड पूजा में ध्यान करते समय पुष्प को नमस्कार मुद्रा में बंद हाथों के अंदर रखा जाता है। ध्यान को देवता को समर्पित करने के रूप में उस अंजलिस्थित पुष्प को देवता के चरणों में अर्पित किया जाता है। सहस्रार को जब सभी चक्रों की समस्त ऊर्जा एकसाथ मिलती है, तभी यह जागृति के स्तर तक पहुंचता है।

ऊर्जा को सीधे सहस्रार तक पहुंचाना कठिन है, इसलिए इसे मूलाधार तक लाने का व्यावहारिक तरीका सामने लाया गया है, जहां से यह आसानी से सीधे सहस्रार तक पहुंच जाती है।

यह लेख पिछले और अगले लेख से जुड़ा है। उसमें कालचक्र के ऊपर भी अच्छी अनुसंधानात्मक चर्चा है। बाह्य कालचक्र में अद्वैत भाव आंतरिक कालचक्र के ध्यान की सहायता से बनता है। ऐसा इसलिए क्योंकि आंतरिक कालचक्र के अंदर कहीं भी असक्तिजनित और द्वैतजनित बंधन नहीं दिखता। सभी देवता, कर्मकाण्ड आदि सब आंतरिक कालचक्र के ही अंग है। हरेक बाह्य पदार्थ में उनके अधिष्ठातृ देवताओं के रूप में मानवशरीरधारी देवताओं का ध्यान करना आंतरिक कालचक्र का ध्यान करना ही है। इससे आदमी धीरे धीरे पवित्र होकर गुप्त कालचक्र मतलब कुंडलिनी योगसाधना की ओर बढ़ता है। शरीरविज्ञान दर्शन देवसाधना को और ज्यादा मजबूती देता है क्योंकि यह वैज्ञानिक रूप से दर्शाता है कि देवताओं और साथ में मनुष्यों सहित सभी जीवों के शरीर के अंदर पूरा ब्रह्मांड मतलब बाह्य कालचक्र मौजूद है।

कुछ लेखक अनुमोदित साहित्यिक पुस्तकें-

1) **Love story of a Yogi- what Patanjali says**
2) **Kundalini demystified- what Premyogi vajra says**
3) **कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान (पुस्तक 1, 2, 3 and 4)**
4) **The art of self publishing and website creation**
5) **स्वयंप्रकाशन व वैबसाईट निर्माण की कला**
6) **कुण्डलिनी रहस्योद्घाटित- प्रेमयोगी वज्र क्या कहता है**
7) **बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ- एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी**
8) **ई-रीडर पर मेरी कुण्डलिनी वैबसाईट**
9) **My kundalini website on e-reader**
10) **शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)**
11) **श्रीकृष्णाज्ञाभिनन्दनम**
12) **सोलन की सर्वहित साधना**
13) **योगोपनिषदों में राजयोग**
14) **क्षेत्रपति बीजेश्वर महादेव**
15) **देवभूमि सोलन**
16) **मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र**
17) **बघाटेश्वरी माँ शूलिनी**
18) **म्हारा बघाट**
19) **भाव सुमन: एक आधुनिक काव्यसुधा सरस**
20) **Kundalini science~a spiritual psychology (book-1,2, 3 and 4)**
21) **Yoga, Blackhole and Human being- A Matching Story**
22) **योग, ब्लैकहोल व मनुष्य जीवन - एक मेल खाती कहानी**
23) **क्वांटम विज्ञान व अंतरिक्ष विज्ञान में योग- विज्ञानांत से योगारम्भ की ओर बढ़ते कदम**
24) **Quantum Science and Space Science in Yoga- Where science ends there yoga begins**

इन उपरोक्त पुस्तकों का वर्णन एमाजोन, ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट https://demystifyingkundalini.com/shop/ के वैबपेज "शॉप (लाईब्रेरी)" पर भी उपलब्ध है। साप्ताहिक रूप से नई पोस्ट (विशेषतः कुण्डलिनी से सम्बंधित) प्राप्त करने और नियमित संपर्क में बने रहने के लिए कृपया इस वैबसाईट,"https://demystifyingkundalini.com/" को निःशुल्क रूप में फोलो करें/इसकी सदस्यता लें।

सर्वत्रं शुभमस्तु